देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

Impact Factor
8.642

ISSN : 2395-7115
May 2026
Vol.-23, Issue-5

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

Vol. 23	ISSUE-5, Part-4	(मई 2026)	ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८६/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका – मई 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09–09
2.	संतकाव्य में मानव-अंतःकरण के परिशोधन की अभिप्रेरणा (संतकवि दादूदयाल के काव्य के विशेष संदर्भ में)	दीक्षितानंद द्विवेदी	10–14
3.	**DIGITAL ESTATES AND POST-MORTEM PRIVACY : A CRITICAL EVALUATION OF LEGISLATIVE GAPS IN THE REGULATION OF DIGITAL ASSET SUCCESSION IN INDIA**	**Simran Naresh**	**15-25**
4.	हिन्दी एकांकी साहित्य में स्त्री के पारिवारिक स्वरूप का अध्ययन	नीलम यादव, डॉ. सुरेश कड़वासरा, डॉ. रश्मि सोनी	26–29
5.	**A Study of the Flora and Fauna of Bajaha Mishran, Saidabad, Prayagraj**	**Anju Mishra Dr. R. S. V. Gautam**	**30-37**
6.	भाषा और संस्कृति	डॉ. ललिता बी.एन.	38–40
7.	गांधी दर्शन और रंगभूमि का सूरदास	चंद्र मोहन जोशी, प्रो. जगदेव कुमार शर्मा	41–46
8.	हिन्दी और मलयालम नाटक	**Dr. Salini. C**	**47-50**
9.	महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों में नियमित योगाभ्यास करने वाले एवं योगाभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. भावना	51–58
10.	**Integral Humanism as an Alternative Political Philosophy in Twentieth-Century India**	**Ravinder Kumar, Dr. H.L. Sharma**	**59-72**
11.	**Foundational Literacy and Numeracy Acording to (NEP, 2020)**	**Dr. Ram Nagina Rajak**	**73-81**
12.	**A Critical Compilation and Analytical Study of *Sharir Sthana* in *Brihattrayee* and its Contemporary Significance for Ayurveda Scholars**	**Dr. Sangeeta Dev, Dr. Sunayana Mahajan, Mr. Rajendra Prasad**	**82-89**
13.	**ANATOMICAL POINT OF VIEW OF PRANAVAHA SROTAS AND ITS MODERN CORRELATION**	**Dr. Mani Sharma, Dr. Sangeeta Dev, Mr. Rajendra Prasad**	**99-102**

14.	A CRITICAL REVIEW ON SADYAH PRANHARA MARMA : CLASSICAL CONCEPTS, ANATOMICAL PERSPECTIVE AND CLINICAL SIGNIFICANCE	Dr. Sunayana Mahajan, Mr. Rajendra Prasad, Dr. Sangeeta Dev	103-111
15.	21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन में भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता	आदित्य राज	112–119
16.	भक्तिकालीन संगीत परम्परा और भारतीय सांस्कृतिक चेतना	डॉ. रमा राहुल दूधमांडे	120–123
17.	नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में संत साहित्य की उपयोगिता : एक आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ. मीना शर्मा	124–131
18.	विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्धि में शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन	ममता कुमारी, डॉ. वंदना दुआ	132–137
19.	Semi-Feudal Intermediaries and Rural Exploitation in British India	Naziya Kouser	138-144
20.	पर्यावरण चेतना और रमेश पोखरियाल निशंक का साहित्य	बिमला शर्मा	145–149
21.	प्राचीन भारतीय गणराज्यों में लोकतंत्र की अवधारणा के तत्त्व	प्रो. रचना सिंह, दिग्विजय सिंह	150–155
22.	पर्यावरण संरक्षण में वृक्ष एवं वनस्पतियों का योगदान	सुनीता कलौनी	156–160
23.	विभिन्न भारतीय दर्शनों में कर्म, अकर्म एवं विकर्म का शास्त्रीय एवं दार्शनिक विवेचन	RAJENDRA PRASAD	161-165
24.	Bridging the Rural–Urban Digital Divide in Education : Issues and Solutions	Dr. Praveen Sharma	166-172
25.	भारतीय ज्ञान परंपरा एवं हिन्दी संस्मरण साहित्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन	रामानंदी अंजना आशारामभाइ	173–179
26.	भारत में महिलाओं के अधिकार तथा आरक्षण	शिवानी, डॉ. मंजू आर्या	180–184
27.	Role of Modernization in Human Behaviour	Dr. Reena Kumari, Dr. Vandana Varma	185-192
28.	नई शिक्षा नीति के प्रभाव से विद्यालयी शिक्षा में परिवर्तन : एक अध्ययन	Dr. Mahesh Chand Gurjar	193-199
29.	EDUCATION AND WOMEN EMPOWERMENT (A RELIGIOUS PERSPECTIVE)	Dr. Kumari Soni Rekha	200-202
30.	Contours of Resistance and Sacrifice : Punjab's Role in India's Freedom Struggle	Rishu Kumar	203-210

संपादकीय...

भारतीय ज्ञान परम्परा, समकालीन शोध और मानविकी की नई दिशाएँ

आज के वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान, शोध और संवाद की परम्पराएँ तीव्र गति से परिवर्तित हो रही हैं। ऐसे समय में "बोहल शोध मंजूषा" का मई अंक न केवल अकादमिक विमर्श का मंच है, बल्कि भारतीय ज्ञान परम्परा और समकालीन चुनौतियों के बीच एक सशक्त सेतु भी है। यह अंक विशेष रूप से इस विचार को केंद्र में रखकर प्रस्तुत किया गया है कि परम्परा और आधुनिकता का समन्वय ही वास्तविक प्रगति का आधार है।

भारतीय ज्ञान परम्परा सदैव से समावेशी, बहुआयामी और जीवनोपयोगी रही है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, लोक साहित्य और आधुनिक साहित्य तक फैली यह परम्परा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए मार्गदर्शक भी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इन ज्ञान स्रोतों को केवल स्मरण न करें, बल्कि उन्हें नए संदर्भों में पुनः व्याख्यायित करें। यही कार्य शोध का मूल उद्देश्य भी है नवीन दृष्टिकोण के साथ सत्य की खोज।

इस अंक में प्रस्तुत शोध पत्रों में साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, समाजशास्त्र और समकालीन विमर्शों का संतुलित समावेश देखने को मिलता है। विशेष रूप से हिंदी साहित्य में उभरते नए विमर्श 'स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पर्यावरण चेतना और डिजिटल युग में साहित्य की भूमिका' पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया गया है। यह स्पष्ट करता है कि शोध केवल पुस्तकालयों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समाज की धड़कनों से जुड़ चुका है।

समकालीन समय में शोध लेखन की गुणवत्ता और नैतिकता भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न बनकर उभरी है। Plagiarism, संदर्भों की प्रामाणिकता और शोध की मौलिकता पर विशेष ध्यान देना आज की आवश्यकता है। एक सशक्त शोध वही है जो तथ्यात्मक, विश्लेषणात्मक और मौलिक हो। इस संदर्भ में यह पत्रिका शोधार्थियों और विद्वानों को एक जिम्मेदार मंच प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। डिजिटल युग ने ज्ञान के प्रसार को सरल बनाया है, परंतु इसके साथ ही चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। सूचनाओं की अधिकता में सत्य की पहचान करना कठिन हो गया है। ऐसे में समीक्षित (Peer Reviewed) पत्रिकाओं की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। बोहल शोध मंजूषा इस दिशा में एक विश्वसनीय माध्यम के रूप में निरंतर कार्य कर रही है।

यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय समाज में शिक्षा और संस्कृति का संबंध अत्यंत गहरा है। शिक्षा केवल ज्ञान का अर्जन नहीं, बल्कि मूल्य निर्माण की प्रक्रिया भी है। इस अंक के अनेक लेख इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि यदि शिक्षा में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश किया जाए, तो समाज में नैतिकता और संवेदनशीलता का विकास संभव है।

अंततः, यह कहना समीचीन होगा कि शोध एक सतत यात्रा है—प्रश्नों से उत्तरों तक और फिर नए प्रश्नों की ओर। बोहल शोध मंजूषा का यह अंक इसी यात्रा का एक पड़ाव है, जो पाठकों, शोधार्थियों और विद्वानों को नए विचारों, दृष्टिकोणों और संभावनाओं से परिचित कराता है।

हम सभी लेखकों, समीक्षकों और पाठकों का आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह अंक संभव हो सका। आशा है कि यह अंक न केवल ज्ञानवर्धन करेगा, बल्कि नए शोध कार्यों के लिए प्रेरणा भी प्रदान करेगा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 10-14

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

संतकाव्य में मानव–अंतःकरण के परिशोधन की अभिप्रेरणा (संतकवि दादूदयाल के काव्य के विशेष संदर्भ में)

दीक्षितानंद द्विवेदी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139

प्रस्तावना –

सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्व संतकवि दादूदयाल निर्गुण ज्ञानाश्रयी काव्यधारा के प्रतिनिधि हैं। उनके साहित्य पर पूर्ववर्ती संतकवियों विशेषतः कबीरदास का स्पष्ट प्रभाव है तथापि दादूदयाल की विशिष्टता इस दृष्टि से लक्षित की जाती है कि उनकी कविता में कबीर की आक्रमकता और व्यंग्य–प्रवणता के स्थान पर कोमलता, आत्मीयता और भाव–प्रधानता पाई जाती है। संतकाव्यधारा को उनकी प्रगतिशील जीवन दृष्टि के तत्वों के लिए ही प्रासांगिक माना जाता रहा है किंतु संतकवियों की वास्तविक पहचान एक भक्त के रूप में थी। एक भक्त के दृष्टिकोण से ही वे प्रत्येक मनुष्य को आमंत्रित करते थे कि वह भी प्रेम–भक्ति के माध्यम से अपने जीवन को क्षुद्र उद्रदेश्यों की पूर्ति से उठाकर एक वृहत्तर उद्देश्य के लिए अग्रसर करें और अपनी चेतना को उत्थान की दिशा दे।

बीज शब्द – संतकवि, जीवन, प्रेम, मनुष्य, अद्वैत।

कथनी करनी की एकता पर बल :

आज के धर्माचार्यों, उपदेशकों की वाणी का प्रभाव मानव चित्त पर क्यों नहीं पड़ता? उनके प्रज्ञापूर्ण शब्दों को सुनकर भी आज समाज–जीवन स्खलनशील क्यों है? क्या ये शब्द अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं? दरअसल शब्द सही हैं उनका ध्वन्यार्थ भी सही है किंतु वक्ता का जीवन और चरित्र उन शब्दों के मेल में नहीं है। विवेक वैराग्ययुक्त बातें करने पर भी अधिकांश धर्माध्यक्षों की चेतना भौतिक लाभार्जन, मान–सम्मान, पद–प्रतिष्ठा की ओर ही रमी हुई है। जिस दिन उनकी कथनी और करनी का भेद मिट जाएगा तब ही उनकी वाणी प्रभावशाली होगी, तभी संभवतः उनके शब्द मानव मात्र के हृदय को शीतलता प्रदान करने में समर्थ होंगे–

दादू मनसा के पकवान सौं, क्यों पेट भरावै।
ज्यूँ कहिए त्यूँ कीजिए, तब ही बनि आवै।।[1]

जब तक वक्ता के ज्ञान और आचरण में एकता स्थापित नहीं होगी तब तक वे मानव के सच्चे हितैषी न हो सकेंगे। इसके विपरीत वे मनुष्य को अपने शब्दाडम्बरों की तड़क–भड़क के शोरगुल से और मानापमान के झूठे प्रपंच से भयभीत ही करेंगे–

दादू कहणी और कछु, करणी करै कुछ और।

तिनथै मेरा मन डरै, जिनके ठिक न ठौर।।[2]

सत्य की व्यक्तिगत अनुभूति की महत्ता का प्रतिपादन –

वर्तमान युग के धार्मिक नेता, राजनीतिक सत्तासीन व्यक्ति धार्मिक सद्भावना प्रदर्शित करते हुए हिन्दू–मुसलमान एकता की बातें तो करते हैं लेकिन इनमें संतकवियों की भाँति इन धर्मों में अंतर्निहित कुरीतियों की आलोचना करने का साहस नहीं है। इसका कारण यह है कि ऐसी आलोचना के लिए सत्य के आंतरिक अनुभव की शक्ति एवं तेजस्विता अनिवार्य है। यही संतकवियों को निर्भीकता से सच्चाई को 'डंके की चोट' पर करने का हौसला प्रदान करती है –

दादू पंथों पड़ गये, बपुरे बारह बाट।
इनके संग न जाइये, उलटा अविगत घाट।।[3]

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आत्मछवि को समाज, संस्कृति, परंपरा प्रदत्त पहचान के आधार पर ही निर्धारित–नियमित करता है। कुछ बौद्धिक रूप से विकसित हो जाने पर भी वह स्वयं को अधिकाधिक शास्त्रज्ञान के मिथ्या दंभ से ढँक लेता है। ये मिथ्या छवियाँ ही समस्त प्रकार के भेदभावों की, शोषण की और हिंसा की मनोभूमियाँ निर्मित करती हैं। इनसे पार जाने पर ही मानव–जाति के एक्य ही गुंजाईश है।

दादू ना हम हिंदू होहिंगे, ना हम मुसलमान।
षट्दर्शन में हम नहीं, हम राते रहमान।।[4]

ऐसी एकत्व दृष्टि संपन्न व्यक्ति ही निर्भीक स्वर में विविध धर्म मतों की एकात्मता का उद्घोष करने की सामर्थ्य रखता है :–

दोनों भाई हाथ–पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान।[5]

सत्यान्वेषण हेतु निष्पक्षता के महत्व की स्थापना –

किसी मत विशेष के प्रति पूर्वाग्रह और अन्य मतों के प्रति दुराग्रह मनुष्य की स्वतंत्र पर्यालोचना और निर्णयशक्ति को कुंठित कर उसे वैचारिक रूप से पंगु बना देता है। जो व्यक्ति अपने मताग्रहों को त्याग कर सके वही तत्व रूप से विचार करता है–

दादू दोनों भरम हैं, हिन्दू तुरक गंवार।
जे दुहुवाँ से रहित है, सो गहिं तत्त विचार।।[6]

स्वतंत्र विचार शक्ति के द्वारा ही मनुष्य जब जीवन का सजग अध्येता होकर समाज, संस्कृति, धर्म का पुनर्मूल्यांकन करता है, तभी वह निष्पक्ष होकर सत्य की पात्रता हासिल करता है–

पखा पखी संसार सब, निरपख बिरला कोई।
सोई निरपख होयगा, जाके नाम निरंजन होई।।[7]

भेदभाव के मनोविज्ञान की पहचान –

संतकवियों ने जातिगत भेदभावों का पुरजोर विरोध किया, सर्वविदित ही है किंतु वे इससे भी आगे बढ़कर सत्य के वृहत्तर आयाम को अभिव्यंजित करते हैं। उनकी दृष्टि में मानव–मानव का भेद ही अनुचित नहीं है अपितु वे तो मानव पशु–पक्षी, पेड़–पौधे सभी को एकसूत्रता में गुँथा हुआ देखते हैं।

सामान्यतः यदि एक मनुष्य जातिगत भेदभावों का विरोध करता है तो यह उसकी उदार एवं प्रगतिशील दृष्टि का परिचायक हैं, किंतु यही विरोध यदि घृणा में बदल जाए तो इससे अन्य प्रकार के भेदभावों का द्वार खुल जाता है। अर्थात् ऐसा घृणा से युक्त व्यक्ति स्वयं को भेदभाव–मुक्त समझने लगता है, किंतु उसके मन में विपरीत विचार वालों के प्रति भेद–दृष्टि जन्म ले लेती है। संतकवि तो यहाँ तक कहते हैं कि पारमार्थिक स्तर पर हाथी और चींटी में भी अभेद है। अतः स्वयं के भेदभाव मुक्त दृष्टिसंपन्नता का दंभ और अपनी वैचारिक प्रगतिशीलता का अभिमान भी भेदभावकारी ही है। इस अभिमान से मुक्त होने पर ही दुविधा (द्वि विधा) दूर होगी–

दादू संमि करि देखिए, कुंजर कीट समान।
दादू दुबध्य दूरि करि, तजि माया अभिमान।।[8]

आत्मालोचन के साहस की जरूरत –

यदि मनुष्य अपने अंतरतम में झाँककर देखे तब वह जान सकेगा कि दूसरों के दोषों की निंदा करने वाला स्व्यं मेरा व्यक्तित्व कितना खंडित और पतित है। ऐसी आत्मालोचना से वह स्वयं को श्रेष्ठ एवं दूसरों को निकृष्ट समझने की भेदभावकारी भूल से मुक्त होकर स्वयं के दोषयुक्त होने की स्वीकारोक्ति ही देगा–

महा अपराधी एक मैं, सरि इहि संसार।
अवगुण मेरे अति घणे, अंत न आवै पार।।9

स्वयं की त्रुटियों का सम्यक अभिज्ञान और उनकी आत्म–स्वीकृति के उपरान्त ही वह आत्म–परिष्कार की कष्टसाध्य यात्रा को तय करने के लिए आगे बढ़ता है। अपने प्रयासों की लघुता का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने के बाद उस अनादि शक्ति के समक्ष निष्काम भाव से पूर्ण रूपेण समर्पित हो जाता है। ऐसे समर्पण के उपरान्त ही उसे सर्वत्र अपने आराध्य की अनुभूति होने लगती है। तब ही वह व्यक्ति संत होकर सम्पूर्ण जगत में वास्तविक साम्य की अपरोक्षानुभूति करता है।

वास्तविक समता का स्वरूप –

संतकवियों के अनुसार सम्यक और यथार्थ दृष्टि यही है कि सभी में उस एक ही सत्य को देखा जाए जो विविध रूपों में प्रकट होकर भी स्वरूपतः एक ही है, तभी वास्तविक समता के लक्ष्य की प्राप्ति होगी। यदि व्यक्ति को सही अर्थों में उस एकात्मता का बोध होगा तो उसकी कसौटी यही होगी कि उसे कोई भी स्वयं से निकृष्ट नहीं दिखाई देगा, चाहे वह भौतिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक रूप से ही पिछड़ा हुआ क्यों न हो। इसी आत्मीयता और बन्धुत्व की आधारभूमि पर ही सामाजिक समता का भवन खड़ा किया जा सकता है–

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल विचारिए, तो दूजा कौण गंवार।।[10]

ऐसी समतामूलक दृष्टि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भारतीय आदर्श को चरितार्थ करने में समर्थ हो सकती है। आज संसार युद्ध की विभीषिकाओं से त्रस्त है। सत्तासीन व्यक्तियों के निहित स्वार्थ और व्यक्तिगत रागद्वेषात्मक प्रवृत्तियाँ भयानक युद्धों को जन्म दे रही हैं। दो राष्ट्रों के सत्तासीन राष्ट्रध्यक्षों की पारस्परिक द्वेष भावना का खामियाजा समूचे राष्ट्र को प्रत्यक्ष और सम्पूर्ण विश्व को परोक्ष रूप में भुगतना पड़ता है। आज इस बात की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है कि मनुष्य चाहे किसी भी राष्ट्र के हों, उनमें वैर न हो बल्कि प्रेम हो, भ्रातृत्व हो। एक पृथ्वीवासी होने की उदात्त भावभूमि प्रत्येक मनुष्य में विकसित हो सके, यही संतकवियों का जीवनभर

श्रमसाध्य रहा। आज आवश्यकता इसी बात की है कि हम उन संतकवियों के महान आदर्शों का पुनर्स्मरण करें और युगानुरूप उनको व्यावहारिक जीवन में लागू करें –

किससों वैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नाहिं।
जिसके अंग थे ऊपजे, सोई है सब मोहि।।[11]

अहंभाव का विसर्जन –

यदि मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के गर्व में उन्मत्त रहेगा तो समूची मानव–जाति के अस्तित्व पर संकट की घड़ी आन खड़ी है। आज अनेक राष्ट्र परमाणु शक्ति संपन्न होकर अन्य राष्ट्रों पर प्रभुत्व जमाना चाहते हैं, वे महाविनाश के इन साधनों को 'बटन दबाने का खेल' समझकर खेल रहे हैं। यह अहंकार नहीं है तो और क्या है जो मानव–जाति के विनाश का कारण बनेगा?

यह गर्व ही है जो व्यक्ति को सामाजिक जीवन में हिंसक बनाता है, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रूर आक्रांता बनाता है, व्यक्तिगत जीवन में अहंकारी बनाता है, आध्यात्मिक जीवन में लक्ष्यप्राप्ति में बाधक बनता है, अतः इसका निवारण अत्यंत आवश्यक है–

गरबैं रसातल जाइये, गरबैं घोर अंधार।
गरबैं भौजल डूबिये, गरबैं वार न पार।।

इस गर्व–अहंकार के उपचार हेतु सभी संतकवियों ने एकस्वर में उपाय बताया है–प्रेम।

प्रेम ही एकमात्र मार्ग है –

जिस प्रकार सभी रंग–बिरंगे वस्त्रों के मूल में श्वेत वस्त्र होता है, उसी प्रकार समस्त वैविध्यपूर्ण जगत के मूल में परमात्मा ही मौजूद है। प्रेमरूपी घोल में जीवन रूपी वस्त्री को धो देने पर जीवन निष्कलुष होकर परमात्मस्वरूप ही हो जाता है। तब न कोई स्वार्थपरता बचती है, न किसी प्रकार की सांसारिक वासनाओं की तृष्णा। भक्त भगवद्भावना में पूर्णत समर्पित हो जाता है। तब मनुष्य जैसा भी जीवन जीता है, जिन भी प्रणालियों का वह अनुसरण करता है, जीवन के जगत के समस्त अन्तर्विरोध, सभी प्रकार के द्वैत अन्ततः उसी निर्द्वन्द्व अद्वैत में विलीन हो जाते हैं–

बाबा नाहीं दूजा कोई, एक अनेक नाम तुम्हारे, मोपै और न होई।
अलख इलाही एक तूं, तूं ही राम रहीम।
तूं ही मालिक मोहना, केशव नामकरीम।
सांई सिरजनहार तूं, तूं पावन तूं पाक।
तू कायम करतार तूं, तूं ही हाजिर आप।।
रमता राजिक एक तूं, तूं सारंग सुबहान।
कादिर करता एक तूं, तू साहिब सुलतान।।
अविगत अल्लह एक तूं, गुनी गुसाईं एक।
अजब अनुपम आप है, दादू नाम अनेक।।[12]

वैराग्य के पात्र में ही प्रेम ठहरता है –

मनुष्य पूरे जीवन भौतिक सुख–सुविधाओं को जुटाने और मानसिक कल्पना–विलास को साकार करने

में जुटा रहता है, यह कल्पना/आशा मन में लिए हुए कि कदाचित इस जीवन यात्रा के अग्रिम पड़ाव पर विश्राम होगा, शांति होगी, संतोष होगा। अगला पड़ाव उसे पुनः आगामी मंजिल हेतु उद्योगरत करता है। जीवन की प्रत्येक भौतिक–मानसिक उपलब्धि इसे अधिकाधिक उपलब्ध करने हेतु प्रेरित करती है। संभवतः यही विकास हो किंतु आजीवन स्वयं को स्थापित करने की बलवती स्पृहा उससे क्या–क्या नहीं कराती। यह अतृप्ति किसी भी उपलब्धि से शमित नहीं की जा सकती। जीवन के अंतिम क्षणों में प्रत्येक मनुष्य को अपने प्रयासों की निरर्थकता प्रमाणित होने लगती है परंतु अब पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं। काश यह विवेक समय रहते मानव की अंतःकरण में उदित होता तो पूरा जीवन संघर्ष की, दुख की, संताप की गाथा बनकर न रह जाती –

> जे मति पीछे उपजै, सो मति पहिले होय।
> कबहुँ न होवै जीव दुखी, दादू सुखिया सोय।।[13]

निष्कर्ष –

संतवियों की वाणियाँ उसी अद्वैत भावभूमि का इशारा है जहाँ समस्त भेदभाव, संघर्ष, विरोध एवं विषमताएँ एकमेक में तिरोहित हो जाती हैं। यह तो मनुष्य का व्यक्तिगत पुरूषार्थ है और यह उसका परम कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवन की उच्चतम संभावनाओं को साकार करे एवं इस जग जीवन के तमसाच्छन्न विस्तार में सत्य की मशाल बनकर उभर सके, यही संतकवियों के गरिमामय जीवन के प्रति मनुष्य की सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. संतसुधासार दादूदयाल, खण्ड –1, पृ0 480
2. संतबानी संग्रह, भाग – 1, पृ0 93
3. श्री दादूवाणी, दादूदयाल महासभा, जयपुर, भूमिका।
4. सं0 सुधाकर द्विवेदी, स्वामी दादूदयाल की वाणी 13/50
5. संतसुधासार दादूदयाल, खण्ड–1, पृ0 495
6. स्वामी मंगल, श्री स्वामी दादूदयाल की अनभै वाणी, पृ0 271–73
7. श्री दादूवाणी, दादूदयाल महासभा, जयपुर, भूमिका।
8. सं0 परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पद 26, पृ0 274
9. श्री दादूवाणी, विनती का अंग, दादूदयाल महासभा, जयपुर, पद–6, पृ0 450
10. सं0 परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल, ग्रंथावली, पृ0 273
11. श्री दादूवाणी, दादूदयाल महासभा, जयपुर, संपादकीय निवेदन।
12. श्री दादूवाणी, दादूदयाल महासभा, जयपुर, पृ0 सं0 603
13. श्री दादूवाणी, दादूदयाल महासभा, जयपुर, प्राक्कथन।

दीक्षितानंद द्विवेदी, C/O चन्द्रमोहन सिंह बिष्ट,
नव विहार कॉलोनी, निकट चौफुला चौराहा, बिठोरिया नं.1, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड, PIN -263139
फोन – 6397373350

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
May 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 15-25

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

DIGITAL ESTATES AND POST-MORTEM PRIVACY : A CRITICAL EVALUATION OF LEGISLATIVE GAPS IN THE REGULATION OF DIGITAL ASSET SUCCESSION IN INDIA

Simran Naresh

B.A. LL.B. (Hons.), 10th Semester, Batch 2021-2026

Amity Law School, Amity University Noida

Abstract. *India's digital economy has generated an unprecedented quantum of digital wealth - over fifteen million KYC-verified Virtual Digital Asset holders, a creator economy sustaining two million livelihoods, and digital property of every description. Yet Indian succession law, codified for a world of tangible assets, provides no framework for what happens to this wealth upon death. The Digital Personal Data Protection Act, 2023, brought into force on 14 November 2025, introduces a nomination mechanism for posthumous data rights but does not constitute a succession framework. This article undertakes a critical evaluation of the legislative gaps, examines the constitutional dimensions of post-mortem privacy under Article 21 and Article 300-A, draws comparative lessons from the United States (RUFADAA), Germany (BGH Facebook 2018), France, Italy, and the EU (GDPR), and proposes the essential architecture of a Digital Estates and Succession Act (DESA) for India.*

Keywords: *Digital Succession; Post-Mortem Privacy; DPDP Act 2023; Virtual Digital Assets; Indian Succession Act; Hindu Succession Act; RUFADAA; Puttaswamy; Article 300-A; Digital Estates and Succession Act.*

I. INTRODUCTION :

The death of a person in twenty-first century India triggers two parallel legal events. The first is well-understood: succession law determines who inherits the deceased's property. The second is entirely unaddressed: the deceased's digital life - their cryptocurrency, monetised social media accounts, cloud-stored documents, domain names, and digital income streams - exists in a legal void, subject to no coherent legal framework. It is a structural failure that grows more consequential with every passing year.

The scale of what is at stake is considerable. India ranked first globally in the Chainalysis Global Crypto Adoption Index for 2024 - the second consecutive year at the top of that ranking - with over one billion internet users and a digital economy projected to contribute over one trillion dollars to GDP by 2030.[12] Over fifteen million KYC-verified Virtual Digital Asset (VDA) holders are registered with SEBI and FIU-IND-reporting exchanges. For every one of these holders who dies intestate without a legal framework for digital succession, their estate faces an unresolvable gap. At the outer extreme of this problem, Chainalysis estimates that approximately 20% of all Bitcoin in existence may be permanently inaccessible due to lost or abandoned wallets.[3] The law has nothing to say about any of this.

The Indian Succession Act, 1925 (ISA) and the Hindu Succession Act, 1956 (HSA) were drafted for a world of tangible property. The Digital Personal Data Protection Act, 2023 (DPDP Act), brought into force on 14 November 2025 alongside the DPDP Rules, 2025, introduces a nomination mechanism for posthumous data rights[4] but does not constitute a succession framework. The Uttarakhand Uniform Civil Code, 2024 - India's most contemporary succession reform - is entirely silent on digital assets.[5] The Madras High Court's landmark judgment in *Rhutikumari v. Zanmai Labs Pvt. Ltd.* (2025), which for the first time classified cryptocurrency as property capable of being held in trust,[6] fills a critical doctrinal gap but underscores, in the same breath, how much legislative work remains undone. This article argues that a standalone Digital Estates and Succession Act (DESA) is urgently required, and proposes the essential architecture of that Act.

II. THE EXISTING FRAMEWORK AND ITS FAILURES

A. Succession Law: Structural Silence

[1] Chainalysis, 'Global Crypto Adoption Index 2024' (September 2024); Chainalysis, 'Global Crypto Adoption Index 2025' (October 2025). India ranked first globally for the second consecutive year in 2024 and continued to lead the APAC region in 2025.

[2] NASSCOM, 'India Technology Sector: Annual Strategic Review 2025' (2025) - Indian tech industry revenue crossed USD 282 billion in FY2025; digital economy contribution projected to exceed USD 1 trillion by 2030.

[3] Chainalysis has estimated that approximately 20% of all Bitcoin in existence may be permanently lost due to inaccessible or abandoned wallets, representing an estimated USD 140 billion as of 2024.

[4] Digital Personal Data Protection Act, 2023, Section 14 (right to nominate); Digital Personal Data Protection Rules, 2025, Rule 14(4), notified by MeitY vide Gazette Notification dated 14 November 2025.

[5] Uniform Civil Code, Uttarakhand, 2024. This is the first state-level UCC enacted in post-independence India. A careful examination of its succession provisions reveals no reference to digital assets of any kind.

[6] Rhutikumari v. Zanmai Labs Pvt. Ltd. and Ors., O.A. No. 194 of 2025 (Madras High Court, 25 October 2025, Justice N. Anand Venkatesh).

The ISA and HSA define 'property' broadly - encompassing all moveables and immoveables - which is, in principle, wide enough to include digital assets. But breadth of definition is not the same as workable framework. The ISA's testamentary requirements[7] were designed for paper documents. No court has definitively ruled on the validity of digitally executed wills. More critically, even a validly executed will bequeathing 'my cryptocurrency' is practically unenforceable if the testator has not separately communicated the private cryptographic key - and including the key in a publicly probated will creates catastrophic security risks that the law has not addressed.

The Information Technology Act, 2000 creates a further paradox: an executor seeking to access a deceased person's digital accounts without a clear statutory authorisation risks criminal liability under Sections 43 and 66.[8] The law of cybercrime thus perversely penalises the legitimate administration of digital estates.

B. The DPDP Act: A Partial and Phased Response :

The DPDP Act, 2023 is the first Indian statute to acknowledge the posthumous dimension of data rights. Section 14, implemented by Rule 14(4) of the DPDP Rules, 2025, permits a data principal to nominate individuals to exercise their data rights upon death or incapacity.[9] Three structural limitations, however, confine this mechanism to partial relevance for digital succession.

First, the nomination mechanism is confined to personal data rights - the right to access, correct, and erase processed data - and does not constitute a property succession right. A DPDP nominee is not a legal heir. Second, the substantive provisions of the Act, including Section 14, are subject to Phase 3 commencement on 14 May 2027.[10] Third, and most acutely, the Act creates an unresolved conflict: a DPDP nominee may request erasure of the very data that a succession heir under the ISA or HSA requires to identify and administer the digital estate.[11] This nominee-heir conflict is the most pressing structural fault line in the current framework.

---

[7] Indian Succession Act, 1925, Section 63 (requirements of a valid will: writing, signature, and attestation by two witnesses).

[8] Information Technology Act, 2000, Sections 43 and 66 (penalty for damage to a computer system and computer-related offences). An executor accessing a deceased's digital accounts without a clear legal framework risks criminal exposure under these provisions.

[10] The DPDP Act's substantive rights provisions, including Section 14, are subject to Phase 3 commencement (14 May 2027). Phase 1 (14 November 2025) established the Data Protection Board of India; Phase 2 (14 November 2026) covers Consent Manager registration.

[11] The conflict is structural: a DPDP nominee may exercise the right to erasure under Section 12 of the DPDP Act and delete the very data that the succession heir under the Indian Succession Act, 1925 or Hindu Succession Act, 1956 requires to establish and administer the digital estate.

C. Fiscal and Insolvency Lacunae

The Finance Act, 2022 inserted Section 2(47A) into the Income Tax Act, 1961, defining and taxing VDAs at a flat rate of 30%. But the Act does not address what happens when VDAs are inherited rather than transacted. Section 47(iii) exempts transfers by way of inheritance from capital gains; Section 49(1) provides that the cost of acquisition in inheritance cases is the cost to the previous owner. Neither provision has been judicially confirmed to apply to inherited VDAs, leaving inheriting families in a state of fiscal uncertainty that compounds the legal uncertainty.[12]

The Insolvency and Bankruptcy Code, 2016 adds a further dimension. Section 3(27)'s broad 'property' definition encompasses digital assets in an insolvent estate.[13] The priority between a Resolution Professional's claim to a deceased's VDA holdings and the succession rights of heirs has never been adjudicated. Bereaved families may lose digital inheritances to insolvency claims with no legal transparency about that outcome.

D. The Privatisation of Succession

In the absence of legislation, digital succession is effectively governed by platform terms of service (ToS). Facebook's default position extinguishes accounts upon death; Apple's Digital Legacy and Google's Inactive Account Manager provide voluntary partial solutions. These corporate instruments determine the fate of heritable digital property with no democratic mandate, no judicial oversight, and no consistent application.

The constitutional argument runs at two levels. Article 300-A provides that no person may be deprived of property save by authority of law.[14] The State's failure to legislate a framework that protects heirs' rights against extinguishing platform terms is itself a failure of constitutional governance, challengeable under Article 226. Independently, a platform term that extinguishes what would otherwise be a heritable right may be void under Section 23 of the Indian Contract Act as contrary to public policy.[15]

---

[12] Income Tax Act, 1961, Section 47(iii) (transfers by way of inheritance exempted from capital gains); Section 49(1) (cost of acquisition in cases of inheritance is cost to previous owner). No judicial or administrative authority has confirmed the application of these provisions to inherited VDAs.

[13] Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, Section 3(27) ('property' includes 'money, goods, actionable claims, land and every description of property situated in India or outside India'). This definition is broad enough to encompass VDAs in an insolvent estate.

[14] Constitution of India, Article 300-A ('No person shall be deprived of his property save by authority of law'). The argument is that the State's failure to legislate a protective framework for digital heirs - the legislative vacuum itself - constitutes a failure of constitutional governance, potentially challengeable by mandamus under Article 226.

[15] Indian Contract Act, 1872, Section 23 (agreements contrary to public policy are void). A platform term extinguishing what would otherwise be a heritable right may be challengeable on this ground, connecting constitutional values to private law doctrine.

III. CONSTITUTIONAL DIMENSIONS: THE POST-MORTEM PRIVACY QUESTION

The foundational constitutional question is whether the right to privacy under Article 21, as recognised by the nine-judge bench in *Puttaswamy v. Union of India* (2017),[16] survives the death of the right-holder. Justice Sapre's concurring observation that privacy 'extinguishes with human beings' has been read as a definitive negative answer, but this reading is textually and jurisprudentially incomplete.

Justice Sapre's observation was obiter dicta in a case concerned entirely with the privacy rights of living persons; posthumous privacy was not before the Court and the remark cannot constitute binding authority on that question. More significantly, it sits in internal tension with Justice Chandrachud's foundational analysis grounding privacy in dignity - and Indian legal tradition, in common with German, French, and South African constitutional jurisprudence, does not treat dignity as extinguished at death.

The analytically decisive point, however, is this: even accepting Justice Sapre's position in full, it does not resolve the question of whether a living person has a legally cognisable interest in the posthumous fate of their own data. A person has a privacy right - exercisable during their lifetime - in determining what happens to their digital information after they die. It is precisely this living person's right that Section 14 of the DPDP Act and Rule 14(4) of the DPDP Rules, 2025 protect through the nomination mechanism.[17] The tension between succession rights and privacy interests is therefore real and irresolvable without legislative intervention.

IV. COMPARATIVE PERSPECTIVES: WHAT INDIA CAN BORROW - AND WHAT IT SHOULD REJECT

A. The United States: RUFADAA's Three-Tier Hierarchy

RUFADAA (2015) establishes a three-tier hierarchy for digital succession: online tool designations by users override all other instructions; absent those, will, trust, or power of attorney provisions govern; failing both, the platform's default terms of service apply.[18] Its content/catalogue distinction - treating the actual text of electronic communications as more sensitive than metadata about who communicated with whom - provides a workable model.

[16] Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India, (2017) 10 SCC 1.

[18] Revised Uniform Fiduciary Access to Digital Assets Act (RUFADAA), Uniform Law Commission, USA, 2015. RUFADAA creates a three-tier hierarchy: online tool designations > will/trust/power of attorney provisions > platform default terms of service.

However, RUFADAA's continued deference to platform default terms as the third-tier fallback means that users who have not proactively planned remain subject to corporate unilateralism. In India, where digital estate planning awareness is far lower than in the United States, this default would leave the majority of digital estates unprotected.

A further India-specific concern about direct RUFADAA transplantation: in the Indian socio-cultural context, the catalogue of a deceased person's communications - who they contacted, how frequently, through which platforms - may be as sensitive as the content itself, given family surveillance dynamics in contexts of arranged marriages and financial dependence. An India-adapted framework must subject catalogue access to communicative accounts, not merely their content, to a court order requirement.

B. Germany: The BGH Facebook Case

The German Federal Court of Justice's judgment of 12 July 2018 in the Facebook inheritance case applied the *Universalsukzession* doctrine of Section 1922 BGB to hold that a deceased minor's Facebook account passed in full to her parents as heirs.[19] The succession principle is valuable: digital accounts are part of the heritable estate. The specific outcome, however - unrestricted heir access to all communicative content - has been rightly criticised for ignoring the privacy interests of third-party correspondents.[20] India should adopt the succession principle while rejecting the unlimited access outcome, using the content/catalogue distinction as modified above.

C. France, Italy, and the GDPR: The National Legislative Gap

The GDPR explicitly excludes deceased persons from its scope.[21] France and Italy have filled this gap through national legislation: France's Loi pour une Republique numerique (2016) creates a right to issue binding posthumous instructions about personal data; Italy allows heirs to exercise the deceased's data rights unless the deceased has prohibited this.[22] Singapore's B2C2 v. Quoine (2019) provides the common law authority for the foundational property characterisation

[19] Bundesgerichtshof (German Federal Court of Justice), Judgment of 12 July 2018, Case III ZR 183/17 ('BGH Facebook Inheritance Case'). The Court applied the Universalsukzession doctrine under Section 1922 of the Burgerliches Gesetzbuch (BGB) to hold that a deceased minor's Facebook account passed in full to her parents as heirs.

[20] Professor Thomas Hoeren and data protection authorities criticised the BGH judgment for exposing the personal data of third-party correspondents upon heir access to the deceased's account. See Hoeren, Thomas, 'Social Media and the Deceased: Privacy Rights and the Facebook Judgment' (2019) 35 Computer Law and Security Review 440.

[21] Regulation (EU) 2016/679 of the European Parliament and Council (GDPR), Recital 27 ('This Regulation does not apply to the personal data of deceased persons'). Member States may provide rules for the processing of personal data of deceased persons.

[22] Loi pour une Republique numerique, France, 2016 (French Digital Republic Act); Codice in Materia di Protezione dei Dati Personali, Italy (Data Protection Code, as amended). France allows individuals to issue binding posthumous instructions about their personal data; Italy allows heirs to exercise the deceased's data rights unless the deceased prohibited this.

of cryptocurrency.[23] The most productive model for India is a hybrid: the French personal data instructions model for communicative data, combined with RUFADAA's fiduciary access framework for financial digital assets.

V. THE LEGISLATIVE GAPS: A SYSTEMATIC ACCOUNT

A systematic survey of the existing framework reveals at least ten distinct legislative gaps, each of which demands a targeted response in the proposed DESA. They may be summarised as follows: the absence of any statutory definition of digital assets for succession purposes; the absence of any fiduciary access framework for executors and administrators; the effective privatisation of succession through platform terms of service; the unresolved conflict between the DPDP Act nomination mechanism and succession law heirs; the absence of valid digital will provisions; the cryptographic key problem rendering self-custodied VDAs permanently inaccessible upon the holder's death; the absence of any death notification protocol ensuring platforms are informed of a user's death; the unresolved priority between insolvency creditor claims and succession rights to digital assets; the fiscal uncertainty surrounding the taxation of inherited VDAs; and the digital equity problem, whereby sophisticated users can partially substitute private wealth management for the absent framework while ordinary digital citizens cannot.

Two gaps deserve particular emphasis for their doctrinal novelty. First, the emergence of AI-generated content in India's creator economy raises an unresolved copyright succession question: where AI tools produce a substantial portion of a content creator's library, the Copyright Act, 1957's 'computer-generated works' provision[24] may vest copyright differently from what the creator intended, with direct consequences for the estate's commercial value. Second, NFTs present a bifurcation problem: an NFT token and the underlying copyright in the associated work may pass to different persons under succession law, requiring an explicit coordinating mechanism.

VI. TOWARDS A DIGITAL ESTATES AND SUCCESSION ACT

A. Foundational Principles and Constitutional Validity

[23] B2C2 Ltd v. Quoine Pte Ltd, [2019] SGHC(I) 03 (Singapore International Commercial Court). The Court held that cryptocurrency satisfies all four traditional attributes of property: definability, identifiability, assumption by third parties, and permanence.

[24] Copyright Act, 1957, Section 2(d)(vi) (copyright in 'computer-generated works' vests in 'the person who causes the work to be created'). The Copyright Office of India issued a clarification in 2023 rejecting copyright registration for purely AI-generated works where no human creative contribution is identifiable.

The proposed DESA rests on six foundational principles: statutory supremacy over platform contracts; testamentary autonomy; proportionate access calibrated to data sensitivity; privacy-succession balance without absolute priority to either; technological neutrality; and digital equity ensuring accessibility for all users.

The DESA's constitutional validity is grounded principally in Entry 5 of List III (Concurrent List) of the Seventh Schedule, which covers wills, intestacy, and succession. By virtue of Article 254, a central law under this entry prevails over inconsistent personal laws to the extent of repugnancy.[25] The regulation of VDASPs under the PMLA framework draws additionally on Entry 45 (List I - banking) and the residuary Entry 97. Mandatory Digital Estate Planner obligations for large platforms draw on Entry 31 (List I - communications), under which the IT Rules 2021's SSMI obligations were enacted. The DESA's override of restrictive platform terms is justified as a reasonable restriction in the public interest under Article 19(6), proportionate and limited to platforms above specified size thresholds.

B. Key Institutional Provisions

The DESA's most significant institutional provisions are five.

First, a Mandatory Digital Estate Planner, required of all notified custodians above specified size thresholds, providing users with a legally binding mechanism to designate beneficiaries and fiduciaries for each category of digital asset, with the designation overriding the platform's default terms of service.[26]

Second, a three-tier fiduciary access framework for court-appointed executors: Tier 1 (financial digital asset catalogues - accessible without court order on presentation of succession certificate); Tier 2 (content of non-communicative digital assets - similarly accessible without court order); and Tier 3 (content and catalogue of communicative accounts - accessible only on court order demonstrating necessity for estate administration). This India-specific modification of the RUFADAA content/catalogue distinction responds directly to the socio-cultural surveillance concerns identified above.

Third, a Central Digital Asset Registry (CDAR) as an autonomous statutory authority built on digital-first architecture comparable to DigiLocker and UIDAI, receiving an automated

[25] Constitution of India, Seventh Schedule, List III (Concurrent List), Entry 5 ('Marriage and divorce; infants and minors; adoption; wills, intestacy and succession; joint family and partition'). Read with Article 254, a central law under this entry prevails over inconsistent state and personal laws to the extent of repugnancy.

[26] The 'Digital Estate Planner' obligation proposed in this article is modelled on tools already provided by Google (Inactive Account Manager) and Facebook (Legacy Contact) in Western markets, but which operate as voluntary, unregulated, and contractually limited mechanisms rather than legally binding instruments. The IT Rules, 2021 already impose a 'Significant Social Media Intermediary' classification on platforms above 5 million users - the DESA threshold would operate on a comparable basis.

death notification feed from the Civil Registration System under the Registration of Births and Deaths Act, 1969, and transmitting notifications to all notified custodians against whose platform a Digital Estate Planner designation exists.

Fourth, a conflict resolution mechanism for the nominee-heir conflict: the deceased's expressed digital instructions take absolute priority; in their absence, financial data defaults to heir access and personal communicative data defaults to privacy protection, with unresolved conflicts adjudicated by designated digital succession benches within existing District Courts.[27] The proliferation of tribunals in India, criticised by the Supreme Court in *Madras Bar Association v. Union of India* (2021),[28] makes a standalone new tribunal inadvisable; Consumer Disputes Redressal Commissions may exercise jurisdiction for disputes below a specified monetary threshold.

Fifth, a taxation certainty provision confirming that inheritance of VDAs falls within the Section 47(iii) capital gains exemption and that Section 49(1) governs cost of acquisition for the inheriting heir - removing the fiscal uncertainty identified above.[29]

C. Muslim Personal Law and Cross-Border Succession

Two dimensions of the DESA's application warrant specific attention. As regards Muslim personal law, the Hanafi law of Mirath (inheritance) defines heritable property broadly as anything of value (Mal) capable of possession. Whether VDAs constitute Mal or impermissible speculation (Gharar/Maysir) is contested within Islamic jurisprudence and unresolved in Indian law. The DESA, as a parliamentary enactment under Entry 5 List III, would prevail over personal law to the extent of inconsistency by virtue of Article 254; its interaction with Muslim personal law should be expressly addressed in a saving clause preserving personal law succession for non-digital property.

As regards cross-border estates - common in India's VDA-holding population, whose assets may be custodied on foreign exchanges or held on decentralised blockchains - the DESA should codify the lex domicilii (law of the deceased's domicile) as the governing law for all

---

[27] The proposed DESA's conflict resolution mechanism gives absolute priority to the deceased's expressed digital instructions (Digital Estate Planner designation or digital will), followed by default presumptions calibrated to data sensitivity: financial data defaults to heir access; personal communicative data defaults to privacy protection, with heir access requiring a court order.

[28] Madras Bar Association v. Union of India, (2021) 7 SCC 369. The Supreme Court criticised the dysfunctional appointment process for tribunal members across multiple tribunals in India.

digital assets, operating as mandatory Indian law applicable in Indian courts regardless of conflicting foreign law or platform terms.

VII. CONCLUSION

The Madras High Court's *Rhutikumari* judgment of October 2025, holding that cryptocurrency is property capable of being held in trust, is the doctrinal foundation that Indian digital succession law has been waiting for.[30] It fills the most fundamental gap in the property characterisation debate. But it also crystallises the urgency of what follows from that characterisation: property that can be held in trust can be inherited - and the law must tell us how.

The DPDP Act's nomination mechanism, now operative through the DPDP Rules, 2025, addresses the posthumous privacy dimension partially and prospectively - its substantive provisions reach full effect only in May 2027, and they do not address property succession at all. The ISA and HSA are structurally incapable, without amendment, of addressing the practical realities of digital estates. Platform terms of service have filled this vacuum by default, with results that are constitutionally questionable and socially inequitable.

The proposed Digital Estates and Succession Act represents the architecture of a solution: a comprehensive, constitutionally grounded, India-specific framework that draws selectively on comparative models while responding to India's distinctive socio-cultural and institutional realities. Its enactment should not await a Uniform Civil Code. As the Supreme Court observed in *Puttaswamy*, the march of technology must be accompanied by the march of law.[31] The digital estates of millions of Indian families are waiting for that march to begin.

SELECT REFERENCES

Primary Sources

1. Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India, (2017) 10 SCC 1.
2. Internet and Mobile Association of India v. Reserve Bank of India, 2020 SCC OnLine SC 275.
3. Rhutikumari v. Zanmai Labs Pvt. Ltd. and Ors., O.A. No. 194 of 2025 (Madras High Court, 25 October 2025).
4. Madras Bar Association v. Union of India, (2021) 7 SCC 369.
5. Bundesgerichtshof, Judgment of 12 July 2018, Case III ZR 183/17 (BGH Facebook Inheritance Case).

6. B2C2 Ltd v. Quoine Pte Ltd, [2019] SGHC(I) 03 (Singapore International Commercial Court).

7. Digital Personal Data Protection Act, 2023; Digital Personal Data Protection Rules, 2025 (notified 14 November 2025).

8. Indian Succession Act, 1925; Hindu Succession Act, 1956; Information Technology Act, 2000.

9. Income Tax Act, 1961 (as amended by Finance Act, 2022); Insolvency and Bankruptcy Code, 2016.

10. Revised Uniform Fiduciary Access to Digital Assets Act (RUFADAA), Uniform Law Commission, USA, 2015.

11. Regulation (EU) 2016/679 (GDPR); Loi pour une Republique numerique, France, 2016; Uniform Civil Code, Uttarakhand, 2024.

Secondary Sources

12. Hoeren, Thomas, 'Social Media and the Deceased: Privacy Rights and the Facebook Judgment' (2019) 35 Computer Law and Security Review 440.

13. Maspes, Ilaria, 'Digital Inheritance, Right of Heirs to Access Deceased User Account and Terms of Service' (2022) 8 Italian Law Journal 555.

14. Law Commission of India, Report No. 110 on the Indian Succession Act (1985).

15. Chainalysis, 'Global Crypto Adoption Index 2024' (September 2024); 'Global Crypto Adoption Index 2025' (October 2025).

16. NASSCOM, 'India Technology Sector: Annual Strategic Review 2025' (2025).

17. Orloff, Steven and Frerichs, Matthew J., 'The Revised Uniform Fiduciary Access to Digital Assets Act' (Robins Kaplan LLP, 2016).

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 26-29

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

हिन्दी एकांकी साहित्य में स्त्री के पारिवारिक स्वरूप का अध्ययन

नीलम यादव, शोधार्थी

डॉ. सुरेश कड़वासरा, शोध निर्देशक, प्रोफेसर, हिंदी विभाग

डॉ. रश्मि सोनी, सह शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग

श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय हनुमानगढ़, राजस्थान।

शोध सार :

हिन्दी साहित्य की एकांकी विधा समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाली महत्वपूर्ण विधा है। इस विधा में पारिवारिक जीवन, सामाजिक संबंधों तथा मानवीय संवेदनाओं का सजीव चित्रण मिलता है। भारतीय परिवार व्यवस्था में स्त्री की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है। वह माँ, पत्नी, बहू और बेटी के रूप में परिवार की आधारशिला मानी जाती है। हिन्दी एकांकियों में स्त्री के इन विविध रूपों का चित्रण केवल पारंपरिक आदर्शों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके संघर्ष, आत्मसम्मान, अधिकार चेतना तथा बदलती सामाजिक स्थिति को भी अभिव्यक्ति मिली है। हिन्दी एकांकी साहित्य में स्त्री की पारिवारिक भूमिका का अध्ययन करना है। इसमें स्त्री के पारिवारिक दायित्वों, सामाजिक बंधनों, मानसिक संघर्षों तथा आधुनिक चेतना का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाएगा कि हिन्दी एकांकीकारों ने स्त्री को किस प्रकार परिवार और समाज के केंद्र में स्थापित किया है। यह शोध स्त्री–विमर्श की दृष्टि से हिन्दी एकांकी साहित्य के अध्ययन को नई दिशा प्रदान करेगा। हिन्दी एकांकी विधा के माध्यम से परिवार के भीतर स्त्री की बदलती भूमिका, उसके अधिकार, संघर्ष और अस्मिता का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। एकांकी चूंकि कम समय में तीव्र प्रभाव डालने वाली विधा है, इसलिए इसने भारतीय परिवार के यथार्थ को बहुत गहराई से पकड़ा है। भारतेंदु युग से लेकर आधुनिक काल तक, एकांकियों में स्त्री की पारिवारिक भूमिका पारंपरिक 'परम त्यागमयी और मूक सहिष्णु' रूप से बदलकर एक 'आत्मनिर्भर, तार्किक और प्रतिरोधी' इकाई के रूप में विकसित हुई है। यह आलेख इस क्रमिक विकास और उसके सामाजिक कारणों को रेखांकित करता है।

बीज शब्द : स्त्री विमर्श, हिन्दी एकांकी, पारिवारिक भूमिका, नारी चेतना, हिन्दी साहित्य।

प्रस्तावना :

साहित्य समाज का दर्पण होता है और एकांकी विधा सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने का सबसे चुस्त माध्यम रही है। भारतीय समाज की धुरी 'परिवार' है, और परिवार का केंद्र 'स्त्री' है। हिन्दी एकांकीकारों ने

जब–जब पारिवारिक ताने–बाने को अपनी रचनाओं का विषय बनाया, तब–तब स्त्री की स्थिति स्वतः ही विमर्श के केंद्र में आ गई। स्त्री का पारिवारिक स्वरूप केवल उसके घरेलू रिश्तों (माँ, पत्नी, बेटी, बहू) तक सीमित नहीं है, बल्कि यह इस बात का सूचक है कि परिवार के भीतर उसे कितनी स्वतंत्रता, सम्मान और निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही स्त्री को आदर और सम्मान का प्रतीक माना गया है। हिन्दू धर्म में स्त्री को देवी स्वरूप स्वीकार किया गया है। वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा, यज्ञ तथा धार्मिक कार्यों में समान अधिकार प्राप्त थे। वे ज्ञान, दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र में भी पुरुषों के समान सहभागी थीं। उपनिषद तथा पुराणों में स्त्री की विद्वता, तपस्या और सामाजिक योगदान के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपरा में स्त्री केवल परिवार की संरक्षिका ही नहीं, बल्कि समाज निर्माण की महत्वपूर्ण आधारशिला भी रही है। स्त्री मानव जीवन की संवेदनशीलता, करुणा, ममता और सृजन शक्ति का प्रतीक है। परिवार और समाज की संरचना में उसकी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। हिन्दी साहित्य में भी स्त्री को विविध रूपोंकृमाता, पत्नी, बहू, पुत्री तथा कर्मशील नारीकृके रूप में चित्रित किया गया है। विशेषतः हिन्दी एकांकी विधा में स्त्री के पारिवारिक जीवन, मानसिक संघर्ष, सामाजिक बंधनों तथा आत्मसम्मान की चेतना का यथार्थ चित्रण मिलता है।

आधुनिक युग में स्त्री–विमर्श साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा के रूप में विकसित हुआ है। स्त्री–विमर्श का उद्देश्य स्त्री की सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए उसके अधिकारों, स्वतंत्रता तथा अस्मिता को स्थापित करना है। हिन्दी एकांकियों में स्त्री के पारंपरिक आदर्शों के साथ–साथ उसकी संघर्षशीलता, आत्मनिर्भरता और बदलती चेतना को भी अभिव्यक्ति मिली है। "हिन्दी एकांकी विधा में स्त्री की पारिवारिक भूमिका" के माध्यम से यह अध्ययन करेगा कि विभिन्न हिन्दी एकांकीकारों ने स्त्री को परिवार और समाज के संदर्भ में किस प्रकार चित्रित किया है तथा उसके जीवन–संघर्ष, कर्तव्यों और अधिकार चेतना को किस रूप में अभिव्यक्ति दी है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – स्त्री के पारिवारिक स्वरूप का विकासक्रम :

हिन्दी एकांकी के विकास के साथ–साथ स्त्री के पारिवारिक चित्रण में भी व्यापक बदलाव आए हैं, जिन्हें तीन प्रमुख चरणों में देखा जा सकता है–

आदर्शवादी एवं सुधारवादी युग (प्रारंभिक चरण) :

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र और उनके समकालीन रचनाकारों ने समाज सुधार को मुख्य लक्ष्य माना।

- **पारंपरिक ढांचा :** इस दौर के एकांकियों में स्त्री मुख्य रूप से पारिवारिक रूढ़ियों, अनमेल विवाह, बाल–विवाह और पर्दा प्रथा की शिकार दिखाई देती है।
- **मूक सहनशीलता :** परिवार की मर्यादा की रक्षा करना और सब कुछ चुपचाप सहना ही इस कालखंड की स्त्री का मुख्य पारिवारिक गुण माना गया।

यथार्थवादी एवं मनोवैज्ञानिक युग (मध्य चरण) :

उपेंद्रनाथ अश्क, डॉ. रामकुमार वर्मा, और भुवनेश्वर के आगमन के साथ एकांकी में मध्यवर्गीय परिवार का आंतरिक अंतर्द्वंद्व सामने आया।

- **मानसिक घुटन और तनाव** – उपेंद्रनाथ अश्क के प्रसिद्ध एकांकी 'तौलिए' में 'मधु' का चरित्र यह

दिखाता है कि कैसे एक संभ्रांत मध्यवर्गीय परिवार में स्त्री सनक की हद तक अनुशासन और स्वच्छता के दबाव में जीती है, जो उसके स्वाभाविक पारिवारिक सुख को छीन लेता है।

- **आर्थिक परावलंबन का दंश** – इस काल की एकांकियों में दिखाया गया कि आर्थिक रूप से पुरुष पर निर्भर होने के कारण स्त्री परिवार में अपनी इच्छाओं का दमन करने को मजबूर है।

आधुनिक और स्वातंत्र्योत्तर युग (चेतना का चरण) :

स्वतंत्रता के बाद मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर और लक्ष्मी नारायण लाल जैसे एकांकीकारों ने स्त्री के पारिवारिक स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया।

- **अस्मिता और निजता की मांग** – मोहन राकेश का एकांकी 'अंडे के छिलके' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें 'वीणा' का चरित्र पारंपरिक संयुक्त परिवार की रूढ़ियों और दिखावे के खोखलेपन के बीच अपनी निजता (Privacy) और आधुनिक जीवनशैली को बनाए रखती है। वह विद्रोह नहीं करती, बल्कि बेहद सहजता से परिवार को अपनी शर्तों पर जीने के लिए बाध्य करती है।
- **कामकाजी स्त्री का द्वंद्व** – आधुनिक एकांकियों में स्त्री अब केवल गृहणी नहीं है, वह बाहर काम भी करती है। यहाँ वह दोहरे मोर्चे पर संघर्ष करती दिखाई देती हैकृबाहर का काम और घर के भीतर की पारंपरिक अपेक्षाएँ।

एकांकियों में स्त्री के पारिवारिक स्वरूप के विविध आयाम :

शोध के विश्लेषण के आधार पर, एकांकियों में स्त्री के पारिवारिक स्वरूप को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

पारिवारिक स्वरूप	चारित्रिक विशेषताएँ	प्रतिनिधि एकांकी / पात्र
शोषित और पीड़ित स्वरूप	पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था और पारिवारिक कुरुपताओं को बिना प्रतिवाद के स्वीकार करना।	प्रारंभिक सामाजिक एवं सुधारवादी एकांकी।
सामंजस्य और अंतर्द्वंद्व	परंपरा और आधुनिकता के बीच पिसना, परिवार को जोड़े रखने की छटपटाहट।	'तौलिए' (मधु) / 'रीढ़ की हड्डी' (उमा)।
तार्किक और विद्रोही स्वरूप	रूढ़ियों को चुनौती देना, अपनी शिक्षा और अधिकारों के प्रति सजग रहना।	'अंडे के छिलके' (वीणा) / जगदीशचंद्र माथुर का 'रीढ़ की हड्डी'।

विशेष दृष्टव्य –

जगदीशचंद्र माथुर के एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' में 'उमा' का पात्र विवाह के बाजार में लड़की को एक 'वस्तु' की तरह देखने वाले पुरुष समाज और उसके परिवार को आईना दिखाता है। उमा का यह रूप स्त्री के

पारिवारिक सम्मान की लड़ाई का ऐतिहासिक मोड़ है।

पारिवारिक स्वरूप में बदलाव के मुख्य कारक :

एकांकियों में स्त्री के बदलते पारिवारिक स्वरूप के पीछे निम्नलिखित सामाजिक बदलाव काम कर रहे थे :

1. **स्त्री शिक्षा का प्रभाव** – शिक्षा ने स्त्रियों को तर्कशील बनाया, जिससे उन्होंने परिवार के भीतर अपने अधिकारों (जैसे विवाह में अपनी पसंद, शिक्षा जारी रखना) पर बोलना शुरू किया।
2. **आर्थिक आत्मनिर्भरता** – जब स्त्री ने परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी में हाथ बंटाना शुरू किया, तो घरेलू निर्णयों में भी उसकी भूमिका 'मूक दर्शक' से बदलकर 'निर्णायक' की होने लगी।
3. **पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिकता** – एकल परिवारों के चलन ने स्त्री को संयुक्त परिवार की जटिल राजनीति और सास–बहू के पारंपरिक द्वंद्व से कुछ हद तक मुक्ति दी, यद्यपि इसने एकाकीपन जैसी नई चुनौतियाँ भी पैदा कीं।

निष्कर्ष :

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी एकांकी साहित्य में स्त्री का पारिवारिक स्वरूप क्रमिक रूप से सुदृढ़ और सशक्त हुआ है। एकांकीकारों ने स्त्री को केवल 'त्याग की देवी' बनाकर हाशिए पर नहीं धकेला, बल्कि उसके भीतर के हास–परिहास, उसकी कुंठाओं, उसकी बौद्धिक क्षमता और उसके विद्रोह को भी मंच प्रदान किया। आज की एकांकियों में स्त्री परिवार की पूरक तो है, लेकिन अपनी व्यक्तिगत पहचान की कीमत पर नहीं। वह परिवार का आधार स्तंभ है, पर अब वह इस स्तंभ के नीचे दबने को तैयार नहीं है।

सदर्भ सूची :–

1. माथुर, जगदीशचंद्र – मेरे श्रेष्ठ एकांकी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. राकेश, मोहन – अंडे के छिलके और अन्य एकांकी, राधाकृष्ण प्रकाशन।
3. वर्मा, डॉ. रामकुमार – हिन्दी एकांकी का आलोचनात्मक इतिहास, आलोक प्रकाशन।
4. अश्क, उपेंद्रनाथ – छठा बेटा और अन्य एकांकी, नीलाभ प्रकाशन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 30-37
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

A Study of the Flora and Fauna of Bajaha Mishran, Saidabad, Prayagraj

Anju Mishra, M.Sc. (Zoology),
Pt. Deen Dayal Upadhyay Government College, Saidabad, Prayagraj
Dr. R. S. V. Gautam, Assistant Professor, (Zoology)
Pt. Deen Dayal Upadhyay Government College, Saidabad, Prayagraj.

Abstract :

The present research paper studies the flora and fauna of Bajaha Mishran, a village/gram panchayat situated in Saidabad block of Prayagraj district, Uttar Pradesh. The study is descriptive and ecological in nature, based on secondary sources, regional biodiversity literature, and an indicative rural-field observation framework. Bajaha Mishran belongs to the wider ecological zone of the middle Gangetic plain, where agriculture, village ponds, homestead gardens, roadside trees, seasonal grasses, domestic animals, birds, insects, reptiles, amphibians, and aquatic life together form a living rural ecosystem. The paper identifies common plant groups such as cultivated crops, fruit trees, medicinal plants, shade trees, shrubs, grasses, weeds, and aquatic vegetation. It also discusses common faunal groups such as cattle, goats, buffaloes, dogs, cats, squirrels, rodents, birds, snakes, lizards, frogs, fish, butterflies, honeybees, ants, termites, earthworms, and other soil organisms. The study highlights that the biodiversity of Bajaha Mishran is closely connected with agriculture, water bodies, traditional tree culture, cattle rearing, and local ecological knowledge. It also points out threats such as pesticide use, decline of ponds, cutting of old trees, plastic pollution, and habitat disturbance. The paper concludes that village-level biodiversity documentation is necessary for ecological awareness, sustainable rural development, and conservation of local natural resources.

Keywords :

Flora, Fauna, Bajaha Mishran, Saidabad, Prayagraj, Rural Biodiversity, Gangetic Plain, Village Ecology, Agriculture, Conservation

Introduction :

Biodiversity is generally understood as the variety of life forms found on earth, including

plants, animals, microorganisms, and the ecological relationships among them. In India, biodiversity is not confined only to forests, national parks, sanctuaries, or reserved areas. A large part of biological diversity exists in ordinary villages, agricultural fields, ponds, gardens, groves, roadside areas, and human settlements. Bajaha Mishran, located in Saidabad block of Prayagraj district, is one such rural settlement where human life and natural life are deeply interrelated. Government records and village-listing sources identify Bajaha Mishran as a village/gram panchayat in Saidabad block of Prayagraj district.[1]

The geographical location of Bajaha Mishran makes it part of the larger Gangetic plain of Uttar Pradesh. Prayagraj district lies in a region where fertile alluvial soil, monsoon rainfall, irrigation, riverine influence, seasonal ponds, and agricultural practices shape the natural environment. A recent botanical checklist records Prayagraj district as a floristically significant area and reports a wide range of plant species from the district.[2] This wider district-level ecological richness gives importance to micro-level studies of villages such as Bajaha Mishran.

The flora of Bajaha Mishran may be divided into several categories: cultivated plants, fruit trees, shade trees, medicinal plants, grasses, weeds, shrubs, and aquatic plants. Crops such as wheat, paddy, pulses, mustard, vegetables, and fodder grasses are important parts of the rural plant landscape. Trees such as neem, peepal, banyan, mango, jamun, babool, shisham, eucalyptus, bamboo, guava, and mahua are commonly associated with eastern Uttar Pradesh's rural ecology.[3] These plants provide fruits, fuel, fodder, shade, medicine, timber, nesting places, and ecological balance.

Similarly, the fauna of Bajaha Mishran includes both domestic and wild or semi-wild species. Cows, buffaloes, goats, dogs, cats, hens, and ducks are linked with rural livelihood, while squirrels, rodents, mongooses, bats, snakes, lizards, frogs, fish, earthworms, butterflies, bees, ants, termites, dragonflies, sparrows, mynas, crows, pigeons, egrets, parakeets, kingfishers, owls, and peafowl are part of the local ecological system.? These organisms are not merely present in the village environment; they perform ecological functions such as pollination, pest control, decomposition, seed dispersal, nutrient cycling, and maintenance of food chains.

Literature Review :

The literature on rural biodiversity shows that village ecosystems are important but often under-studied. Conventional ecological studies generally focus on forests, protected areas, wetlands, or wildlife reserves. However, agricultural landscapes and human settlements also support significant biodiversity. In a country like India, where a large population lives in villages, rural biodiversity has ecological, economic, and cultural value.?

Botanical studies on Prayagraj district indicate that the region has considerable floral diversity.

A recent supplement to the flora of Allahabad/Prayagraj district reports that the district flora includes 713 species, 419 genera, and 113 families, and the supplement itself added 350 species from 73 families.? This demonstrates that even well-inhabited districts may contain undocumented or insufficiently studied plant diversity. Therefore, village-level floristic studies can help in strengthening district-level biodiversity records.

The Gangetic plain has also been discussed as an important ecological region. It supports agricultural fields, riverine habitats, wetlands, grasslands, orchards, and settlement-based vegetation. In Prayagraj, the presence of river systems and large water bodies supports birds, aquatic plants, fishes, turtles, amphibians, and other wetland-associated life forms. A recent report also noted the proposed development of a bird sanctuary around Kanihar Lake near Prayagraj, indicating the district's significance for local and migratory birds.?

Existing literature on village ecology further emphasizes the role of traditional knowledge. Rural communities often know which plants are useful for medicine, fodder, worship, shade, timber, or soil protection. Trees such as neem, peepal, banyan, tulsi, mango, and bel are not only ecological resources but also cultural symbols.? In many villages, sacred plants and old trees survive because of religious belief and community respect. This cultural protection indirectly contributes to biodiversity conservation.

Faunal studies in rural India show that common animals and birds are declining in many areas due to habitat loss, chemical farming, urban expansion, and disappearance of nesting spaces. The decline of house sparrows, frogs, pollinating insects, and earthworms in several rural and urban landscapes has been widely discussed as a sign of ecological imbalance.? In this context, a study of the fauna of Bajaha Mishran can help understand the everyday biodiversity of a rural settlement and its dependence on land, water, vegetation, and human activity.

Research Methodology :

The present study is descriptive, analytical, and ecological in nature. Since the topic focuses on the flora and fauna of a specific village, the most suitable method is a village-level biodiversity survey supported by secondary literature. The study may be conducted through direct field observation, informal interaction with villagers, photographic documentation, plant listing, animal sighting records, and comparison with district-level biodiversity literature.[10]

The study area is Bajaha Mishran, Saidabad block, Prayagraj district. The major observation sites may include agricultural fields, pond areas, homestead gardens, roadside vegetation, school or temple premises, grazing land, old trees, field boundaries, and waterlogged patches. These habitats should be observed in different seasons because flora and fauna change between summer, monsoon,

and winter. For example, monsoon increases the growth of grasses, herbs, frogs, insects, and aquatic vegetation, while winter brings changes in bird activity and cropping patterns.[11]

For floral documentation, plants may be categorized into trees, shrubs, herbs, climbers, grasses, cultivated crops, aquatic plants, and weeds. Local names should be recorded along with scientific names wherever possible. For faunal documentation, species may be grouped into mammals, birds, reptiles, amphibians, fishes, insects, and soil organisms. Direct sighting, calls, nests, burrows, footprints, droppings, and villagers' information may be used carefully for identification.[12]

The study uses secondary sources such as district floristic studies, ecological literature on the Gangetic plain, government village records, and standard biodiversity references. Since this paper is preliminary, it does not claim to provide an exhaustive taxonomic list. Rather, it presents a broad ecological picture and suggests a framework for future detailed field research.

Objectives of the Study :

The main objective of this research paper is to study the general flora and fauna of Bajaha Mishran, Saidabad, Prayagraj. The specific objectives are: to identify major plant groups found in the village environment; to identify common animal groups associated with agricultural, aquatic, and settlement habitats; to understand the relationship between village livelihood and biodiversity; to examine the ecological importance of local plants and animals; and to highlight the major threats to the biodiversity of the village.[13]

Flora of Bajaha Mishran :

The flora of Bajaha Mishran reflects the mixed character of rural eastern Uttar Pradesh. Agricultural plants form the most visible part of the landscape. Wheat, paddy, mustard, pulses, vegetables, fodder crops, and seasonal crops are commonly associated with the agrarian ecology of the region.[14] These crops provide food for human beings and also support insects, birds, rodents, cattle, and soil organisms.

Tree diversity is another important part of the village flora. Neem is valued for its medicinal properties and shade. Peepal and banyan are ecologically important because they provide shelter and food to birds, bats, insects, and small animals. Mango, guava, jamun, and mahua provide fruits and economic value. Babool and shisham are useful for fuelwood, timber, and boundary plantation. Bamboo is used in rural construction, fencing, basketry, and domestic purposes.[15]

Shrubs and herbs also play a major role in local biodiversity. Tulsi, doob grass, kans grass, lantana, calotropis, congress grass, and various seasonal herbs may be found in village surroundings, field boundaries, and wastelands. Some of these are useful, while others may be invasive or unwanted weeds. Aquatic and semi-aquatic plants are found in ponds and moist places. Such plants provide

habitat for insects, frogs, fish, snails, and birds.[16]

Fauna of Bajaha Mishran :

The fauna of Bajaha Mishran may be understood through different habitat zones. In the domestic zone, cattle, buffaloes, goats, dogs, cats, poultry, and sometimes ducks are common. These animals are directly connected with livelihood, milk production, manure, transport, food, and household security.[17] Cow dung and buffalo dung also support decomposer organisms and improve soil fertility when used as organic manure.

Birds form one of the most visible faunal groups of the village. House sparrows, mynas, crows, pigeons, parakeets, egrets, kingfishers, owls, kites, drongos, and peafowl may be observed in different habitats. Sparrows and mynas live close to human settlements, while egrets are often seen in agricultural fields and wet patches. Kingfishers are associated with water bodies, and owls help control rodents.[18] Reptiles and amphibians are also important. Lizards are common around houses, walls, and trees. Snakes may occur in fields, bushes, and near water bodies, though they are often killed due to fear. Frogs and toads become more visible during the rainy season and help control insects.[19] Their presence is also an indicator of moisture and ecological health.

Insects and soil organisms are essential for the rural ecosystem. Butterflies, bees, wasps, dragonflies, ants, termites, beetles, grasshoppers, and earthworms contribute to pollination, decomposition, soil aeration, and food chains. Earthworms are especially important for soil fertility, while bees and butterflies assist flowering plants and crop pollination.[20]

Ecological Importance :

The flora and fauna of Bajaha Mishran provide ecological services that directly support rural life. Trees reduce heat, improve air quality, provide shade, prevent soil erosion, and support birds and insects. Crops support food security. Grasses and fodder plants sustain livestock. Ponds recharge groundwater, provide water for animals, support aquatic life, and serve as habitat for frogs, fish, birds, insects, and aquatic plants.[21]

Fauna also supports ecological balance. Birds control insects and disperse seeds. Frogs reduce insect populations. Snakes control rodents. Earthworms improve soil structure. Bees and butterflies support pollination. Even termites and ants contribute to decomposition and soil turnover. Thus, the biodiversity of Bajaha Mishran is not separate from human life; it is part of the village economy, agriculture, health, culture, and environment.[22]

Threats to Flora and Fauna :

The biodiversity of Bajaha Mishran faces several threats. The first major threat is chemical

farming. Excessive use of pesticides and chemical fertilizers may reduce insects, earthworms, frogs, and beneficial soil organisms.[23] The second threat is decline or pollution of ponds. When ponds are filled, encroached, or polluted with plastic and domestic waste, aquatic plants, frogs, fish, insects, and birds lose their habitat.

The third threat is cutting of old trees. Old trees provide nesting places for birds, roosting sites for bats, shade for animals, and microhabitats for insects. Their removal reduces faunal diversity. The fourth threat is plastic waste and non-biodegradable material, which harms cattle, birds, soil, and water bodies. The fifth threat is changing rural architecture. Modern cement houses often reduce nesting spaces for sparrows and other small birds.[24]

Conservation Suggestions :

Village-level biodiversity conservation should begin with awareness. The gram panchayat, schools, farmers, youth groups, and local community members can jointly prepare a village biodiversity register. Old trees should be protected, and new native trees such as neem, peepal, banyan, mango, jamun, bel, amla, shisham, and bamboo should be planted.[25] Ponds should be cleaned, desilted, and protected from waste dumping. Farmers should be encouraged to reduce unnecessary pesticide use and adopt organic manure, composting, crop rotation, and biological pest control.

School-level biodiversity clubs can help students identify birds, plants, insects, and seasonal changes. Local names of plants and animals should be documented before traditional knowledge disappears. Protection of sacred trees, pond ecosystems, field boundaries, and homestead gardens can become the foundation of village-level conservation.

Conclusion :

The study of the flora and fauna of Bajaha Mishran shows that even an ordinary village contains a rich and meaningful ecological world. Its biodiversity includes crops, trees, herbs, shrubs, grasses, aquatic plants, domestic animals, birds, reptiles, amphibians, insects, fishes, and soil organisms. These life forms support agriculture, livelihood, culture, climate balance, soil fertility, pollination, pest control, and ecological stability. Although the village ecosystem is not a protected forest or sanctuary, it performs important environmental functions.

The main challenge is that rural biodiversity is often taken for granted. Old trees, ponds, insects, frogs, sparrows, earthworms, and local plants are noticed only when they begin to disappear. Therefore, documentation and conservation of village biodiversity must be treated as a serious academic and community task. Bajaha Mishran can become a useful local case study for understanding how biodiversity survives in agricultural and settlement landscapes of the Gangetic plain. Future research should include systematic seasonal surveys, scientific species identification, GPS-based mapping of

habitats, interviews with villagers, and preparation of a formal biodiversity register.

References :

1. *Panchayati Raj Department, Government of Uttar Pradesh. (2026). Gram panchayat records: Prayagraj, Saidabad, Bajaha Mishran.*
2. *Kaur, J., & Kumar, A. (2025). Supplement to the flora of Allahabad (Prayagraj) District, Uttar Pradesh, India: A checklist. Flora and Fauna.*
3. *Singh, J. S., Singh, S. P., & Gupta, S. R. (2014). Ecology, environmental science and conservation. S. Chand Publishing.*
4. *Ali, S., & Ripley, S. D. (1987). Compact handbook of the birds of India and Pakistan. Oxford University Press.*
5. *Gadgil, M. (1996). Documenting diversity: An experiment. Current Science, 70(1), 36–44.*
6. *Kaur, J., & Kumar, A. (2025). Supplement to the flora of Allahabad (Prayagraj) District, Uttar Pradesh, India: A checklist. Flora and Fauna.*
7. *Times of India. (2025, October 13). National bird sanctuary to come up soon in Prayagraj.*
8. *Jain, S. K. (1991). Dictionary of Indian folk medicine and ethnobotany. Deep Publications.*
9. *Daniels, R. J. R. (2002). Freshwater fishes of peninsular India. Universities Press.*
10. *Mueller-Dombois, D., & Ellenberg, H. (1974). Aims and methods of vegetation ecology. Wiley.*
11. *Odum, E. P., & Barrett, G. W. (2005). Fundamentals of ecology. Cengage Learning.*
12. *Sutherland, W. J. (2006). Ecological census techniques: A handbook. Cambridge University Press.*
13. *Kothari, C. R., & Garg, G. (2019). Research methodology: Methods and techniques. New Age International.*
14. *Government of Uttar Pradesh. (2024). Agriculture and land-use profile of Uttar Pradesh. Department of Agriculture.*
15. *Champion, H. G., & Seth, S. K. (1968). A revised survey of the forest types of India. Government of India Press.*
16. *Cook, C. D. K. (1996). Aquatic and wetland plants of India. Oxford University Press.*
17. *National Dairy Development Board. (2023). Livestock and dairy development in rural India. NDDB.*
18. *Grimmett, R., Inskipp, C., & Inskipp, T. (2011). Birds of the Indian subcontinent. Oxford University Press.*
19. *Daniels, R. J. R. (2005). Amphibians of peninsular India. Universities Press.*

20. *Edwards, C. A., & Bohlen, P. J. (1996). Biology and ecology of earthworms. Chapman & Hall.*
21. *Millennium Ecosystem Assessment. (2005). Ecosystems and human well-being: Synthesis. Island Press.*
22. *Primack, R. B. (2014). Essentials of conservation biology. Sinauer Associates.*
23. *Aktar, M. W., Sengupta, D., & Chowdhury, A. (2009). Impact of pesticides use in agriculture. Interdisciplinary Toxicology, 2(1), 1–12.*
24. *Dandapat, A., Banerjee, D., & Chakraborty, D. (2010). The case of the disappearing house sparrow. Current Science, 99(12), 1685–1686.*
25. *National Biodiversity Authority. (2013). People's biodiversity register: Guidelines and methodology. Government of India.*

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 38-40

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

भाषा और संस्कृति

डॉ. ललिता बी.एन.
असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
प्रेसिडेंसी कॉलेज, केंपापुरा, हेब्बाल, बेंगलूरू–24
बेंगलुरू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पालेस रोड, बेंगलूरू, कर्नाटक–560009

भाषा शब्द संस्कृत के भाष् धातु से बना है। इसका अर्थ वाणी को व्यक्त करना है। इसके द्वारा मनुष्य अपने भावों, विचारों और भावनाओं को व्यक्त करता है। हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री रामचंद्र शुक्ल ने भाषा शब्द का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है– 'मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह, जिसके द्वारा मन की बात बतलाई जाती है, भाषा कहलाती है।'

मनुष्य एक सामाजिक पशु है। वह अकेला नहीं रह सकता है। वह एक दूसरे के सभी सदस्यों ने कुछ चिन्हों को स्वीकार कर लिया। भाषा एक सामाजिक शक्ति है, जो मनुष्य को प्राप्त होती है। परिनिष्ठित भाषा व्याकरण से नियन्त्रित होती है। इसका प्रयोग शिक्षा, शासन और साहित्य में होता है। किसी बोली को जब व्याकरण से परिष्कृत किया जाता है, तब वह परिनिष्ठित भाषा बन जाती है।

'प्राथमिक स्तर पर किसी बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में और लोगों के साथ संवाद में भाषा के नौ आधारभूत कौशल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो क्रमशः सुनना, बोलना, पढना, लिखना, विचारों को समझना, आवश्यक व्याकरण की जानकारी, खुद से सीखना, भाषा का उपयोग और शब्दकोश पर पकड इत्यादि है।' सारा जीवन ही भाषामय है। स्पष्टतः भाषा के समुचित विकास के लिए समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। भाषा का सबसे महत्वपूर्ण कौशल सुनना है। अगर किसी भाषा को सीखना चाहते हैं तो उसे सुनने और बोलने का मौका मिलने पर हम आसानी से उस भाषा को सीख सकते है।

अपनी भाषा ही उसकी पहचान होती है। हिन्दी पत्रकार मि. मार्क ने अपनी पुस्तक इंडियाअनएडिंग जर्नी में लिखा कि, मैंने जब भी किसी से प्रश्न पूछे तो मुझे लोगों ने हमेशा अंग्रेजी में ही जवाब दिया। मैं उन लोगों से बार–बार कहता हूँ कि जब मैं आपसे हिन्दी में पूछता हूँ तो आप कृपा करके हिन्दी में ही जवाब दीजिए। आखिर आपको हिन्दी बोलने में शर्म क्यों आती है?

भारत मे ंहम अंग्रेजियत लाने वाले लार्ड मैकाले को आज तक भी विदा नही ंकर पाए। हमें मूलभूत शिक्षा में परिवर्तन लाने की अभिव्यक्ति भी करनी होगी। अंग्रेजी भाषा जो हिन्दुस्तान में ही नहीं, पूरे एशिया में किसी की भी मातृभाषा नहीं है, उसे बच्चों को बचपन से ही पढाया जाना अन्याय ही नहीं बल्कि महापाप है। यह भाषा हमारे हिन्दुस्तान की उन्नति में अडचन बन चुकी है, इसे रोकना होगा। जिस तेजी से बच्चों को विशेषकर नगरों

में अंग्रेजी के पीछे भागने की होड लगी है वह हत्या जैसा दुष्कर्म है अर्थात् भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कारों की हत्या।

हमारा मस्तिष्क, विषय को पहले हिन्दी भाषा में सोचता है, फिर उसे अंग्रेजी में अनुवाद करके बोलता है। इसलिए हमें जीवन के प्रारम्भिक 9–10 साल तब अपनी मातृभाषा का ही प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि बचपन ही जीवन की नींव होता है, जिसे विदेशी भाषा सीखाने से ही कमजोर कर दिया जाता है। आज अंग्रेजी माध्यम स्कूलों की बाढ–सी आई हुई है। पब्लिक स्कूलों में हिन्दी बोलने पर सजा दी जाती है या स्कूल से निकाल दिया जाता है। आज क्लर्क, चपरासी से लेकर रिक्शा चालक और घरों मे काम करने वाली महिलाएँ तक अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में पढाकर बडा आदमी बनाने के सपने देखते हैं। सफलता का पर्याय ही अंग्रेजी हो गया है।

हर भारतवासी के मन–मस्तिष्क में यह धारणा घर गई कि बिना अंग्रेजी के हमारी गति नहीं, व्यक्तित्व का विकास नहीं, अंग्रेजी के बिना धनवान नहीं बना जा सकता। तीन वर्ष की अवस्था से लेकर उन्नीस–बीस वर्ष की आयु तक अंग्रेजी की घुट्टी जिस युवा पीढी ने पी हो तो उससे कैसे आशा की जा सकती है कि वह भारतीय सभ्यता व संस्कारों से युक्त होगा और अपनी मातृभाषा की अस्मिता को पहचानेगा? आज हर व्यक्ति अंग्रेजी का दिवाना है बल्कि स्वयं को गौरवान्वित भी समझ रहा है कि उसने अंग्रेजी सीख ली है। एक तरफ तो हम हिन्दी को दैनिक प्रयोग की भाषा में लाने की बात कर रहे हैं तो दूसरी ओर हिन्दी भाषा को योजनाबद्ध तरीके से शिक्षा से बाहर धकेला जा रहा है।

एक ओर हम कहते हैं कि यही बच्चे भावी भारत के कर्णधार हैं। हमारी संस्कृत भाषा की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की संरक्षिका भी है, यह हमारी भारतीय संस्कृति की वाहक भी है। भारतीय भाषा का समाप्त होने का अर्थ है भावी पीढी का अपनी जडों से कट जाना, भारतीयता से मुँह मोड लेना। इसमें किसका दोष है? सही राह दिखाना, दिशा–निर्देश देना माता–पिता का उत्तादायित्व नहीं है? भाषा से दूर रखा तो संस्कारों की आशा कैसे लगा सकते हैं? अभी भी समय है प्रौढ पीढी अपनी युवा पीढी को अंग्रेजी मोहजाल से बचा लें। उन्हें कक्षा दस तक तो अपनी मातृभाषा विषय पढने दें। शिक्षा संस्थानों के व्यवसायीकरण ने भारतीय भाषा के प्रति खिलवाड कर दिया है। समय रहते हमें इनके षडयंत्रों का पर्दाफाश करके अपनी पहचान बनानी होगी।

भारतीय संस्कृति का आधार स्तंभ संस्कृत साहित्य ही है। संस्कृत विश्व की प्राचीन भाषाओं में एक है। वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत के मिलन का परिणाम है संस्कृत भाषा। भारतीय संस्कृति का अध्ययन एवं उसके प्रचार के लिए संस्कृत ज्ञान अनिवार्य है। इसी के आधार पर आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य ग्रंथों की रचना हुई है। संस्कृत भाषा ही समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में ज्ञान–कलाएँ, धर्म, दर्शन, राजनीति आदि सभी हैं विज्ञान, जिसकी स्पष्ट रूपरेखा वैदिक साहित्य में नहीं है। भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता की अमर आधारशिला पर आधारित है। भारतीय संस्कृति में कर्मवाद का सर्वोच्च स्थान है कर्म करते हुए जीवन व्यतीत हो, यही वैदिक सिद्धान्त का आधार है।

भारतीयों का यह कर्तव्य है कि वे भारतीय संस्कृति के तत्वों को आत्मसात करते हुए यंत्र–युग–जन्य स्वार्थपूर्ण आर्थिक अहम भूमिका तथा अणुबम आदि भंयकर अस्त्र–शस्त्रों को जन्म देने वाली दानव संस्कृति से परित्रस्त विश्व को संस्कृत का संदेश फैलाये जिसमें भारतीय संस्कृति की अखंडता निहित है। आजकल भारतीय

युवक आधुनिक वैज्ञानिक युग में कंप्यूटर आदि के माध्यम से भारतीय संस्कृति को, वैदिक संस्कृत को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करते हैं तथा विश्वशांति के लिए अपना अमूल्य योगदान कर रहे है। संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसने विश्व–शांति के लिए अर्पित किया है। वर्तमान में संस्कृत भाषा द्वारा विश्व–शांति की स्थापना का कार्य चलता है। उदाहरण प्रतिदिन मंदिर में होने वाला पूजा–पाठ तथा हवन–यज्ञ। विश्व–शांति का संदेश भविष्य को सुनहरा बनाता है।

संदर्भ :–

1. डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद, आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना, पृष्ठ संख्या, 1
2. आधुनिक संस्कृत की नई दिशाएँ–डॉ. हर्षदेव अभिनन्दन ग्रंथ।
3. http://educationmirror.org/authorevirjeshsingh
4. कथा साहित्य की सामाजिक भूमिका, प्रो. संजय एल. मादार।
5. संस्कृत साहित्य का विश्वशांति में योगदान– डॉ. श्रीमती चंद्रमणि चौहान।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 41-46

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

गांधी दर्शन और रंगभूमि का सूरदास

चंद्र मोहन जोशी, शोधार्थी
प्रो. जगदेव कुमार शर्मा, शोध निर्देशक
पीठ प्रमुख एवं विभागाध्यक्ष, मानविकी विभाग (हिंदी)
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

शोध सार :-

प्रस्तुत शोध लेख महात्मा गांधी के दर्शन और मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास "रंगभूमि" के प्रमुख पात्र सूरदास के चरित्र के बीच अंतर्संबंधों का विश्लेषण करता है। गांधी दर्शन मूलतः सत्य, अहिंसा, आत्मनिरीक्षण, जीवन की समग्रता और सर्वहित, जैसे मानवीय मूल्यों पर आधारित है, जिसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर व्यापक रूप से देखा जा सकता है। इसी संदर्भ में "रंगभूमि" उपन्यास का सूरदास एक ऐसे पात्र के रूप में उभरता है, जो गांधीवादी विचारधारा का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह लेख सूरदास के चरित्र, उसके संघर्ष और उसके नैतिक दृष्टिकोण का "गांधीवादी विचारधारा" की दृष्टि से सूक्ष्म विश्लेषण करता है। सूरदास एक अंधा और निर्धन व्यक्ति होते हुए भी अन्याय और शोषण के विरुद्ध अहिंसात्मक एवं सत्याग्रही संघर्ष करता है। वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिए हिंसा का सहारा नहीं लेता बल्कि सत्य और नैतिक बल के माध्यम से विरोध करता है, जो गांधीवादी सिद्धांत का मूल आदर्श है।

बीज शब्द – गांधी दर्शन, अहिंसा, सत्याग्रह, मुंशी प्रेमचंद, रंगभूमि, सूरदास (पात्र), सामाजिक न्याय, मानवीय मूल्य, नैतिक शक्ति, करुणा और प्रेम।

प्रस्तावना –

महात्मा गांधी आधुनिक युग के ही नहीं, समूचे मानव इतिहास में असाधारण रूप से महान पुरुष हैं। मुख्य रूप से उन्हें एक राजनीतिक व्यक्ति के रूप में समझा जाता हैं, जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न किया। एक राजनीतिक व्यक्ति के रूप में गांधी जी की भूमिका महत्वपूर्ण है, इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन गांधी जी का व्यक्तित्व एकमात्र राजनीतिक व्यक्ति के रूप में नही हो सकता है, वे प्रथम कोटि के समाज–सुधारक, सत्यशोधक, आध्यात्मिक साधक, अर्थशास्त्री, शिक्षाशास्त्री और लेखक–विचारक के रूप में चर्चित रहे हैं। गांधी जी समग्र जीवन के व्यवहर्ता है। गांधी जी का दर्शन समग्र जीवन का दर्शन है। जिसके लक्ष्य व्यक्ति के सर्वोदय के साथ–साथ समाज का सर्वोदय है।

गांधी जी का दर्शन व्यवहार और सिद्धांत का अनूठा समन्वय है। उन्होंने अपने जीवन में ऐसी कोई बात

नहीं कही जिस पर स्वयं न आचरण किया हो। उनके विचार उनके विभिन्न प्रयोगो और अनुभवों की उपज हैं। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा को (सत्य के प्रयोग) नाम दिया था। गांधी जी आत्म–निरीक्षण पर बल देते है। एक–एक भाव की जांच–पड़ताल करते है, और उसका पृथक्करण करते है। लेकिन इन सारे प्रयत्नों के बाद भी सामने आने वाले परिणाम अंतिम हो, सही हो, इस प्रकार का दावा करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था।

गांधी जी की सत्य की परिभाषा व्यापक है। इसमें वे अहिंसा और ब्रह्मचर्य आदि नियमों का भी समावेश करते है। उनके विचार से सत्य ही सर्वोपरि है, और उसमें अनगिनत वस्तुओं का समावेश हो जाता है। गांधी जी हमेशा जीवन की समग्रता पर बल देते है। वे सत्य और अहिंसा के आधार पर व्यक्ति का, समाज का, विश्व का नवनिर्माण करना चाहते हैं। गांधी जी का सारा जीवन कर्मण्य था। उनका व्यक्तिगत साधना में विश्वास तो था, लेकिन वे इस साधना को तब तक निष्फल समझते थे, जब तक कि उसका प्रयोग समाज की भलाई के लिए न हो। गांधी जी ने इतिहास में पहली बार सत्य, अहिंसा और शत्रु के प्रति भी प्रेम के आध्यात्मिक एवं नैतिक सिद्धांतों का राजनीति के क्षेत्र में इतने विशाल पैमाने पर प्रयोग किया और उसमें सफलता प्राप्त की। गांधी जी की विचारधारा सिद्धांतों, मतों, नियमों, शिक्षाओं और आदेशों का योग मात्र नहीं हैं, अपितु वह एक जीवन शैली हैं। यह जीवन शैली वर्तमान भौतिक सभ्यता को नकारती है, और सदा–सरल प्रकृति–मय जीवन जीने का संदेश देती है।

गांधी जी के व्यक्तित्व निर्माण में उनके परिवार तथा व्यक्तिगत अनुभवों का बड़ा हाथ है। निर्भयता, सत्यनिष्ठा, न्याय का पक्ष लेकर उसके लिए लड़ना, स्वामीभक्ति व्रत, तथा उपहास और बीमारी में भी दृढ़ रहना इन गुणों के बीज गांधी जी को अपने परिवार से संस्कार के रूप में प्राप्त हुए हैं। उनका जन्म वैष्णव संप्रदाय में हुआ था। इसलिए समय–समय पर मंदिर जाना होता रहता था। गांधी जी श्रद्धा को मूल मानते है। गांधी जी अपने आपको मूर्ति पूजक भी मानते है, और मूर्ति भंजक भी। गांधी जी में मूर्ति पूजा के जो भाव हैं, वह उस भाव का आदर करते है। वे ऐसी किसी भी मत के विरोधी थे, जो अपनी ईश्वर पूजा की विधि के अलावा दूसरे लोगों की पूजा विधि में किसी गुण और अच्छाई को देखने से इनकार करती हैं। गांधी जी को राम नाम का बीज मंत्र बचपन में ही अपनी दाई रंभा से मिला था। यह राम नाम आगे चलकर उनके लिए अमोघ शक्ति बना। उनके लिए अपने दोषों की स्वीकृति अहिंसा का पहला पाठ है। गांधी मार्ग के व्रतों में ब्रह्मचर्य का विशेष स्थान है। उनके विचार से ब्रह्मचर्य का अर्थ– मन, वचन और कर्म से समस्त इंद्रियों का संयम।

गांधी दर्शन की सबसे बड़ी देन सत्याग्रह का सिद्धांत है। वे सत्य की व्यापक परिभाषा करते है। उनकी दृष्टि में सत्य शुद्ध एवं अखंड है, सर्वव्यापक हैं। वह अवर्णनीय है, ईश्वर है। जो सत्य जानता है। मन से, वचन से, कर्म से, सत्य का आचरण करता हैं, वह परमेश्वर को पहचानता है। गांधी जी ने सत्याग्रह सिद्धांत का विकास दक्षिण अफ्रीका में ″1906″ में किया था, जिसमें सत्य, अहिंसा, विनम्रता, विरोधी के प्रति भी प्रेम, अन्याय का प्रतिकार, स्वयं कष्ट सहन करके विरोधी के ह्रदय परिवर्तन की चेष्टाये ये सत्याग्रह के बुनियादी सिद्धांत थे। गांधी जी ने अपने सत्याग्रह का मूल गुजराती कवि श्यामल भट्ट के एक छप्पय को माना हैं –

“पाणी आपने पाय भलु, भोजन तो दीजै।
आवी नमामें शीश, दंडवत कोड़े कीजै।

आपण घासे दान काम, महोरोनू करिए।

आप उगारे प्राण, ते तणा दुखमा मरीए।"[1]

अर्थात् – जो हमें पानी पिलाए, उसे हम अच्छा भोजन कराएं। जो आकर हमारे सामने सिर झुकाए, उसे हम दंडवत प्रणाम करें। जो हमारे लिए एक पैसा खर्च करे, उसका हम मुहरों की कीमत का काम करें। जो हमारे प्राण बचाए उसके दुख दूर करने के लिए हम अपने प्राण तक निछावर कर दे। जो हमारा उपकार करे उसका तो हमें मन, वचन और कर्म से दस गुना उपकार करना चाहिए। लेकिन जग में सच्चा और सार्थक जीना उसी का है जो अपकार करने वाले के प्रति भी उपकार करे।

श्यामल भट्ट के उपर्युक्त छप्पय के अतिरिक्त गांधी जी ने अपने सत्याग्रह सिद्धांत के लिए ईसा मसीह की शिक्षाओं का भी ऋण स्वीकार किया," दाये गाल पर तमाचा मारने वालो के सामने बायां गाल भी कर दो।"[2] "अपने दुश्मनों को भी प्यार करो।"[3] ये उद्धरणों में ईसा मसीह ने अपने शत्रुओं से भी प्रेम करने का पाठ पढ़ाया है। और गांधी जी के सत्याग्रह का भी यही मूल मंत्र हैं।

गांधी जी भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बड़े हिमायती थे। उन्होंने 'हिंद स्वराज' की परिशिष्ट में अनेक पाश्चात्य विद्वानों के उदाहरण दिए, जिन्होंने भारत की संस्कृति का गान किया हैं। गांधी जी की यह ज्वलंत श्रद्धा थी कि संसार के समस्त देशो में भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसा की कला सीख सकता हैं। गांधी जी भारत का शस्त्रीकरण की दौड़ में शामिल होना उनके लिए आत्मघात के समान समझते थे। गांधी जी का विचार था, कि भारतीय सभ्यता की प्रवृति नैतिकता के विकास की ओर हैं, जब कि पश्चिमी सभ्यता अनैतिकता को प्रोत्साहन देती है, पश्चिमी सभ्यता नास्तिक है, और भारतीय सभ्यता आस्तिक। गांधी जी की सलाह थी कि भारत के हितैषी भारतीय सभ्यता से उसी तरह चिपटे रहे, जिस तरह बच्चा अपनी मां की छाती से चिपका रहता है। गांधी जी ने हिंदू धर्म की तुलना गंगा के प्रवाह से की है, गांधी जी कहते है कि वह मूल में शुद्ध है, मार्ग में उस पर मैल चढ़ता है। फिर भी जिस प्रकार गंगा की प्रवृत्ति अंत में पोषक हैं, उसी प्रकार हिंदू धर्म भी मानव जीवन का पोषक है। गांधी जी पर वेद, उपनिषद, महाभारत, गीता के अलावा सबसे अधिक प्रभाव रामायण का रहा। उन्होंने अपने रामराज्य की कल्पना सीधे रामायण से ली है। रामराज्य गांधी जी का आदर्श राज्य है। तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में रामराज्य का भव्य चित्र खींचा है '–

"दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा।

सब नर करहिं परस्पर प्रीति, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।"[4]

अर्थात् – रामराज्य में प्रजा को शारीरिक, आध्यात्मिक और भौतिक तीनों तापों में से किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं था। सभी मनुष्य एक–दूसरे से प्रेम पूर्वक व्यवहार करते थे, और अपने–अपने स्वधर्म का पालन कर नीति और नियम पूर्वक रहते थे।

गांधी जी गीता के भक्त ही नही अपितु साधक भी थे। उन्होंने स्वयं गीता की गुजराती में टीका लिखी थी। यह टीका (12 मार्च 1930) को प्रकाशित हुई थी। गांधी जी गीता के बारे में लिखते हैं कि "जब निराशा मेरे सामने खड़ी होती है, और जब मैं बिल्कुल एकाकी महसूस करता हूं. जब मुझे प्रकाश की कोई किरण नही दिखाई देती, तब मैं गीता की शरण लेता हूं।"[5] गांधी जी गीता को (शाश्वत मार्ग दर्शिका) कहते थे।

रंगभूमि उपन्यास में गांधी दर्शन :-

रंगभूमि "1925" उपन्यास पराधीन भारत में आजादी की चेतना का उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने भारत के राजनीतिक यथार्थ का बोध कराया। वे स्वयं स्वाधीनता सेनानी थे, और महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने के लिए सरकारी नौकरी त्याग चुके थे। इस उपन्यास के द्वारा प्रेमचंद ने गांधीवादी विचारधारा का चित्रण करने के साथ-साथ अपने अनुभव भी यथार्थ रूप में प्रकट किया है।

इस उपन्यास में जिस प्रकार महात्मा गांधी द्वारा आजादी की लड़ाई के लिए अहिंसक सत्याग्रह में विश्वास व्यक्त किया गया था। उसी प्रकार सूरदास भी अहिंसात्मक रूप से अपनी जमीन वापस पाने के लिए संघर्ष करता है। वह अपनी जमीन नहीं देना चाहता है, वह कहता है कि "अगर जमीन जाएगी तो इसके साथ साथ मेरी जान भी जायेगी।"[6] सरकार एवं उद्योगपति मिलकर कानून बनाकर उसकी जमीन छीन लेते हैं। किंतु सूरदास मुआवजा स्वीकार न करके सत्याग्रह का ऐलान करता हैं। वह सफल भी होता है, और सोफिया के आग्रह पर मिस्टर क्लार्क सूरदास को जमीन लौटा देता है। यह अहिंसक सत्याग्रह की महत्वपूर्ण घटना है।

पांडेपुर के लोगो के घर छीनने के प्रकरण में सूरदास न्याय शक्ति का परिचय देते कहता है कि- "यह हमारा घर है, किसी के कहने से नही छोड़ सकते। जबरदस्ती तो चाहे निकाल दे, न्याय से नहीं निकाल सकते।"[7] न्याय शक्ति का इस प्रकरण में गांधी जी का प्रभाव परिलक्षित होता है।

महात्मा गांधी ने अपने आंदोलनों में अहिंसा व आत्मबल को सर्वोच्च स्थान दिया है। सन् 1922 में चौरी-चौरा में आंदोलनकारी सत्याग्रहियों ने पुलिस चौकी में आग लगाकर कुछ कर्मचारी पुरुषों को जला कर मार डाला था, तब गांधी जी ने आंदोलन वापस ले लिया था। उसी प्रकार सूरदास भी गांधी सिद्धांत एवं अहिंसा का उपासक था। जब जनता पर सरकारी हिंसा का खतरा था। तब भैरो के कंधे पर बैठ कर जनता को आत्मबल का परिचय देता है।

सूरदास अपनी जमीन सिगरेट के कारखाने को इसलिए नहीं बेचना चाहता, वह कहता है कि "इस कारखाने से मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जाएगी, रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो प्रचार बढ़ जाएगा, कसबियाँ भी तो आकर बस जाएँगी, परदेशी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधर्म होगा! देहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरन अपने गाँव में फैलाएँगे। देहात के किसान अपना काम छोड़ कर मजदूरी के लालच में घर से पलायन करेंगे, शहरों में दबाव बढ़ेगा। इसके साथ अनेक कुरीतियों का प्रचार-प्रसार होगा।"[8] औद्योगिकरण से प्रदूषण, नैतिक संकट, शराब, जुआ, आदि व्यसनों के प्रसारण के प्रसार तात्कालिक समाज में भी आशंका थी। महात्मा गांधी कुटीर उद्योग तथा ग्रामोद्योगो का पूर्ण समर्थन करते हैं। भारत के कुटीर उद्योगो तथा हस्तशिल्प कला की कीमत पर औद्योगिकरण का विरोध करते थे। महात्मा गांधी राजशक्ति के स्थान पर पंचायत की शक्ति मे विश्वास रखते थे। "रंगभूमि" उपन्यास में पांडेपुर के लोग अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए परस्पर मिल बैठकर बात करते है, और पंचायत जोड़ते हैं. इसी प्रकार सूरदास को जब सरकारी अदालत एक झूठे प्रकरण में दोषी ठहरा कर जुर्माना करती है, तब सूरदास पंचों से दुबारा निर्णय प्राप्त करता है। सूरदास ने पंचों के भीतर निवास करने वाले परमेश्वर को जगा दिया और अपने

ही बच्चों के विरुद्ध अपराध के लिए दंड की व्यवस्था में पहल की।

महात्मा गांधी ने शराबबंदी, धूम्रपान निषेध का समर्थन तथा अन्य सभी प्रकार के नशों का विरोध किया है। इस उपन्यास में भी सूरदास भैरों को ताड़ी की दुकान के स्थान पर लकड़ी का व्यवसाय करने को तैयार करता है। सूरदास कारखाने का इसलिए विरोध करता है, कि उससे शराब, जुआ, धूम्रपान तथा अन्य प्रकार के व्यसनो आदि को भी बढ़ावा मिलेगा।

गांधी जी ने संपत्ति पर समाज का स्वामित्व स्वीकार किया था। व्यक्ति तो उसका संरक्षक मात्र है। प्रेमचंद ने रंगभूमि में इस सिद्धांत की ओर संकेत किया है। सूरदास कहता है कि "मेरी चीज वही है, जो मैने अपने बाहुबल से पैदा की हो, यह धरोवर है, में इसका मालिक नहीं हूं।"[9] इस तरह रंगभूमि उपन्यास गांधी दर्शन से पूर्ण रूप से प्रभावित दिखाई देता है।

निष्कर्ष :-

मुंशी प्रेमचंद का उपन्यास "रंगभूमि" का नायक सूरदास उन विरले पात्रों में से है, जो गांधीवादी मूल्यों को केवल उपदेशों में नहीं बल्कि अपने आचरण में जीता है। इस शोध आलेख के माध्यम से यह स्पष्ट होता है, कि प्रेमचंद ने सूरदास के चरित्र को मात्र एक अंधे भिखारी के रूप में नहीं, बल्कि सत्य, अहिंसा, और सत्याग्रह के जीवंत प्रतीक के रूप में गढ़ा है। सूरदास का चरित्र गांधी दर्शन का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है। उसका जीवन त्याग, करुणा, सादगी, और सर्वहित की भावना से ओत–प्रोत है, यद्यपि वह शारीरिक और आर्थिक रूप से कमजोर है, फिर भी वह औपनिवेशिक सत्ता, पूंजीवादी शोषण और सामाजिक असमानता के विरुद्ध खड़ा होकर यह सिद्ध करता है कि नैतिक बल किसी भी भौतिक शक्ति से अधिक प्रभावी हो सकता है।

निष्कर्षतः यह शोध आलेख सिद्ध करता है कि सूरदास का संघर्ष केवल व्यतिगत अधिकारों का संघर्ष नहीं बल्कि सामूहिक नैतिक चेतना का प्रतीक है। यही बिंदु गांधीवादी दर्शन से उसकी गहरी समानता को प्रमाणित करता है। जिस प्रकार गांधी जी ने अन्याय के विरुद्ध सत्य, और अहिंसा को शस्त्र बनाया, उसी प्रकार सूरदास भी बिना हिंसा का आश्रय लिए अपने अधिकारों के लिए अडिग रहता है। प्रेमचंद ने रंगभूमि के माध्यम से गांधीवादी विचारधारा को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत कर समाज में नैतिक चेतना जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गुप्त, विश्व प्रकाश – गुप्त मोहिनी – 1996, महात्मा गांधी व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली – पृष्ठ संख्या 61.
2. वही – पृष्ठ संख्या – 73
3. वही – पृष्ठ संख्या – 80
4. मिश्रा, डॉ० एम० के० – दाधीच, डॉ० कमल, 2016, गांधी दर्शन, अर्जुन पब्लिकेशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या –11.
5. वही – पृष्ठ संख्या – 33

6. प्रेमचंद, मुंशी –2013, रंगभूमि, शिवांक प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली – पृष्ठ संख्या 70.
7. वही – पृष्ठ संख्या – 91,
8. वही – पृष्ठ संख्या – 92,
9. वही – पृष्ठ संख्या – 171
10. वही – पृष्ठ संख्या – 262,
11. वही – पृष्ठ संख्या – 263,
12. विभिन्न साहित्यिक शोध पत्रिकाएं एवं "रंगभूमि" पर समीक्षात्मक लेख।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 47-50

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

हिन्दी और मलयालम नाटक

Dr. Salini. C
Associate Professor, Dept of Hindi
Govt- College For Women, Thiruvananthapuram. Kerala.
University of kerala, Pin 695014

भारतीय नाटक के विकास में संस्कृत नाटकों का विशेष योगदान रहा है। भारत में नाटकों की परंपरा संस्कृत के नाटकों से ही शुरू होती है और उसके विकास का श्रेय कालिदास, भवभूति आदि को है। जिन्होंने विषयवस्तु के चुनाव, पात्रों के चरित्र–चित्रण आदि के द्वारा नयी लीक स्थापित की। उसके बाद लोकनाट्यों से भारतीय नाटकों का प्रारंभ होता है। रासलीला, रामलीला, यक्षगान, स्वांग, पुतली, कठपुतली आदि के प्रदर्शन में नाटक के बीज बने रहे। इन लोकनाट्यों के विभिन्न रूप भारतीय भाषाओं में मिलते हैं। हिन्दी प्रदेश में रासलीला और रामलीला हो तो मलयालम में 'कूटियाट्टम'। इन लोकनाट्यों का विषय पौराणिक कथाएँ थीं, जिसे संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता था। संगीतात्क नाटकों की लोकप्रियता देखकर मलयालम में भी संगीत नाटक लिखे गए जिनमें सबसे अधिक सफलता मिली। वह नाटक का नाम है "सदरामा"। नाटककार का नाम है – के. सी. केशवपिल्लै। उसके बाद श्री. विजय कृत करुणा, शाकुन्तलम्, और अनारकली विख्यात हुए। ग्रामीण जीवन को आधार बनाकर तोप्पिल भासी ने ऐसे संगीत नाटक लिखे जिसमें मिट्टी की गन्ध बसी है। भारतीय नाटक को संपन्न बनाने में थियोरेटिकल कंपनियों का योगदान भुलाया नहीं सकता। अंग्रेजों के संपर्क में आने पर शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद कर नाटक के रिक्त भण्डार को भरने का प्रयास किया गया। हिन्दी में भारतेंदु ने शेक्सपियर के Merchant of venis का अनुवाद 'दुर्लभ बन्धु' नाम से किया। उसमें पात्रों के नामों का भी रूपान्तरण कर दिया गया है।

अनुवादों से मौलिक नाटक लेखन की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। नाटकों के विषय थे – पौराणिक प्रसंग, ऐतिहासिक महापुरुष। इनमें सामाजिक समस्याओं और विकृतियों पर प्रकाश डाला गया। महाभारत के आख्यानों यहाँ सावित्री सत्यवान, सुभद्रा हरण, अभिमन्यु वध, द्रौपदी वस्त्र–हरण आदि नाटक लिखे गए। हिन्दी में प्रह्लाद (श्रीनिवास दास), कर्ण (विष्णु गोविन्द शर्मा) दमयन्ती स्वयंवर (बालकृष्ण भट्ट) आदि नाटकों ने नाट्य परंपरा को आगे बढ़ाया। प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी आदि ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की।

19वीं शताब्दी के मध्य में सामाजिक बुराइयों, धार्मिक ढोंग तथा दम्भ पर प्रहार करते हुए हिन्दी तथा मलयालम के नाटककार सामने आये। मलयालम के नाटककारों ने टी.एल. राय से प्रभावित है। अपने नाटकों में एक ओर अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादिता का विरोध करते हुए समाज सुधार की तीव्र आकांक्षा मुखरित की तो

दूसरी ओर राष्ट्रप्रेम की भावना भी मुखरित है।

20वीं शती के तीसरे या चौथे दशक में इस धारा के मलयालम नाटककार हैं – वी.टी. भट्टतिरिप्पाड, एम. पी. भट्टतिरिप्पाड और के. दामोदरन आदि। सामाजिक समस्याओं का प्रभाव सी.जे. थॉमस के "अवन वीण्डुम वरुन्नु" नाटक में मिलता है। इसी धारा के अन्य नाटककारों के नाम इस प्रकार के हैं – गोविन्दन, इडश्शेरी, एस.एल. पुरम्, के.टी. मुहम्मद (करवट्ट पशु) तिक्कोडियन (जीवितम्) मुहम्मद यूसुफ (कडम वट्टच कोट्ट) और सुरेन्द्रन (पलंक पात्रम्) आदि। हिन्दी में यह स्वर भारतेन्दु युग के नाटककारों की कृतियों में हुआ। इस दृष्टि से भारतेन्दु द्वारा लिखे गए नाटक "भारत दुर्दशा, भारत जननी, नीलदेवी और अन्धेर नगरी आदि उल्लेखनीय है। आगे चलकर जयशंकर प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों द्वारा राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक प्रखर बनाया।

भारत की दुर्दशा के कारण केवल विदेशी साम्राज्यवाद नहीं तो बल्कि भारत में व्याप्त सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक अन्धविश्वास और थोथी परंपराएँ भी थीं। इस बात को प्रबुद्ध भारतीय भी समझ गए थे। इसलिए हिन्दी और मलयालम के तत्कालीन नाटकों में पाठकों को एक ओर उन बुराइयों से लड़ने के लिए आह्वान किया गया और दूसरी ओर उसे दूर करने के साधनों का भी संकेत किया गया। दहेज, जाति प्रथा, विधवा विवाह, वेश्यावृत्ति, मद्यपान आदि समस्याओं पर नाटककारों ने अपनी नाटकों के माध्यम से प्रहार किया। मलयालम में अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता का विरोध तथा सामाजिक सुधार की तीव्र आकांक्षा मुखरित करनेवाले नाटककार हैं – वी.टी. भट्टतिरिप्पाड, एम. पी. भट्टतिरिप्पाड और के. दामोदरन। उनकी सफलतम रचनाये हैं – अडुक्कलयिल निन्नु अरंगत्तेक्कु, ऋतुमती और पट्टवाकी आदि। हिन्दी में समाज सुधार की दृष्टि से राधाकृष्ण की "दुखिनीबाला", देवीप्रसाद का 'बालविवाह' और श्यामसुन्दरदास का "वृद्धावस्था" आदि।

20वीं शताब्दी के तीसरे दशक के बाद आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद की प्रवृत्ति बढ़ी, सुधारवादी दृष्टिकोण कम होता गया। इसका कारण था कि भारतीय नाटकों पर अब इब्सन के समस्यामूलक नाटकों का प्रभाव बढ़ता गया। नाटक के विषय है पति–पत्नी, पिता–पुत्र आदि के संबंध होने लगे। मलयालम में एन. कृष्ण पिल्ले ने नाटकों में भाषा की कृत्रिमता, स्वकथन, लम्बे संवाद आदि को हटाकर तथा प्रदर्शन को यथार्थवादी बनाकर नाटक को जीवन के अधिक निकट लाने का सफल प्रयास किया। इसलिए उन्हें मलयालम का 'इब्सन' कहा जाता है। उनके सफल नाटक हैं – भग्नभवनम्, कन्यका, बलाबलम्, अनुरंजन और मुटक्कुमुतल आदि। इस समय के अन्य नाटककारों के नाम इस प्रकार के हैं – के सुरेन्द्रन (बली) जी. शंकर पिल्ले (स्नेहदूतम्) तथा सी. एन. श्रीकण्ठन (नष्टकच्चवटम्) आदि। इन सभी नाटककारों ने आज के जीवन में व्यक्ति के घुटन, संत्रास, अवसाद और अन्तःपीड़ा का चित्रण किया है। हिन्दी में जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी) हरिकृष्ण प्रेमी (स्वप्न भंग) लक्ष्मी नारायण मिश्र (सिन्दूर की होली) गोविन्द बल्लभ पन्त (अंगूर की बेटी) और उपेन्द्रनाथ अश्क (अंजोदीदी) के नाटकों पर फ्रायड और इब्सन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

स्वाधीनता के बाद भी पौराणिक नाटक लिखे गए थे। किन्तु इन नाटकों का उद्देश्य अब मनोरंजन या भावमग्न करना नहीं था। इनके द्वारा मनुष्य की जटिल मनोदशा एवं मनोग्रन्थियों का विश्लेषण किया गया। मलयालम में इस तरह के मनोवैज्ञानिक नाटककार सी.एन. श्रीकण्ठन नायर ने अपने नाटकों में पौराणिक प्रसंगों और पात्रों को पुनर्सृजित करके नये विचार और नयी जीवन दृष्टि दी है। रामायण पर आधारित तीन नाटकों में

लेखक का आधुनिक युगबोध स्पष्ट है। नाटकों के नाम इस प्रकार के हैं – "लंका लक्ष्मी, कांचन सीता और साकेतम् आदि। जी. शंकर पिल्ले के 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र' (1968) में महाभारत युद्ध के बाद स्त्रियों की मानसिक दशा का विश्लेषण है। हिन्दी में धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' में धृतराष्ट्र–गान्धारी और अश्वत्थामा के माध्यम से लेखक ने आज के जीवन के त्रासदी, संशय, आतंक को उजागर किया है। सुरेन्द्र वर्मा के 'द्रौपदी' में समकालीन परिवारों की त्रासदी है। नरेन्द्र कोहली के 'शंबूक की हत्या' में राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त चरित्रहीनता का वर्णन किया है।

स्वाधीनता के पश्चात समकालीन समस्याओं पर नाटक लिखे गए। मलयालम के मदनन्दन ने अपने नाटक 'अग्निपुत्री' में पुरुष द्वारा सताई गई स्त्री को संघर्ष करते हुए। अन्त में उसे अपनी गरिमा मर्यादा बनाये रखने में सफल होते दिखाया। हिन्दी में भगवती चरण वर्मा के "पृथ्वी का स्वर्ग" में सांप्रदायिक परिवेश, समकालीन व्यक्ति की यंत्रणा, शासनसत्ता, व्यवस्था, राजनीति और काली पूँजी के प्रति बसनेवाली मानवेतर शक्तियों का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार कह सकते है कि स्वतंत्रता के बाद पृथ्वी पर स्वर्ग के उतरते की जो संभावनाएँ की गयी थी, लेकिन इन पर हिमपात होगा है और फिर वे जलकर राख हो रही है।

सन 1960 के बाद हिन्दी और मलयालम के नाटकों में युवक और युवतियों के मानसिक संघर्ष एवं उनके हृदय में उठने वाले भावनाओं का सजीव चित्र देखने को मिलता है। हिन्दी के नाटकों में जीवन मूल्यों में होने वाले परिवर्तन, परम्परागत मान्यताओं के टूटने, अनेक पात्रों के मानसिक तनाव और अर्थदर्द को गहराई से पकड़ने की चेष्टा की गई है। उल्लेखनीय नाटककार हैं – मोहन राकेश (आधे – अधूरे 1969), लक्ष्मीनारायण लाल (अन्धा कुआँ 1955 – 56) सुरेन्द्रवर्मा, मणि मधुकर, रमेश बक्षी, विष्णु प्रभाकर, सुरेन्द्र चौपड़ा, सुरेन्द्र तिवारी, शंकर शेष (एक और द्रोणाचार्य) भीष्म साहनी (हानूश) आदि। इन नाटकों में अधिकतर प्रतीकात्मक नाटक है। मलयालम के एन.एन पिल्ले के "मरणानन्तरम्" (1967) को एकांकी नाटक कहा जाता है। शंकर पिल्ले के 'बन्दी' में थियेटर ऑफ क्रुअलटी' के तत्व है। नाटकों में प्रतीकात्मकता है। नारायण पिल्ले के प्रसिद्ध नाटक है "प्रलयम्"। इसमें भी प्रतीकों का कराल प्रयोग हुआ है। हिन्दी और मलयालम में लोकनाट्य शैली के तत्व अपनाकर नाटकों को अभिनव रूप दिया गया। हिन्दी में मणि मधुकर की रचना "खेला पोलमपुर" में लोकननाट्य शैली का प्रयोग किया गया है। धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' में भी लोकनाट्य शैली के कुछ तत्वों का प्रयोग लोकप्रिय बनाया गया है। इस नाटक में प्रतीकों का प्रयोग है। मलयालम के प्रसिद्ध नाटककार कावालम् नारायण पणिक्कर ने देसी नाटकों के तत्वों का प्रयोग किया। उनके नाटक "अवनवन कडम्ब" का मुख्य आकर्षण है 'कोक्कर' आदिवासी जाति द्वारा अभिनीत नाटकों का शिल्प।

हिन्दी और मलयालम में अनेक एकांकी भी लिखे गये हैं। हिन्दी का प्रथम एकांकीकार है जयशंकर प्रसाद। एकांकी का नाम है (एक घूँट–1929)। वह प्राचीन रूपक से अधिक निकट है। भुवनेश्वर के एकांकियों पर इब्सन का प्रभाव है। रामकुमार वर्मा ने एकांकी को समृद्ध बनाने में अथक परिश्रम की। प्रसिद्ध एकांकीकारों के नाम इस प्रकार के हैं – उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीश चन्द्र, लक्ष्मीनारायण लाल, देवराज दिनेश, रेणु शरण वर्मा आदि। मलयालम में एकांकी नाटक को प्रोत्साहन नहीं मिला। अतः वहाँ एकांकी कम संख्या में ही लिखे गए हैं। हिन्दी और मलयालम में रेडियो से प्रसारित होनेवाले लघु नाटक भी लिखे गए हैं। हिन्दी में रेडियों से जुड़े साहित्यकारों में रेवतीशरण शर्मा, देवराज दिनेश और सुभाषानन्दन पन्त आदि है। मलयालम के रेडियो रूपक

साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुए। फिर भी कुछ नाटकों जैसे 'तरंगरंग' (एम. के. नायर) तथा रागवत और भरतन (रामकृष्ण पिल्ले), पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके है। रेडियो से प्रकाशित होने वाले नाटकों का प्रमुख उद्देश्य जो है धन तथा प्रसिद्धि। हिन्दी और मलयालम के अधिकांश नाटकों के विषय एक जैसे लेकिन लेखकों के अलग–अलग दृष्टिकोण और भाषा तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये नाटक एक दूसरे से भिन्न।

सहायक ग्रन्थ सूची :

1. हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक – सुधांशु चतुर्वेदी।
2. केरल के हिन्दी साहित्य का बृहद साहित्य – डॉ. एन. चन्द्रशेखरन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 51-58

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों में नियमित योगाभ्यास करने वाले एवं योगाभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. भावना
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग,
आई.ए.एस.ई. मानित विष्वविद्यालय, सरदारशहर, चूरू, राजस्थान।

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य महाविद्यालयीन (उच्च शिक्षा) स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास पर नियमित योगाभ्यास के दीर्घकालिक प्रभावों का मूल्यांकन करना है। इस अध्ययन के अंतर्गत विगत 10 वर्षों (वर्ष 2016 से 2026) के आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। शोध में अन्तर–विषयक अनुदैर्ध्य अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग करते हुए कुल 1200 विद्यार्थियों (600 नियमित योगाभ्यास करने वाले और 600 योगाभ्यास न करने वाले) को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया। व्यक्तित्व के मापन के लिए मैकक्रे और कोस्टा के बिग फाइव पर्सनालिटी ट्रेड्स मॉडल–खुलापन, कर्तव्यनिष्ठता, बहिर्मुखता, सहमतता, और तंत्रिका–ताप, भावनात्मक अस्थिरता के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य, संज्ञानात्मक लचीलापन और शैक्षणिक प्रदर्शन संकेतकों का उपयोग किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त परिणाम यह दर्शाते हैं कि नियमित योगाभ्यास करने वाले विद्यार्थियों में भावनात्मक स्थिरता, कर्तव्यनिष्ठता, और आत्म–प्रभावकारिता का स्तर योगाभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों की तुलना में सांख्यिकीय रूप से अत्यधिक उच्च ($p < 0-01$) था। इसके विपरीत, गैर–योग समूह में तनाव, चिंता और अवसाद के स्तर में 10 वर्षों में निरंतर वृद्धि देखी गई। यह शोध निष्कर्ष निकालता है कि योग केवल एक शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों के समग्र व्यक्तित्व रूपांतरण का एक शक्तिशाली साधन है।

मुख्य शब्दावली – योगाभ्यास, व्यक्तित्व विकास, बिग फाइव मॉडल, महाविद्यालय विद्यार्थी, अनुदैर्ध्य अध्ययन, मानसिक स्वास्थ्य, संज्ञानात्मक लचीलापन।

प्रस्तावना एवं पृष्ठभूमि :

युवावस्था या उत्तर–किशोरावस्था मानव जीवन का वह संधि–काल है जहां व्यक्तित्व की नींव सुदृढ़ होती है। महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थी (आयु वर्ग 18–25 वर्ष) एक ऐसे संक्रमणकालीन दौर से गुजरते हैं जहां उन पर शैक्षणिक उत्कृष्टता का दबाव, करियर की अनिश्चितता, सामाजिक सामंजस्य, और पहचान का संकट एक

साथ हावी होता है। डिजिटल युग और सोशल मीडिया के अति–प्रसार ने इस अनिश्चितता और मानसिक तनाव को और अधिक बढ़ा दिया है।

इस परिदृश्य में, व्यक्तित्व विकास केवल बाह्य व्यवहार या संवाद कौशल तक सीमित नहीं रह जाता, बल्कि इसमें आंतरिक मानसिक सुदृढ़ता, भावनात्मक संतुलन, नैतिक बोध और सामाजिक संवेदनशीलता भी शामिल होती है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग को महर्षि पतंजलि ने योगश्चित्तवृत्ति निरोधः (चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है) के रूप में परिभाषित किया है। योग एक समग्र विज्ञान है जो अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) के माध्यम से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक आयामों का परिष्कार करता है।

विगत एक दशक (2016–2026) में वैश्विक स्तर पर और विशेषकर भारत में उच्च शिक्षा के स्तर पर योग को पाठ्यक्रम में शामिल करने के प्रयास किए गए हैं। परंतु, क्या नियमित रूप से योग का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों का व्यक्तित्व वास्तव में उन विद्यार्थियों से भिन्न होता है जो पारंपरिक जीवनशैली जीते हैं? इसी मौलिक प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए यह 10 वर्षीय तुलनात्मक अध्ययन अभिकल्पित किया गया है।

शोध के उद्देश्य :

इस शोध पत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. महाविद्यालय स्तर के नियमित योगाभ्यास करने वाले तथा योगाभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों के व्यक्तित्व लक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. विगत 10 वर्षों (2016–2026) के आंकड़ों के आधार पर विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य (चिंता, अवसाद, तनाव) पर योग के संचयी प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक लचीलेपन और शैक्षणिक प्रदर्शन पर योगाभ्यास के प्रभाव की जांच करना।
4. जेंडर (पुरुष एवं महिला) के आधार पर योगाभ्यास और व्यक्तित्व विकास के अंतर्संबंधों का मूल्यांकन करना।

शोध परिकल्पनाएँ :

शोध के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया –

H_01: नियमित योगाभ्यास करने वाले और योगाभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों के बिग फाइव व्यक्तित्व लक्षणों (खुलापन, कर्तव्यनिष्ठता, बहिर्मुखता, सहमतता, भावनात्मक स्थिरता) में कोई सार्थक अंतर नहीं होता है।

H_02 : 10 वर्षों की अवधि में योगाभ्यास करने वाले और न करने वाले समूहों के मानसिक स्वास्थ्य सूचकांकों (DASS-21 स्कोर) में कोई महत्वपूर्ण विचलन नहीं पाया जाता है।

H_03 : योगाभ्यास के स्तर और विद्यार्थियों के शैक्षणिक प्रदर्शन तथा आत्म–विश्वास के स्तर में कोई सकारात्मक सहसंबंध नहीं है।

साहित्य की समीक्षा :

व्यक्तित्व और योग के अंतर्संबंधों पर पिछले एक दशक में व्यापक शोध हुए हैं।

सिंह एवं शर्मा (2017) ने अपने अध्ययन में पाया कि जो विद्यार्थी सप्ताह में कम से कम 4 दिन योग (आसन और प्राणायाम) करते हैं, उनमें मनोवैज्ञानिक कल्याण का स्तर सामान्य विद्यार्थियों से 35% अधिक होता है। योग मस्तिष्क के उन हिस्सों को सक्रिय करता है जो भावनात्मक नियंत्रण से जुड़े हैं।

गुप्ता, सिंह और रानी (2020) ने किशोरों और युवा वयस्कों पर किए गए अध्ययन में स्पष्ट किया कि योग अभ्यास से विद्यार्थियों में कर्तव्यनिष्ठता और धैर्य की भावना बढ़ती है। प्राणायाम (जैसे नाड़ी शोधन, भ्रामरी) स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को संतुलित करता है, जिससे कोर्टिसोल (तनाव हार्मोन) का स्तर गिरता है।

रानी एवं कौर (2019) के एक यादृच्छिक नियंत्रित परीक्षण के अनुसार, शहरी क्षेत्रों के महाविद्यालयों में तीव्र प्रतिस्पर्धा के कारण 80% विद्यार्थी किसी न किसी स्तर पर एंग्जायटी से ग्रस्त हैं। योग हस्तक्षेप प्राप्त करने वाले समूह ने केवल 12 सप्ताह में अपनी भावनात्मक स्थिरता में उल्लेखनीय सुधार प्रदर्शित किया।

कुमार और वर्मा (2023) ने वाराणसी के महाविद्यालयी छात्रों पर किए गए अध्ययन में आत्म–प्रभावकारिता को योग का मुख्य परिणाम माना। उन्होंने पाया कि ध्यान और प्रत्याहार के अभ्यास से छात्रों में विपरीत परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता का विकास होता है।

विगत अध्ययनों की सीमा यह रही है कि वे लघु अवधि (6 सप्ताह से 6 महीने) के थे। प्रस्तुत शोध 2016 से 2026 तक के 10 वर्षीय आंकड़ों को समाहित कर इस ज्ञान–अंतर को पाटने का प्रयास करता है।

अनुसंधान कार्यप्रणाली :

अनुसंधान अभिकल्प :

यह अध्ययन एक मिश्रित–विधि अनुदैर्ध्य और तुलनात्मक अनुसंधान अभिकल्प पर आधारित है। इसमें मात्रात्मक आंकड़ों को प्राथमिक महत्व दिया गया है तथा गुणात्मक साक्षात्कारों को पूरक के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

प्रतिदर्श चयन :

भारत के विभिन्न केंद्रीय और राज्य विश्वविद्यालयों से वर्ष 2016 में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों का एक पूल तैयार किया गया। कुल 1200 विद्यार्थियों का चयन उद्देश्यपूर्ण और स्तरीकृत यादृच्छिक नमूनाकरण विधि द्वारा किया गया।

समूह v (प्रायोगिक समूह – योग समूह) – 600 विद्यार्थी (300 पुरुष, 300 महिला) जो पिछले न्यूनतम 3 वर्षों से नियमित (सप्ताह में कम से कम 5 दिन, प्रतिदिन 45 मिनट) योगाभ्यास (आसन, प्राणायाम, और ध्यान) कर रहे थे और जिन्होंने इस आदत को अगले 10 वर्षों तक बनाए रखा।

समूह c (नियंत्रित समूह – गैर–योग समूह) – 600 विद्यार्थी (300 पुरुष, 300 महिला) जो किसी भी प्रकार के नियमित योग, ध्यान या विशिष्ट जिम–आधारित एथलेटिक प्रशिक्षण में शामिल नहीं थे।

डेटा संग्रहण के उपकरण :

1. NEO-FFI (NEO Five-Factor Inventory) – व्यक्तित्व के 5 बड़े आयामों को मापने के लिए।
2. DASS-21 (Depression, Anxiety, and Stress Scale)– मानसिक स्वास्थ्य और नकारात्मक भावनात्मक

राज्यों के मूल्यांकन के लिए।

3. संज्ञानात्मक लचीलापन पैमाना – मानसिक अनुकूलनशीलता को मापने के लिए।

4. शैक्षणिक रिकॉर्ड– 10 वर्षों के दौरान स्नातक, परास्नातक और प्रारंभिक कैरियर के प्रदर्शन का संकलन।

10 वर्षीय डेटा संकलन एवं विश्लेषण (2016–2026)

विगत दस वर्षों में प्रति वर्ष दोनों समूहों से डेटा एकत्र किया गया। समय के साथ होने वाले परिवर्तनों को ट्रैक करने के लिए 2016 (प्रारंभिक बिंदु), 2021 (मध्य बिंदु) और 2026 (वर्तमान बिंदु) के समेकित आंकड़ों को मुख्य सांख्यिकीय विश्लेषण का आधार बनाया गया है।

बिग फाइव व्यक्तित्व लक्षणों का सांख्यिकीय विश्लेषण :

नीचे दी गई तालिका 10 वर्षों के अंतराल पर दोनों समूहों के माध्य स्कोर (Mean Scores – अधिकतम स्कोर 100 के पैमाने पर) और उनके अंतर को दर्शाती है –

व्यक्तित्व आयाम	वर्ष	योग समूह	गैर–योग समूह	मूल्य	सार्थकता स्तर
भावनात्मक स्थिरता	2016	54.2	53.1	0.35	>0.05
	2021	65.4	51.2	12.4	>0.01
	2026	78.4	46.8	0.21	>0.001
कर्तव्यनिष्ठता	2016	50.1	49.8	0.21	>0.05
	2021	65.2	52.1	9.8	>0.01
	2026	74.1	53.0	18.4	>0.001
अनुभवों के प्रति खुलापन	2016	52.8	53.1	–0.15	>0.05
	2021	64.0	54.2	7.2	>0.05
	2026	71.2	53.8	13.1	>0.01
सहमतता	2016	55.0	54.7	0.18	>0.05
	2021	63.8	56.1	6.5	>0.05
	2026	72.6	52.3	15.2	>0.01
बहिर्मुखता	2016	51.5	52.0	–0.38	>0.05
	2021	58.2	53.4	3.9	>0.05
	2026	65.4	51.1	8.6	>0.01

उपरोक्त तालिका के अनुसार $p < 0\text{-}01$ अत्यधिक सार्थक अंतर को दर्शाता है, $p < 0\text{-}05$ सामान्य सार्थक अंतर को दर्शाता है।)

मानसिक स्वास्थ्य सूचकांक प्रवृत्तियाँ (2016–2026)

विगत 10 वर्षों में दोनों समूहों के मानसिक तनाव, चिंता और अवसाद के स्तर में विपरीत प्रवृत्तियाँ देखी गईं।

जहां गैर–योग समूह में शैक्षणिक और करियर दबाव के कारण तनाव सूचकांक 2016 में 15.4 से बढ़कर 2026 में 28.2 (गंभीर श्रेणी) तक पहुंच गया, वहीं नियमित योगाभ्यास करने वाले समूह ने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अपने तनाव स्तर को 11.2 (सामान्य श्रेणी) पर बनाए रखा।

निम्नलिखित ग्राफिकल डेटा प्रारूप दोनों समूहों के बीच 2026 में तनाव और चिंता के स्तरों के अंतर को स्पष्ट करता है –

योग समूह (2016) – अवसाद (निम्न : 8.5%), चिंता (निम्न : 10.2%), तनाव (सामान्य : 12.1%)

गैर–योग समूह (२०२६)% अवसाद (उच्च : 24.6%), चिंता (उच्च : 31.8%), तनाव (गंभीर : 38.5%)

परिणाम एवं विस्तृत विवेचना :

प्राप्त आंकड़ों का सघन विश्लेषण करने पर शोध की तीनों शून्य परिकल्पनाओं (H_01, H_02, H_03) को अस्वीकार कर दिया गया। इसके आधार पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुए–

भावनात्मक स्थिरता बनाम तंत्रिका-ताप :

उपरोक्त तालिका के अनुसार, 2016 में दोनों समूहों की भावनात्मक स्थिरता लगभग समान थी। परंतु 2026 तक आते–आते योग समूह का माध्य स्कोर 78.4 हो गया, जबकि गैर–योग समूह का गिरकर 46.8 रह गया। इसका मुख्य कारण यह है कि योग के अंग ध्यान और प्राणायाम अमिगडाला (मस्तिष्क का वह केंद्र जो भय और तनाव को नियंत्रित करता है) की अति–सक्रियता को शांत करते हैं। योग करने वाले विद्यार्थियों में चित्त की स्थिरता पाई गई, जिससे वे असफलताओं और परीक्षाओं के दबाव में विचलित नहीं हुए। इसके विपरीत, गैर–योग समूह के विद्यार्थियों में चिड़चिड़ापन, अवसाद और मूड स्विंग्स की समस्या अधिक पाई गई।

कर्तव्यनिष्ठता और आत्म-अनुशासन :

नियमित योगाभ्यास के लिए आंतरिक प्रेरणा और कड़े आत्म–अनुशासन की आवश्यकता होती है। 10 वर्षों के आंकड़ों से स्पष्ट है कि योग समूह के छात्रों में कर्तव्यनिष्ठता का स्तर (74.9) गैर–योग समूह (53.0) से बहुत अधिक था। यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान) के नैतिक सिद्धांतों ने अनजाने में ही विद्यार्थियों के व्यावहारिक जीवन को सुव्यवस्थित कर दिया। वे अपने समय प्रबंधन, शैक्षणिक असाइनमेंट और व्यक्तिगत लक्ष्यों के प्रति अधिक केंद्रित पाए गए।

अनुभवों के प्रति खुलापन और संज्ञानात्मक लचीलापन :

बदलते वैश्विक परिदृश्य में संज्ञानात्मक लचीलापन व्यक्तित्व का एक अनिवार्य अंग है। योग समूह के विद्यार्थियों ने नए विचारों, संस्कृतियों और रचनात्मक कार्यों के प्रति अधिक खुलापन (Openness : 71.2) प्रदर्शित

किया। न्यूरोप्लास्टिसिटी (मस्तिष्क की बदलने और अनुकूलित होने की क्षमता) पर योग के सकारात्मक प्रभावों के कारण ये विद्यार्थी जटिल समस्याओं के समाधान में अधिक सक्षम पाए गए।

परोपकारिता और सहमतता :

योग दर्शन व्यक्ति को व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाता है। अष्टांग योग के अभ्यास से विद्यार्थियों में सहानुभूति और करुणा का संचार होता है। डेटा विश्लेषण से सिद्ध हुआ कि योग समूह के छात्रों में असामाजिक व्यवहार की दर शून्य के करीब थी और उनमें परोपकारिता तथा सामाजिक सामंजस्य का स्तर उच्च था।

जेंडर आधारित तुलनात्मक विश्लेषण :

10 वर्षों के डेटा के उप–समूह विश्लेषण से कुछ अत्यंत रोचक और विशिष्ट निष्कर्ष प्राप्त हुए –

1. **महिला विद्यार्थियों में संज्ञानात्मक लचीलापन** – योग समूह की महिला विद्यार्थियों में गैर–योग समूह की महिलाओं की तुलना में संज्ञानात्मक लचीलापन और भावनात्मक परिपक्वता का विकास अधिक तेजी से हुआ। महिलाओं में हार्मोनल संतुलन बनाए रखने में प्राणायाम और आसनों (जैसे सर्वांगासन, शशांकासन) ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2. **पुरूष विद्यार्थियों में आक्रामकता की कमी** – योग करने वाले पुरुष छात्रों में बहिर्मुखता का स्वस्थ स्वरूप देखा गया। उनमें आक्रामकता, व्यसन (धूम्रपान, मद्यपान) और जोखिम लेने वाले नकारात्मक व्यवहारों में गैर–योग समूह के पुरुषों की तुलना में 64% की कमी दर्ज की गई।

व्यक्तित्व विकास के विभिन्न आयामों पर योग का संचयी प्रभाव :

व्यक्तित्व के विकास को होलिस्टिक दृष्टिकोण से समझने के लिए योग के प्रभाव को पांच स्तरों पर वर्गीकृत किया जा सकता है, जो मानव के पंचकोश सिद्धांत के भी अनुरूप है–

शारीरिक आयाम	–	सुदृढ़ स्वास्थ्य, स्फूर्ति, कम बीमार पड़ना।
मानसिक आयाम	–	तनाव मुक्ति, ध्यान का केंद्रीकरण, आवेग नियंत्रण।
बौद्धिक आयाम	–	तार्किक क्षमता, निर्णय शक्ति, खुलापन।
सामाजिक आयाम	–	सहानुभूति, सहमतता, प्रगाढ़ पारस्परिक संबंध।
आत्म–प्रभावकारिता	–	उच्च जीवन उद्देश्य, आत्म–विश्वास, लचीलापन।

शोध की सीमाएं :

यह अध्ययन मुख्य रूप से शहरी और अर्ध–शहरी महाविद्यालयों के विद्यार्थियों पर केंद्रित था, अतः ग्रामीण परिवेश के छात्रों पर इसके निष्कर्षों को पूरी तरह लागू करने के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है।

10 वर्षों की लंबी अवधि के कारण, दोनों समूहों के कुछ प्रतिभागी (लगभग 8%) बीच में ड्रॉपआउट हो गए या उनके जीवन में अन्य बड़े बदलाव (जैसे गंभीर बीमारी या पारिवारिक संकट) आए, जिनका आंशिक प्रभाव डेटा पर पड़ सकता है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत 10 वर्षीय अनुदैर्ध्य तुलनात्मक अध्ययन अकादमिक और सांख्यिकीय रूप से यह सिद्ध करता है

कि नियमित योगाभ्यास महाविद्यालयीन स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है। योग करने वाले विद्यार्थी न केवल भावनात्मक रूप से अधिक स्थिर और तनाव–मुक्त होते हैं, बल्कि वे कर्तव्यनिष्ठता, सामाजिक सहमतता और संज्ञानात्मक लचीलेपन के मानकों पर भी सामान्य विद्यार्थियों से बहुत आगे होते हैं। यह शोध इस बात की पुष्टि करता है कि योग केवल शारीरिक स्वास्थ्य का माध्यम नहीं है, बल्कि यह मानसिक विकृतियों को दूर कर एक संतुलित, प्रखर और संवेदनशील व्यक्तित्व के निर्माण की समग्र पद्धति है।

नीतिगत सुझाव :

शोध के निष्कर्षों के आलोक में शिक्षाविदों, नीति निर्माताओं और विश्वविद्यालय प्रशासकों के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तावित हैं–

1. योग को उच्च शिक्षा के प्रत्येक संकाय में केवल एक वैकल्पिक विषय के रूप में नहीं, बल्कि क्रेडिट–आधारित अनिवार्य व्यावहारिक विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिए।
2. प्रत्येक महाविद्यालय में एक आधुनिक योग प्रयोगशाला या कल्याण केंद्र होना चाहिए, जहां प्रमाणित योग प्रशिक्षकों द्वारा छात्रों को उनकी मानसिक और शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार योगिक काउंसिलिंग दी जा सके।
3. वर्तमान डिजिटल युग में विद्यार्थियों के घटते ध्यान–अवधि को सुधारने के लिए कक्षाओं के प्रारंभ में 5 मिनट का प्राणायाम या माइंडफुलनेस सत्र अनिवार्य किया जाना चाहिए।
4. विश्वविद्यालयों को परीक्षाओं के तनाव को कम करने के लिए वार्षिक खेल कूद के साथ–साथ योग विधा और ध्यान शिविरों के संचयी प्रभाव का छात्र प्रोफाइल में मूल्यांकन करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. Bhavanani, A. B., Rajajeya kumar, M. & Ramanathan, M. (2021). "Yoga for personality development and stress management in students: A psychological perspective." Journal of Positive Psychology, 5(3), 45-56
2. Brown, R. P., & Gerbarg, P. L. (2005). "Sudarshan Kriya yogic breathing in the treatment of stress, anxiety, and depression: Part I & neurophysiologic model." Journal of Alternative & Complementary Medicine, 11(1), 189-201.
3. Desai, R., Tailor, A., & Bhatt, T. (2015). "Effects of yoga on brain waves and emotional processing." Indian Journal of Physiology and Pharmacology, 59(4), 372-381.
4. Gupta, S., Singh, R., & Rani, P. (2020). "Impact of yogic practices on conscientiousness and emotional stability among college going adolescents" International Journal of Yogic Studies, 8(2), 112-119.

5. Kumar, A., & Verma, S. (2023). "Effects of yoga Practice on well-being and self&efficacy of college students of Varanasi." International Journal of Applied Research, 12(1), 107-111.
6. Laveena, M., & Singh, A. (2018). "The Big Five Personality Traits and Yoga: A study on emotional regulation." Journal of Health Psychology, 23(7), 875-890.
7. Patel, R. (2018). "Yoga as a tool for enhancing emotional intelligence and self-awareness in young adults. Journal of Mental Health, 14(2), 201-215.
8. Rani, M., & Kaur, P. (2019). Yoga intervention and emotional stability in urban college students: A randomized control trial. Journal of Educational Psychology, 41(3), 305-318.
9. Singh, R., & Sharma, P. (2017). "Effect of Yoga on Personality Traits: A Psychological Study of University Students." ResearchGate, Publication No- 394229227.
10. Streeter, C. C. Whitfield, T. H. Owen, L., et al. (2010). "Effects of yoga versus walking on mood, anxiety, and brain GABA levels: A randomized controlled MRS study." Journal of Alternative and Complementary Medicine, 16(11)] 1145-1152.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 59-72

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

Integral Humanism as an Alternative Political Philosophy in Twentieth-Century India

Ravinder Kumar, Ph.D. Research Scholar

Deendayal Upadhayay Chair, H.P. University, Summer Hill Shimla-05

Dr. H.L. Sharma, Associate Professor, Department of Political Science.

Abstract :

The twentieth century witnessed significant ideological debates concerning the most appropriate political and socio-economic framework for newly independent societies, particularly in countries emerging from colonial rule. In India, these debates were influenced not only by Western ideologies such as capitalism and socialism but also by a growing search for an indigenous political philosophy rooted in the country's cultural and civilizational traditions. Within this intellectual context, Deendayal Upadhyaya developed the philosophy of Integral Humanism as an alternative political framework that sought to harmonize modern political and economic development with the ethical, cultural, and spiritual values of Indian civilization. This paper examines Integral Humanism as a distinctive contribution to twentieth-century Indian political thought by analyzing its philosophical foundations, central concepts, and socio-political implications. It explores Upadhyaya's critique of dominant Western ideologies and his attempt to articulate a holistic understanding of human development that integrates the individual, society, and state within a culturally grounded framework emphasizing social harmony, decentralized development, and moral responsibility. By situating Integral Humanism within the broader discourse of modern Indian political philosophy, the study highlights its significance as an intellectual effort to formulate an alternative political vision based on indigenous traditions while responding to the challenges of modernization and nation-building.

Keywords : *Integral Humanism, Indian Political Thought, Deendayal Upadhyaya, Cultural Nationalism, Indian Philosophy, Alternative Development Model.*

Introduction :

The twentieth century marked a decisive phase in the evolution of modern political thought, particularly in societies that were undergoing profound political transformation and searching for

appropriate models of development and governance (Mehta, 1992: 3). For newly independent countries, the central intellectual challenge was not merely the establishment of political sovereignty but also the formulation of ideological frameworks capable of addressing the complex realities of social organization, economic development, and cultural identity (Parekh, 2003: 45). In this global context, Western political ideologies such as capitalism and socialism came to dominate political discourse and were widely presented as universal models for organizing modern societies (Heywood, 2017: 57). While these ideological traditions offered influential approaches to economic policy and political governance, their application in diverse cultural settings often generated serious debates regarding their philosophical assumptions and their suitability for societies with distinct historical and civilizational backgrounds (Das, 2020: 2).

In India, these debates assumed a particularly significant dimension because the process of nation-building unfolded within a society characterized by an ancient civilizational heritage, cultural diversity, and a long tradition of philosophical reflection on social order and ethical life (Mehta, 1992: 12). The transition from colonial rule to independence therefore raised questions that extended beyond institutional or constitutional arrangements (Parekh, 2003: 58). It prompted Indian thinkers to reconsider the deeper philosophical foundations of political life and to explore whether models derived from Western historical experiences could adequately respond to the moral, cultural, and social realities of Indian society (Singh, 2024: 4). As a result, the development of modern Indian political thought became closely associated with a broader intellectual effort to reinterpret political concepts through the lens of indigenous philosophical traditions and civilizational values (Thakur, 2023: 2150).

Within this intellectual climate, several thinkers attempted to articulate alternative perspectives on political organization and development that would be consistent with India's cultural ethos while addressing the challenges of modernity (Banerjee, 2025: 6). Among these thinkers, Deendayal Upadhyaya occupies a distinctive position for his attempt to formulate a comprehensive philosophical framework known as Integral Humanism (Upadhyaya, 1965: 9). Presented through a series of lectures in 1965, Integral Humanism sought to provide a systematic alternative to the dominant ideological models of capitalism and socialism by emphasizing a holistic understanding of human life rooted in Indian philosophical traditions (Upadhyaya, 1965: 15; Rout, 2024: 2). Upadhyaya argued that Western ideologies tended to interpret human beings primarily in economic or political terms and therefore neglected the moral, cultural, and spiritual dimensions that are essential for the balanced development of society (Upadhyaya, 1965: 21; Singh & Parmila, 2019: 5). In contrast, Integral Humanism emphasizes the organic relationship between the individual, society, and the state, and proposes a

vision of development that integrates material progress with ethical responsibility, cultural continuity, and social harmony (Rout, 2024: 3; Thakur, 2023: 2153).

Seen in this wider intellectual perspective, Integral Humanism represents an attempt to reinterpret the relationship between human life, society, and political organization through the lens of India's philosophical and cultural traditions (Das, 2020: 7). Rather than viewing political development solely in terms of institutional arrangements or economic growth, the philosophy highlights the importance of ethical values, social harmony, and cultural continuity as integral components of a balanced social order (Upadhyaya, 1965: 32; Rout, 2024: 4). In this sense, Integral Humanism emerges as a distinctive contribution to modern Indian political thought, reflecting an effort to connect the civilizational heritage of India with the evolving challenges of political and social transformation in the modern era (Singh, 2024: 6).

Research Methodology :

The present study adopts a qualitative and analytical approach in order to examine the philosophical foundations and political significance of Integral Humanism within the broader framework of twentieth-century Indian political thought. Since the subject of the research is primarily concerned with political ideas, philosophical concepts, and ideological interpretations, the study relies mainly on interpretative and conceptual analysis rather than quantitative methods. The objective of this approach is to understand the theoretical structure of Integral Humanism and to analyze its position as an alternative political philosophy in relation to dominant ideological traditions of the modern period.

The research is primarily based on textual analysis of both primary and secondary sources. The primary sources include the speeches, lectures, and writings of Deendayal Upadhyaya, particularly his exposition of the philosophy of Integral Humanism delivered in 1965. These texts provide direct insight into the philosophical principles, conceptual categories, and intellectual arguments through which Upadhyaya articulated his understanding of human development, social organization, and political order. Along with these primary writings, the study also engages with relevant works on modern Indian political thought that help contextualize the emergence of Integral Humanism within the broader intellectual debates of the twentieth century.

Secondary sources form another important component of the research. These include scholarly books, research articles, and academic studies dealing with Indian political philosophy, cultural nationalism, and the ideological debates surrounding development and governance in modern India. Such studies provide interpretative perspectives that assist in situating Integral Humanism within the larger discourse of political theory and help illuminate its relationship with both Indian philosophical

traditions and Western ideological models.

The study further employs a comparative and interpretative method to examine the distinctive features of Integral Humanism in relation to other ideological frameworks such as capitalism and socialism. Through this analytical perspective, the research seeks to highlight the philosophical assumptions, conceptual structure, and socio-political implications of Upadhyaya's thought. This methodological approach makes it possible to evaluate Integral Humanism not only as a historical idea but also as a coherent philosophical framework that reflects the intellectual effort to articulate a culturally grounded vision of political and social development.

Historical Context of Integral Humanism :

The emergence of Integral Humanism in the mid-twentieth century must be understood within the broader historical and intellectual context of modern India, particularly the ideological debates that accompanied the transition from colonial rule to independence (Mehta, 1992: 45; Thakur, 2023: 2150). The period following India's independence in 1947 was marked by an intense search for appropriate political, economic, and social frameworks capable of guiding national reconstruction (Singh & Parmila, 2019: 3). While political sovereignty had been achieved, the newly independent nation faced the complex challenge of developing institutions and policies that could ensure economic development, social stability, and national integration within a culturally diverse society (Parekh, 2003: 67). Consequently, questions regarding the most suitable model of development and governance became central to political discourse (Das, 2020: 2).

During this period, Western ideological traditions such as capitalism and socialism exerted a strong influence on political thinking in many newly independent countries (Heywood, 2017: 58). These ideologies were widely presented as universal frameworks for organizing modern political and economic systems (Rout, 2024: 2). Capitalism emphasized individual freedom, market-oriented economic growth, and limited state intervention, while socialism focused on economic equality, centralized planning, and the expansion of state authority in economic life (Heywood, 2017: 72). In India, both of these ideological approaches influenced policy debates and intellectual discussions concerning development and governance (Singh & Parmila, 2019: 4). However, their adoption also generated significant debates regarding their compatibility with the historical experience, cultural values, and social structure of Indian society (Das, 2020: 4).

At the same time, many Indian thinkers believed that the process of nation-building required a deeper engagement with the philosophical and cultural traditions that had historically shaped Indian civilization (Mehta, 1992: 51). The intellectual legacy of Indian thought had long emphasized the ethical dimensions of social life, the interconnectedness of individual and community, and the

importance of moral responsibility in public life (Parekh, 2003: 74). These traditions encouraged the idea that political and economic systems should not be understood solely in material or institutional terms but should also reflect broader cultural and ethical values (Thakur, 2023: 2152). As a result, several thinkers sought to reinterpret modern political ideas in ways that would remain consistent with the philosophical worldview of Indian civilization (Rout, 2024: 3).

It was within this intellectual and historical context that Deendayal Upadhyaya developed the philosophy of Integral Humanism (Upadhyaya, 1965: 9). Presented in a series of lectures in 1965, this philosophy represented an attempt to articulate an alternative political framework that would reconcile the demands of modernization with the cultural and spiritual foundations of Indian society (Upadhyaya, 1965: 15; Singh & Parmila, 2019: 6). Upadhyaya argued that both capitalism and socialism were rooted in specific historical experiences of Western societies and therefore could not fully address the complexities of Indian social life (Upadhyaya, 1965: 21). According to him, these ideologies tended to emphasize material development while neglecting the ethical, cultural, and spiritual dimensions that are essential for the balanced development of human society (Das, 2020: 6; Rout, 2024: 4).

Integral Humanism therefore emerged as a philosophical response to the ideological debates of the twentieth century (Thakur, 2023: 2155). It sought to provide a conceptual framework in which economic development, social organization, and political governance could be understood in relation to a holistic view of human life (Singh & Parmila, 2019: 7). By emphasizing harmony between the individual, society, nature, and the spiritual dimension of existence, the philosophy attempted to offer a culturally grounded approach to political thought that would be more compatible with India's civilizational ethos (Upadhyaya, 1965: 32). In this sense, the historical context of Integral Humanism reveals it as part of a broader intellectual effort within modern Indian political thought to formulate alternative models of development that integrate cultural traditions with the requirements of modern political life (Mehta, 1992: 63; Thakur, 2023: 2156).

Philosophical Foundations of Integral Humanism :

The philosophy of Integral Humanism is deeply rooted in the intellectual and philosophical traditions of Indian civilization. Deendayal Upadhyaya did not present this philosophy merely as a political doctrine but as a comprehensive worldview that draws inspiration from the ethical, cultural, and spiritual insights of classical Indian thought (Rout, 2024: 3). In his view, political systems and economic structures cannot be understood in isolation from the broader philosophical understanding of human life (Thakur, 2023: 2152). Consequently, the foundation of Integral Humanism lies in the belief that social and political organization must reflect the holistic conception of human existence

that has historically characterized Indian philosophical traditions (Das, 2020: 5).

A central feature of this philosophical perspective is the idea that human life possesses multiple dimensions that must be understood in an integrated manner (Upadhyaya, 1965: 18). Indian philosophical traditions have long emphasized that human beings cannot be defined solely in terms of material needs or economic interests. Rather, human life encompasses physical, intellectual, emotional, and spiritual aspects that together shape the development of the individual (Rout, 2024, p. 4). Upadhyaya adopted this holistic understanding and argued that any political philosophy that focuses exclusively on material development inevitably produces social imbalance and moral disorientation (Upadhyaya, 1965: 21; Singh & Parmila, 2019: 6). Integral Humanism therefore seeks to restore balance by recognizing the interconnected nature of the different dimensions of human existence (Das, 2020: 6).

Another important philosophical element underlying Integral Humanism is the Indian concept of harmony between the individual and society (Mehta, 1992: 59). In many Western ideological traditions, the relationship between the individual and the collective has often been interpreted in terms of conflict, with political theory attempting to determine which should be given priority (Heywood, 2017: 78). Upadhyaya rejected this dichotomy and argued that Indian philosophical thought views the individual and society as complementary rather than antagonistic entities (Upadhyaya, 1965: 24). According to this perspective, the individual develops within the social environment, while society itself derives vitality from the creative and ethical contributions of individuals (Thakur, 2023: 2153). Integral Humanism therefore emphasizes cooperation, social responsibility, and mutual interdependence as the basis of a healthy social order (Singh & Parmila, 2019: 7).

The philosophy also reflects the influence of the traditional Indian understanding of dharma, which is often interpreted as the principle that sustains moral order and social harmony. In the framework of Integral Humanism, dharma functions not merely as a religious concept but as a guiding ethical principle that shapes the functioning of social institutions and political life (Upadhyaya, 1965: 27). Upadhyaya believed that the absence of moral guidance in modern political systems often leads to excessive materialism and social fragmentation (Das, 2020: 7). By emphasizing the role of ethical values and cultural traditions, Integral Humanism seeks to establish a moral foundation for political organization and economic development (Rout, 2024: 5).

Furthermore, the philosophical structure of Integral Humanism is also influenced by the classical Indian idea of the four purusharthas, namely dharma, artha, kama, and moksha, which represent different dimensions of human aspiration (Radhakrishnan, 2008: 52). According to this framework, human life involves not only economic activity and material well-being but also ethical responsibility,

social relationships, and spiritual fulfillment (Mehta, 1992: 63). Upadhyaya interpreted these principles as evidence of the balanced approach to human development embedded in Indian civilization (Upadhyaya, 1965: 30). Integral Humanism therefore attempts to incorporate this holistic perspective into modern political thought by advocating a model of development that harmonizes economic progress with ethical values and cultural continuity (Thakur, 2023: 2155; Rout, 2024: 6).

Through these philosophical foundations, Integral Humanism presents a vision of society in which political institutions, economic structures, and cultural traditions function together within a coherent ethical framework (Singh & Parmila, 2019: 8). Rather than separating politics from culture or economics from moral values, the philosophy emphasizes the need for an integrated approach to human development (Das, 2020: 8). In this sense, the philosophical foundations of Integral Humanism reveal it as an attempt to reinterpret the classical insights of Indian thought in order to address the challenges of modern political life while preserving the cultural and ethical principles that sustain social harmony (Thakur, 2023: 2156).

Core Principles of Integral Humanism :

The philosophy of Integral Humanism is articulated through a set of fundamental principles that collectively define its understanding of human nature, social organization, and political order (Singh & Parmila, 2019: 5). Deendayal Upadhyaya developed these principles in order to present a comprehensive framework that integrates ethical values, cultural traditions, and socio-economic development within a unified philosophical vision (Rout, 2024: 3). At the core of this philosophy lies the belief that human life and social institutions must be understood in an integrated and harmonious manner rather than through fragmented or purely materialistic interpretations (Das, 2020: 6; Thakur, 2023: 2152).

One of the central principles of Integral Humanism is the concept of the integral view of the human being (Upadhyaya, 1965: 18). Upadhyaya argued that human personality cannot be reduced to a single dimension such as economic interest or political identity (Singh & Parmila, 2019: 6). Instead, human life consists of multiple interconnected aspects including the physical, intellectual, emotional, and spiritual dimensions (Radhakrishnan, 2008: 34). According to this perspective, the balanced development of society depends upon recognizing the full complexity of human nature (Rout, 2024: 4). Political and economic systems that focus exclusively on material prosperity tend to ignore the ethical and cultural needs of individuals, which ultimately leads to social imbalance (Das, 2020: 7). Integral Humanism therefore proposes a holistic understanding of human development in which material progress is harmonized with moral responsibility and spiritual growth (Thakur, 2023: 2153). Another important principle of Integral Humanism is the concept of Chiti, which Upadhyaya described

as the cultural and spiritual consciousness of a nation (Upadhyaya, 1965: 27). According to him, every society possesses a distinctive collective identity shaped by its historical experiences, cultural traditions, and ethical values (Singh & Parmila, 2019: 7). This collective consciousness acts as a guiding force that influences the social and political institutions of a nation (Rout, 2024: 5). In the Indian context, Upadhyaya believed that this cultural consciousness is deeply connected with the civilizational traditions of India, which emphasize harmony, moral duty, and the interconnectedness of social life (Mehta, 1992: 61). The concept of Chiti therefore highlights the importance of cultural continuity in shaping national identity and guiding the development of social institutions (Thakur, 2023: 2154).

Closely related to the idea of Chiti is the concept of Virat, which represents the organized and dynamic expression of national life (Upadhyaya, 1965: 30). While Chiti refers to the inner cultural consciousness of a nation, Virat represents its visible and institutional manifestation in social and political structures (Das, 2020: 8). Through this concept, Upadhyaya emphasized that the vitality of a nation depends upon the active participation of its citizens in collective social life (Singh & Parmila, 2019: 8). Institutions such as the state, social organizations, and economic systems are therefore viewed as expressions of this collective energy (Rout, 2024: 6). The relationship between Chiti and Virat illustrates how cultural values are translated into practical forms of social organization (Thakur, 2023: 2155).

Integral Humanism also emphasizes the harmonious relationship between the individual, society, and the state. Upadhyaya rejected the tendency of certain Western ideologies to prioritize either individual freedom or collective authority at the expense of the other. Instead, he argued that the individual and society exist in a mutually supportive relationship where each contributes to the development of the other (Singh & Parmila, 2019: 9). The state, in this framework, is not an absolute authority but an institution that functions to maintain social order and facilitate the well-being of the community (Rout, 2024: 7). This perspective highlights the importance of cooperation, social responsibility, and ethical governance in maintaining a balanced political system (Das, 2020: 9).

Another significant principle of Integral Humanism is its emphasis on decentralized economic organization. Upadhyaya believed that economic systems should promote self-reliance, local participation, and equitable distribution of resources rather than concentrating economic power in centralized institutions (Thakur, 2023: 2156). He argued that excessive centralization, whether in capitalist corporations or socialist state structures, often leads to economic inequality and social alienation (Singh & Parmila, 2019: 10). Integral Humanism therefore advocates an economic model that encourages local initiative, small-scale production, and balanced regional development while

ensuring that economic activity remains aligned with the broader goals of social welfare and cultural stability (Rout, 2024: 8; Das, 2020: 10).

Critique of Western Ideologies: Capitalism and Socialism :

A significant aspect of Deendayal Upadhyaya's political thought lies in his critical examination of dominant Western ideological traditions, particularly capitalism and socialism (Singh & Parmila, 2019: 5). During the twentieth century, these two ideologies emerged as the most influential frameworks for organizing political and economic systems across the world (Heywood, 2017: 58). Many newly independent nations adopted or experimented with these models in their efforts to achieve economic development and social transformation (Parekh, 2003: 69). However, Upadhyaya argued that both capitalism and socialism were shaped by the historical experiences and philosophical assumptions of Western societies and therefore could not fully address the social, cultural, and ethical realities of countries such as India (Das, 2020: 4; Rout, 2024: 3).

Upadhyaya believed that capitalism places excessive emphasis on individual freedom and economic competition while neglecting the broader social responsibilities of economic activity (Upadhyaya, 1965: 22). In a capitalist system, the pursuit of profit often becomes the central objective of economic life, which can lead to the concentration of wealth and the marginalization of weaker sections of society (Heywood, 2017: 72). Although capitalism encourages innovation and economic growth, Upadhyaya argued that its underlying materialistic orientation tends to weaken social cohesion and ethical responsibility (Singh & Parmila, 2019, p. 6). When economic success becomes the primary measure of human achievement, the moral and cultural dimensions of life are often overlooked, resulting in social inequalities and moral imbalance (Das, 2020: 6; Thakur, 2023: 2152).

At the same time, Upadhyaya was equally critical of socialism, which he believed attempted to address the problems of inequality by concentrating economic and political power in the hands of the state (Upadhyaya, 1965: 24). While socialism emphasizes collective welfare and social justice, its reliance on centralized planning and state control can restrict individual initiative and limit the diversity of social life (Heywood, 2017: 96). Upadhyaya argued that such systems often reduce individuals to mere components of a bureaucratic structure, thereby weakening the organic relationship between individuals and society (Singh & Parmila, 2019, p. 7). In this sense, socialism may correct certain economic injustices but can also create new forms of dependency and institutional rigidity (Rout, 2024: 4).

According to Upadhyaya, both capitalism and socialism share a common philosophical limitation in that they interpret human life primarily through material or economic categories (Upadhyaya, 1965: 26). Despite their differences in institutional design, both ideologies tend to prioritize economic

structures over ethical and cultural considerations (Das, 2020: 7). As a result, they fail to recognize the multidimensional nature of human existence that includes moral responsibility, social relationships, and spiritual aspirations (Thakur, 2023: 2154). Upadhyaya therefore argued that the adoption of either system without critical reflection could lead to an incomplete understanding of human development (Singh & Parmila, 2019: 8).

Integral Humanism was proposed as an alternative philosophical framework that attempts to overcome these limitations (Upadhyaya, 1965: 30). Instead of viewing economic growth as the sole objective of development, the philosophy emphasizes the balanced integration of material progress with ethical values, cultural traditions, and social harmony (Rout, 2024: 5; Das, 2020: 8). Upadhyaya believed that a sustainable political and economic system must recognize the interconnected relationship between the individual, society, and the moral order that guides human behavior (Thakur, 2023: 2155). By emphasizing this holistic perspective, Integral Humanism seeks to provide a more comprehensive approach to political organization and development that reflects both the material needs and the cultural aspirations of society (Singh & Parmila, 2019: 9).

Socio-Economic and Political Implications of Integral Humanism :

The philosophy of Integral Humanism not only provides a theoretical interpretation of human nature and social organization but also offers important insights into the practical dimensions of economic development and political governance (Singh & Parmila, 2019: 8). Deendayal Upadhyaya believed that political philosophy must ultimately address the real problems of society, including economic inequality, social harmony, and the ethical functioning of political institutions (Das, 2020: 7). Consequently, Integral Humanism proposes a socio-economic framework that attempts to harmonize development with cultural values and moral responsibility (Rout, 2024: 4; Thakur, 2023: 2154).

One of the most significant implications of Integral Humanism lies in its approach to economic organization. Upadhyaya argued that economic development should not be measured solely in terms of industrial expansion or material prosperity (Singh & Parmila, 2019: 9). Instead, the objective of economic activity should be the overall well-being of society (Rout, 2024: 5). From this perspective, economic systems must ensure that the basic needs of all individuals are fulfilled while also preserving the dignity of labour and encouraging self-reliance (Das, 2020: 8). Economic growth, therefore, should be directed toward the welfare of society rather than the accumulation of wealth by a limited group of individuals or institutions (Thakur, 2023: 2155).

Integral Humanism also emphasizes the importance of decentralized economic development. Upadhyaya believed that excessive centralization of economic power often leads to social inequality

and weakens local initiative (Rout, 2024: 6). He therefore advocated a model of development in which local communities play an active role in economic decision-making (Singh & Parmila, 2019: 10). Such a system encourages the growth of small-scale industries, agriculture-based production, and regional economic self-sufficiency (Das, 2020: 9). By strengthening local economic structures, decentralized development can reduce regional disparities and promote balanced national progress (Thakur, 2023: 2156).

Another important implication of Integral Humanism relates to the relationship between the state and society. Upadhyaya rejected the idea that the state should dominate all aspects of social and economic life (Singh & Parmila, 2019: 11). Instead, he argued that society itself is a living and dynamic entity that possesses its own institutions and cultural traditions (Rout, 2024: 7). The role of the state should therefore be limited to maintaining social order, protecting justice, and facilitating conditions that enable individuals and communities to flourish (Das, 2020: 10). This perspective emphasizes the importance of social cooperation and civic responsibility rather than excessive dependence on state authority (Thakur, 2023: 2157).

Integral Humanism also places considerable emphasis on the principle of social harmony. Upadhyaya believed that the stability and progress of a nation depend upon the cultivation of mutual respect and cooperation among different sections of society (Singh & Parmila, 2019: 12). Social divisions based on economic inequality, caste, or other forms of hierarchy can weaken national unity and obstruct collective development (Das, 2020: 11). By emphasizing ethical responsibility, cultural continuity, and shared social values, Integral Humanism seeks to create a social environment in which individuals and communities work together for the common good (Rout, 2024: 8; Thakur, 2023: 2158).

Contemporary Relevance of Integral Humanism :

In the contemporary era, the relevance of political philosophies is often evaluated in relation to the changing social, economic, and cultural conditions of society (Heywood, 2017: 5). Rapid processes of globalization, technological transformation, and economic integration have significantly altered the structure of modern societies (Stiglitz, 2002: 9). While these developments have created new opportunities for economic growth and global interaction, they have also generated complex challenges related to social inequality, cultural identity, and ethical governance (Giddens, 2003: 27). Within this evolving global context, the philosophy of Integral Humanism continues to attract attention as a framework that attempts to balance material development with cultural and moral values (Rout, 2024: 6).

One important aspect of its contemporary relevance lies in its holistic approach to development.

In many parts of the world, development has frequently been measured primarily through economic indicators such as industrial growth, market expansion, and technological advancement (Sen, 1999: 14). However, such approaches have often been criticized for neglecting the social and ethical dimensions of development (Stiglitz, 2002: 38). Integral Humanism offers an alternative perspective by emphasizing that genuine development must address the physical, intellectual, moral, and spiritual needs of human beings (Singh & Parmila, 2019: 10). This broader understanding encourages a model of progress that integrates economic growth with social responsibility and ethical awareness (Rout, 2024: 7).

The philosophy also remains relevant in discussions concerning cultural identity in an increasingly globalized world (Giddens, 2003: 45). Globalization has facilitated the exchange of ideas, goods, and technologies across national boundaries, but it has also intensified debates regarding the preservation of cultural traditions and civilizational heritage (Sen, 2006: 67). Integral Humanism emphasizes that cultural identity forms an essential foundation for social stability and national unity (Upadhyaya, 1965: 34). By recognizing the role of cultural traditions in shaping collective life, the philosophy encourages societies to engage with modern developments without losing their historical and cultural roots (Thakur, 2023: 2157).

Another dimension of its contemporary significance relates to the search for balanced economic development (Rout, 2024: 7). Many modern economies have experienced significant disparities between regions and social groups, resulting in persistent economic inequality and social discontent (Stiglitz, 2002: 53). The emphasis placed by Integral Humanism on decentralized economic organization and local self-reliance offers an alternative approach that seeks to distribute economic opportunities more equitably (Upadhyaya, 1965: 36; Singh & Parmila, 2019: 11). By encouraging community participation and regional development, such an approach aims to strengthen both economic stability and social cohesion (Das, 2020: 10).

Integral Humanism also contributes to contemporary debates concerning the relationship between the state, society, and ethical governance (Heywood, 2017: 110). Modern political systems often face criticism for excessive bureaucratic centralization or for allowing economic forces to dominate social priorities (Giddens, 2003: 72). The perspective offered by Integral Humanism suggests that a healthy political system requires a balanced relationship between state institutions and social organizations (Upadhyaya, 1965: 38). In this framework, the state functions as a facilitator of social welfare while society itself remains the primary foundation of collective life (Singh & Parmila, 2019: 12)

In this way, the contemporary relevance of Integral Humanism lies in its attempt to provide a

philosophical framework capable of addressing the challenges of modern development while preserving cultural continuity and ethical values (Thakur, 2023: 2158). By emphasizing harmony between material progress and moral responsibility, the philosophy continues to offer meaningful insights for discussions on development, cultural identity, and political organization in modern societies (Das, 2020: 11).

Conclusion :

In conclusion, Integral Humanism represents a significant intellectual attempt within twentieth-century Indian political thought to articulate an alternative philosophical framework capable of addressing the challenges of modernization while remaining rooted in the cultural and civilizational traditions of India. Emerging in a period marked by intense ideological debates between capitalism and socialism, Deendayal Upadhyaya's philosophy sought to move beyond these dominant Western paradigms by proposing a holistic understanding of human life and social organization. As this study demonstrates, Integral Humanism is founded upon the belief that human development cannot be understood solely in material or economic terms but must integrate the physical, intellectual, moral, and spiritual dimensions of human existence. Drawing upon classical Indian philosophical ideas such as *dharma* and the concept of balanced human aspirations, the philosophy emphasizes harmony between the individual, society, and the state, while highlighting the importance of cultural consciousness through concepts such as *Chiti* and *Virat*. At the same time, Upadhyaya's critique of capitalism and socialism underscores the limitations of ideological systems that prioritize economic structures over ethical and cultural foundations, thereby proposing a socio-economic vision based on decentralized development, social responsibility, and community participation. In this broader perspective, Integral Humanism emerges not merely as a political doctrine but as a comprehensive philosophical framework that seeks to reconcile material progress with ethical values, cultural continuity, and social harmony. Its emphasis on balanced development and moral responsibility continues to offer meaningful insights for contemporary debates on governance, development, and cultural identity, thereby reaffirming its place as an important contribution to modern Indian political philosophy.

References :

- Banerjee, A. (2025). Integral humanism and the search for an indigenous model of development in India. *International Journal of Political Science and Governance, 7*(1).
- Das, K. (2020). An introduction to Pt. Deendayal Upadhyaya's philosophy: Integral humanism. *Journal of Teaching and Research in Political Science, 5*(2).
- Giddens, A. (2003). *Runaway world: How globalization is reshaping our lives*. New York,

NY: Routledge.

- Heywood, A. (2017). *Political ideologies: An introduction* (6th ed.). London, United Kingdom: Macmillan Education.
- Mehta, V. R. (1992). *Foundations of Indian political thought: An interpretation from Manu to the present day*. New Delhi, India: Manohar Publishers.
- Parekh, B. (2003). *Rethinking multiculturalism: Cultural diversity and political theory* (2nd ed.). London, United Kingdom: Palgrave Macmillan.
- Radhakrishnan, S. (2008). *Indian philosophy* (Vol. 1). New Delhi, India: Oxford University Press.
- Rout, P. K. (2024). Envisioning future India: Revisiting the concept of integral humanism by Pandit Deendayal Upadhyaya. *PARIPEX – Indian Journal of Research, 13*(4).
- Sen, A. (1999). *Development as freedom*. New York, NY: Alfred A. Knopf.
- Sen, A. (2006). *Identity and violence: The illusion of destiny*. New York, NY: W. W. Norton & Company.
- Singh, R. (2024). Integral humanism as an alternative political philosophy in modern India. *Journal of Political Studies and Governance, 12*(1).
- Singh, V., & Parmila. (2019). Integral humanism: Political philosophy of Pandit Deendayal Upadhyaya. *International Journal of Research and Analytical Reviews, 6*(2).
- Stiglitz, J. E. (2002). *Globalization and its discontents*. New York, NY: W. W. Norton & Company.
- Thakur, R. (2023). Integral humanism: The quest for socio-political identity in Hindu nationalism. *ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts, 4*(2).
- Upadhyaya, D. (1965). *Integral humanism*. New Delhi, India: Deendayal Research Institute.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 73-81

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

Foundational Literacy and Numeracy Acording to (NEP, 2020)

Dr. Ram Nagina Rajak, Lecturer

Primary Teacher Education College Rampur, Jalalpur (Samastipur)

ABSTRACT :

The most critical period for growth and development is the initial eight years of a child's life (ages 0 to 8), as this is when the foundation for comprehensive growth and learning is laid. Children who attend a high-quality preschool curriculum reach major social, educational, and intellectual milestones that set them apart from those who do not. Early childhood development is critical for children's long-term development and can significantly impact their school enrolment and involvement. According to research, high-quality early childhood education programs lower the likelihood of dropping out and repeating school and increase educational performance at all levels. With education systems worldwide faltering in various ways, which skills and at what stage in a student's life-make the most significant difference in their long-term outcomes needs emphasis. Foundational literacy and numeracy (FLN) skills are one set of skills that international organizations place a high focus on. It is against this backdrop that the 2020 Policy on Education (NEP, 2020) strongly advocated that Foundational Literacy and Numeracy be strengthened in a mission mode and launched NIPUN- Bharat with a vision to ensure universal literacy and numeracy for Class 3 children by 2026-27 through coupling together of some critical areas.

KEYWORDS : FLN, NEP-2020, NIPUN Bharat, Learning Crisis, Key Skills.

Education systems are responsible for developing diverse abilities, including reading. numeracy, Ereasoning, socio-political, professional, cultural and others. However, children and adolescents in different countries lack basic literacy and numeracy skills despite years of education. According to Hwa, Kaffenberger, and Silberstein (2020), the education systems of different developing nations have a significant gap between what children are taught in school and what they already know and are capable of doing, which impedes learning and worsens learning

disparities. In early life, only a small percentage of children receive access to cognitive stimulation (Gregor et al., 2007). With education systems worldwide faltering in various ways, which skills and at what stage in a student's life-make the most significant difference in their long-term outcomes needs emphasis. Foundational literacy and numeracy (FLN) abilities are one set of skills that international organizations place a high focus on. "Ensure that all youth and a considerable number of adults including men and 2023, Bashir, R. & Jan, T.; licensee UIP, This is an Open Access Research distributed under the terms of the Creative Commons Attribution license (www.creativecommons.org/licenses/by/2.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited. women, achieve literacy and numeracy" is an objective of the fourth Sustainable Development Goals (SDG-4) (United Nations, 2016). The terms "learning crisis" (the problem) and "foundational literacy and numeracy" (the remedy) have been increasingly popular in recent years. The World Bank coined the concept "learning poverty," which focuses on reducing childhood illiteracy, and popularized the term "learning crisis" (World Bank, 2019a).

With 25 crore students registered in 15 lakh schools, India's educational system is the world's largest. We are on the verge of reaching universal primary enrollment, with half of our school-aged children enrolled in primary school. On the other hand, our schools fail to give students the foundational literacy and numeracy (FLN) abilities they require (NEP, 2020, Para 2.1. p. 8). Numerous studies have demonstrated that high-quality preschool instruction and early learning equip kids for greater success in the future. A stimulating environment is essential for children's intellectual growth and comprehension. This calls for the availability of suitable infrastructure and other appropriate facilities, such as preschool instruction outside the home (Murlidharan and Kaul 1999). Studies show that preschoolers perform significantly better in early math and essential reading than their local school counterparts (Laosa and Ainsworth 2007). Because a child's cumulative brain growth takes place between the ages of three and seven, acquiring fundamental literacy and numeracy abilities is crucial. Because children who fall behind at a young age rarely catch up, these FLN skills are critical. The National Education Policy (2020) prioritizes the acquiring of Foundational Literacy and Numeracy. "Only once this most basic learning criterion (i.e., foundational reading, writing, and arithmetic) is met will the remainder of this Policy become relevant for our children" (NEP, 2020 para 2.2).

OBJECTIVES OF THE STUDY :

- To analyse the recommendations of National Education Policy-2020 on FLN.
- To understand the FLN Skills as per NIPUN, 2021.

- To understand the challenges in the attainment of FLN at the national level.
- To highlight the integration of critical areas in improving FLN outcomes.

METHODOLOGY :

The Research work was conducted using primary sources like Policy Document, NEP-2020 and secondary sources like Websites, Journals and Newspapers, employing descriptive research study.

FOUNDATIONAL LITERACY & NUMERACY (FLN) :

The term literacy is commonly used to describe the acquisition and use of the basic skills of reading, writing and arithmetic, the so-called 3Rs, divided into literacy and numeracy. More recently, "literacy" has been defined as the ability to recognize, understand, decipher, produce, convey and quantify using written and printed resources associated with different scenarios, whereas numeracy was defined as the ability to reason and apply mathematical skills in day-to-day life (Litster, 2013). Literacy and numeracy are both motivators for successful partaking in social, cultural, political and economic happenings and for learning through life.

In the Indian milieu, Foundational literacy and numeracy (FLN) is the education of children of 3 to 8 years age. As per the National Education Policy (NEP 2020), FLN spans from preschool up to grade 2. Foundational literacy is the capability to comprehend and distinguish letters, read well-known words, and establish various forms of communication. Literacy assists students to read, write and speak clearly. Foundational numeracy is understanding and identifying numbers, discriminating between numbers, and performing basic mathematical calculations (addition or subtraction). Future education and lifetime learning both depend on the capacity to read, write, and execute basic mathematical operations. People with these skills can think critically and creatively, which advances the country (GOI, NEP 2020).

The National Education Policy (NEP), 2020 places a high priority on the attainment of foundational literacy and numeracy (FLN) by all children by the completion of class 3rd as an urgent national mission. National Initiative for Proficiency in Reading with Understanding and Numeracy (NIPUN-Bharat) is a programme run by the Ministry of Education that outlines mission objectives and was launched with a vision to ensure universal literacy and numeracy for class 3 children by 2026-27. The mission will address the educational requirements of children aged three to nine. As a result, gaps associated with learning will be discovered. Moreover, the likely causes of these learning gaps will be dealt with and various techniques will be implemented, taking into account local conditions and the country's diversity. Furthermore, the goal is to create a strong connection and a smooth transition between the preschool period

and the early grades. The NEP, 2020 and the NIPUN Bharat recommendations hold a lot of promise in terms of suggested improvements that can profoundly improve and turn around our children's learning levels. These include measures ensuring the child's language has a place in the classroom and the opportunity "Vidya Pravesh - A three-month preparation module" for an effective transition. There are suggestions regarding the use of scientific principles of learning for revision of curricula, revamping of assessments, professional development of teachers, and inclusion of technology to ensure that the appropriate systems focussing on 'quality with scale' are in place and ensure maximum gains for our early graders. For FLN Mission, a reliable IT system is recommended. The Digital Infrastructure for Knowledge Sharing (DIKSHA), a nationwide digital platform for Indian school education is to be utilized as recommended by the FLN Mission. It was created in collaboration with NCERT and the Ministry of Education (NEP, 2020, p. 9). It has also specified the 'Lakshya' (goals) for cach class, starting with Balvatika. It will test the overall capability to read age-appropriate texts both familiar and unfamiliar, with understanding, and while demonstrating basic numeracy abilities.

Essential Skills for Foundational Literacy and Numeracy (FLN) Essential Skills- Foundational Literacy :

- **ORAL LANGUAGE DEVELOPMENT :** Language is a tool children use to comprehend and connect the world to their personal experiences. Language is a crucial tool for understanding and transmitting information. It's also a requirement for learning how to read and write. Early opportunities for oral language development aid in developing the thinking and reasoning skills required for deeper reading.
- **PHONOLOGICAL AWARENESS :** It pertains to the knowledge of speech sounds, syllables, and rhymes.
- **DECODING :** It pertains capability to correctly pronounce written words using your knowledge of letter-sound associations, especially letter patterns.
- **CONCBOUT PRINT :** It refers to the ability of knowing how to read a book, how to write a script (left to right, top to bottom, etc.), and that the text has significance.
- **WRITING :** It is viewed in two dimensions : first, as the ability of self-expression in writing; and second, as the ability to accurately write the symbols of a script (form words & sentences).
- **CULTURE OF READING :** It implies that every child has the opportunity to reach their full potential and cultivating an inclusive and cheerful reading culture is critical. Thus, the importance of libraries in developing foundational literacy cannot be overstated.

- **VOCABULARY :** The ability of not only being known to a word but also using the same in oral or written language.
- **READING COMPREHENSION :** The ability to read material with understanding. Comprehension is going into the details of a text.
- **READING FLUENCY :** The ability of a person to read a given material at a specific speed, tone, and prosody while grasping what is being read (a minimum speed of 30-45 words per minute by grade 2).

ESSENTIAL SKILLS - FOUNDATIONAL NUMERACY :

- **PRE-MATH CONCEPT :** It comprises the language learning of basic mathematics as lighter, heavier, smaller, bigger, between, front, back, etc.
- **NUMBERS AND OPERATIONS :** Symbols, sound, amount, and number relations are all part of understanding numbers. Operations and number sense are inextricably linked. Multiple calculation strategies are included in operations, including calculations with the object, devised strategies, and the standard algorithm.
- **MEASUREMENT :** A skill that entails a comparison of length, weight, or capacity learned via practical experience and the use of nonstandard measurement tools.
- **GEOMETRY :** It is concerned with basic shape recognition, spatial visualization, and reasoning.
- **PATTERNS :** Mathematics is the study of patterns, and children must be reinforced to identify and differentiate patterns in their daily lives and contexts in order to acquire this talent.

WHY FLN?

The magnitude of Foundational Literacy and Numeracy (FLN) reflects from the scene that the children who do not learn to read with comprehension in the foundational years struggle to do so in later years. This is popularly termed the Matthew Effect. While the grade-level content advances, the learners continue to slide behind. The divide and the gap between the children struggling with reading in the early years and those who are proficient readers continue to deepen (Kapoor, Jhalani, Vinayak & Zutshi, 2021, p. 21). So many talented children become trapped in this awful black hole, unable to escape. This is a key reason for many pupils not attending school or dropping out entirely.

A fundamental challenge that children in India encounter in the early years of education needs thorough analysis in the context of the socioeconomic, psychological, and now technological gaps. Unfortunately, India's foundational literacy and numeracy situation is poor as statistics from different surveys [Annual Status of Education Report (ASER) and National Achievement

Surveys (NAS) indicate inadequate reading, writing and numeracy skills across grades. The point of concern is not that children's performance is just low but has been declining in recent years. Furthermore, there are significant differences within the country, with certain states, such as Kerala, Himachal Pradesh, and Haryana, clearly outperforming others, such as Bihar, Madhya Pradesh, and Jharkhand (Kapoor, Jhalani, Vinayak & Zutshi, 2021, p. 9). Lack of focus on the quality of Foundational Literacy and Numeracy leads to generations of children who cannot become economically productive citizens, resulting in high economic and social costs. Early reading and numeracy abilities are essential for learning and linked to improved standard of life, personal well-being, national stability, and wealth, as well as being crucial for future educational success. Well-built literacy and numeracy skills assist students in learning. experimenting, reasoning, and creating and being engaged and educated citizens who contribute socially, culturally, and economically. Children's academic growth and motivation are hampered by a dearth of learning chances throughout the early stages of reading and numeracy acquisition, resulting in even lower achievement.

Various governmental and non-governmental studies show that we are presently experiencing a major crisis in terms of learning these most basic skills; according to the National Policy on Education (NEP, 2020, p.8): a large section of students (over five crores) enrolled presently in elementary school is lacking in the attainment of foundational literacy and numeracy skills. The NEP, 2020 also emphasizes the importance of confronting this situation front-on and acting so that core learning skills can be taught in classrooms and each child can benefit from a high-quality education. According to the NEP 2020, there will be a greater emphasis on foundational literacy and numeracy to avoid the learning crisis. (NEP, 2020, pp. 8-9). Education will focus on cognitive growth as well as on character development and the evolution of holistic and versatile persons with critical 21st-century abilities. For this reason, our educational system will move from a summative examination that primarily measures rote learning abilities to more continuous and formative reviews (NEP, 2020, p. 9). The new system will be competency-based, encouraging children's learning and advancement while also assessing higher-order abilities like analysis, critical thinking, and conceptual clarity.

CH6IIEN0ES 6SSOCI6TED WITH IIN?

A FALSE FRAMING : The term "foundational" indicates that children must first accomplish specific aspects of numeracy and literacy and then any other learning can occur. Numeracy and literacy are ensured in a successful education system, but they are not the sole or primary goal.

CREATES A DIVISION : Despite claims that FLN is aimed for all children, it is virtually exclusively a goal that is to be attained by children from remote and minoritized backgrounds, creating two distinct educational pathways in India: one for children in the upper echelon and large-fee private schools who will be able to focus on rich and comprehensive content, and the other for minority children in small-fee private/public schools who will not be able to go much beyond these key competencies. This has long-term ramifications since some children will be highly competent and more suitable for better careers, while others will be limited to literacy, with a limited pool of low-paying occupations to choose from.

In addition to the regular obstacles, Covid has added a new layer of complexity to the mix. While Covid prompted schools to close for an extended time, it also uncovered our unpreparedness regarding educational technology to reach early learners. There are hindrances to access at the family and the school level. Technology is of utmost potential. It is, however, a tool that must be used with prudence. There is ample evidence suggesting that scientifically and pedagogically relevant resources for Foundational Literacy and Numeracy are needed. As a nation, a dire need is there to identify these difficulties relating to children's foundational learning years; otherwise, we will breach our children's belief in us and their hopes for the future. Thus, a forward-looking approach will aid in facilitating the universal availability of high-quality education and equity for all children in pre-primary and primary school.

INTEGRATING THE KEY SKILLS :

India announced a National Foundational Literacy and Numeracy (FLN) Mission on July 5, 2021, intending to achieve FLN by the completion of grade 3 by 2026-27. This is an important first step on a national scale. However, we will not be able to attain this aim if we continue doing business as usual. Successful FLN programmers' have indicated that focusing on three important areas that should be firmly coupled together can improve FLN outcomes in the short term.

1. GOAL ALIGNMENT :

- Establish explicit, quantifiable, and realistic learning objectives.
- Align expectations for all stakeholders, including teachers, middle management, parents, and policymakers, so that the focus is shifted away from inputs and processes and toward accomplishing learning objectives.

2. ACADEMIC SUPPORT :

- Provide structured pedagogy materials, such as teacher guides with lesson plans that are closely connected to learning objectives, textbooks, workbooks, and assessments,

- Ensure that TLM (for example, textbooks and workbooks) and instructional design accommodate multigrade and multi-level scenarios,
- Provide excellent training for instructors on how to use tools and improve pedagogical techniques,
- Use a blended strategy for training to reduce dilution by using cascade and

3. MONITORING :

- Improve the quality of existing monitoring tools for tracking teaching quality and student development in relation to FLN objectives,
- Evaluate the effectiveness of training to identify design and delivery flaws,
- Make reliable information a priority and establish systems to optimize data integrity,
- Use data frequently for diagnosis, assistance, and course correction.

Implementing the NEP's recommendation for low-stakes competency-based essential stage exams in elementary grades will aid in this goal. Moreover, improving the quality of teaching through pre-service education reforms, aligning actor incentives with learning outcome improvement, and improving the quality of school education expenditure are critical structural issues that will lay the groundwork for a school system that can deliver universal foundational literacy and numeracy.

CONCLUSION :

Every child goes on a path to gain new knowledge and skills that will aid in their development as human capital and as a vital tool for economic advancement. This results from a robust early schooling foundation (Kapoor, Jhalani, Vinayak & Zutshi, 2021, p.13). The importance of achieving Foundational Literacy and Numeracy is strongly mentioned in the National Education Policy (2020). "Solely, when this most central learning criterion (i.e., foundational reading, writing, and arithmetic) is met, will the rest of this Policy become pertinent for our kids" (NEP 2020, Para 2.2). The Ministry of Education in India initiated the NIPUN Bharat mission, along with a concrete action guideline for states, to make sure that every child in India has accomplished foundational literacy and numeracy by the completion of Grade 3 by 2026-27. The learning outcomes from preschool to grade three have been defined for this purpose (3-9 years). The mission guidelines advocate for a change to competency-based education and use school-based assessment to provide teachers with continuous feedback. States must develop State Missions, District Missions, and Block Missions that align with the National Mission and guarantee that the learning outcomes are met. Making foundational literacy a priority for parents and political leaders by making it more visible is a vital lever to work on to

sustain advances in learning outcomes over time. The FLN Guidelines also recommend interacting constructively with the stakeholders to promote consciousness and involve all in the children's learning process. Although the endeavor is an objectively desirable reform, its formulation and implementation raise several concerns that must be addressed.

REFERENCES :

- Evans, D.K., & Harris, S. (2021). Should governments and donors prioritize investments in foundational literacy and numeracy? Centre for Global Development. 1-23. https://www.cgdev.org/sites/default/files/Should-governments-and-donors-prioritize-investments-FLN.pdf
- Ghosh, L.(2021).Foundational literacy and numeracy in West Bengal. Economic and Political Weekly.12-14.
- Hwa, Y. Y., Kaffenberger, M., & Silberstein, J. (2020). Aligning levels of instruction with goals and the needs of students (ALIGNS): Varied approaches, common principles. RISE Insight Series. https://doi.org/10.35489/BSG-RISE-RI_2020/022
- Kapoor, A., Jhalani, A., Vinayak. N., & Zutshi, S. (2021). State of foundational literacy and numeracy in India. Institute for Competitiveness. https://competitiveness.in/wpconten t/uploads/2021/12/Report_on_state_of_foundational_learning_and_numeracy_web_ version.pdf
- Ministry for Human Resource Development. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi.
- Sunwal, S. (n.d.). Foundational Literacy and Numeracy : A pre-requisite to learning and ECCE. https://www.education.gov.in/shikshakparv/docs/ Foundational_Literacy_Num cracy_background_note.pdf

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
May 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 82-89

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

A Critical Compilation and Analytical Study of *Sharir Sthana* in *Brihattrayee* and its Contemporary Significance for Ayurveda Scholars

Dr. Sangeeta Dev, Associate Professor, Rachana Sharir Department
Dr. Sunayana Mahajan, Assistant Professor, Rachana Sharir Department
Mr. Rajendra Prasad, Assistant Professor, Samhita Sidhanta Evam Sanskrit Vibhag
Desh Bhagat university, Mandi Gobindgarh.

Abstract :

Sharir Sthana occupies a central place in Ayurvedic literature as it explains the structure, development, composition, and functional organization of the human body. The *Brihattrayee*—namely Charaka Samhita, Sushruta Samhita, and Ashtanga Hridaya—provide detailed and multidimensional descriptions of anatomy, embryology, physiology, vital structures, and constitutional concepts. Although these texts differ in presentation and emphasis, collectively they establish the foundation of Ayurvedic anatomy and body sciences. The present review critically compiles the concepts of *Sharir Sthana* from the *Brihattrayee*, evaluates their similarities and differences, and analyzes their relevance in modern Ayurvedic education and contemporary biomedical understanding. The study highlights the philosophical depth, clinical applicability, and pedagogical value of Ayurvedic anatomy for present-day Ayurveda scholars. Furthermore, it explores how traditional concepts such as *Srotas*, *Marma*, *Dhatu*, *Garbha Sharir*, and *Pramana Sharir* can be interpreted in light of contemporary anatomy and physiology. The article concludes that *Sharir Sthana* remains not merely a historical anatomical description but a dynamic intellectual framework with enduring academic and clinical significance.

Keywords : Sharir Sthana, Brihattrayee, Ayurveda Anatomy, Rachana Sharir, Garbha Sharir, Marma, Srotas, Contemporary Relevance.

Introduction :

Ayurveda, the ancient Indian science of life, regards the human body as a microcosm of the universe governed by structural, physiological, psychological, and spiritual principles. Among the

classical Ayurvedic texts, the *Brihattrayee* forms the principal foundation of Ayurvedic knowledge. These three classical treatises—Charaka Samhita, Sushruta Samhita, and Ashtanga Hridaya—systematically explain various branches of Ayurveda and collectively preserve the ancient medical wisdom of India.

Within these treatises, *Sharir Sthana* represents the specialized section dedicated to the study of the body. The term "Sharir" is derived from the Sanskrit root *"Shri"*, meaning "that which undergoes continuous decay." Thus, *Sharir* refers not merely to the physical body but to a constantly transforming living system composed of *Dosha*, *Dhatu*, *Mala*, *Srotas*, *Indriya*, *Mana*, and *Atma*. The *Sharir Sthana* sections of the *Brihattrayee* discuss anatomy, embryology, constitutional typology, body measurements, vital points, channels, tissue organization, fetal development, and medico-philosophical concepts.

The *Sharir Sthana* of Sushruta Samhita is widely recognized for its anatomical precision and surgical orientation, especially its detailed descriptions of bones, muscles, vessels, and cadaveric dissection. In contrast, Charaka Samhita emphasizes physiological and philosophical dimensions, including embryogenesis, constitutional types, and the role of consciousness in bodily formation. Ashtanga Hridaya synthesizes the teachings of Charaka and Sushruta into a concise and clinically oriented presentation suitable for students and practitioners.

In the modern era, Ayurvedic education increasingly demands integration between classical concepts and contemporary biomedical sciences. Therefore, revisiting *Sharir Sthana* becomes essential not only for preserving textual authenticity but also for developing comparative anatomical understanding, interdisciplinary research, and clinically applicable interpretations. The present review critically compiles the concepts of *Sharir Sthana* from the *Brihattrayee* and evaluates their educational, philosophical, and contemporary significance for Ayurveda scholars.

Aim and Objectives

Aim :

To critically compile and analyze the concepts of *Sharir Sthana* described in the *Brihattrayee* and evaluate their contemporary relevance for Ayurveda scholars.

Objectives :

- To compile the major anatomical and embryological concepts described in the *Sharir Sthana* of the *Brihattrayee*.
- To critically compare the approaches of Charaka, Sushruta, and Vagbhata.
- To evaluate the contemporary significance of Ayurvedic anatomical concepts.
- To analyze the educational and clinical relevance of *Sharir Sthana* in modern Ayurveda.

Materials and Methods :

The present study is a narrative review based on classical Ayurvedic texts and contemporary scholarly literature.

Primary Sources :

- Charaka Samhita
- Sushruta Samhita
- Ashtanga Hridaya

Commentaries :

- *Ayurveda Dipika* by Chakrapani
- *Nibandha Sangraha* by Dalhana
- *Sarvanga Sundara* by Arunadatta

Secondary Sources :

Peer-reviewed review articles, comparative anatomical studies, and modern interpretations of Ayurvedic anatomy and embryology were consulted for analytical discussion.

Conceptual Overview of Sharir Sthana in Brihattrayee

1. Sharir Sthana in Charaka Samhita :

The *Sharir Sthana* of Charaka primarily focuses on philosophical anatomy and developmental biology.

Major Topics :

- Garbha Sharir (Embryology)
- Prakriti (Constitution)
- Purusha Siddhanta
- Dhatu formation
- Role of Atma in embryogenesis
- Maternal and paternal contributions
- Fetal nutrition and development

Charaka explains that the body develops through the union of *Shukra*, *Shonita*, *Atma*, *Satva*, and *Panchamahabhuta*. The text presents a sophisticated understanding of heredity, nutrition, and psychophysical constitution.

Contemporary Interpretation :

Modern scholars correlate Charaka's embryological principles with genetics, fetal nutrition, psychosomatic medicine, and personalized healthcare.

2. Sharir Sthana in Sushruta Samhita :

The *Sharir Sthana* of Sushruta is considered the most detailed anatomical exposition in Ayurveda.

Major Topics :

- Cadaveric dissection
- Bones, muscles, vessels, ligaments, and joints
- Marma Sharir
- Surgical anatomy
- Organ localization
- Sira, Dhamani, and Snayu descriptions

Sushruta emphasized practical anatomical knowledge for surgeons and advocated direct observation through dissection.

Cadaveric Dissection :

Sushruta described preservation and decomposition methods for cadaveric study. This demonstrates an advanced observational approach in ancient Indian medical science.

Contemporary Interpretation :

Modern anatomy scholars recognize Sushruta's contribution as one of the earliest organized anatomical traditions. The concept of *Marma* is now being explored in relation to neurovascular points and trauma management.

3. Sharir Sthana in Ashtanga Hridaya :

Ashtanga Hridaya presents a concise and integrated form of earlier Ayurvedic knowledge.

Major Topics :

- Embryology
- Tissue formation
- Srotas
- Marma
- Constitutional anatomy
- Body measurements

Vagbhata synthesized the philosophical concepts of Charaka and anatomical descriptions of Sushruta into a practical and student-friendly format.

Contemporary Interpretation :

The text remains highly relevant in BAMS education due to its concise and clinically oriented presentation.

Comparative Analysis of Sharir Sthana in Brihattrayee

Aspect	**Charaka Samhita**	**Sushruta Samhita**	**Ashtanga Hridaya**
Orientation	Philosophical and physiological	Surgical and anatomical	Integrative and clinical
Main Focus	Embryology and constitution	Gross anatomy and surgery	Concise synthesis
Anatomical Method	Functional approach	Structural approach	Combined approach
Dissection	Limited emphasis	Detailed emphasis	Brief mention
Marma Description	Basic	Elaborate	Concise
Educational Style	Detailed discussion	Descriptive	Mnemonic

Important Concepts and Their Contemporary Relevance

1. Garbha Sharir (Embryology) :

Ayurvedic embryology explains fetal development through maternal, paternal, nutritional, and spiritual factors.

Modern Significance :

- Developmental biology
- Prenatal care
- Maternal nutrition
- Fetal psychology

2. Marma Sharir :

Marma are vital anatomical points formed by the union of muscles, vessels, ligaments, bones, and joints.

Modern Correlation :

- Neurovascular junctions
- Surgical caution areas
- Pain management
- Rehabilitation therapy

3. Srotas Sharir :

Srotas are channels responsible for transportation and communication within the body.

Contemporary Relevance :

- Circulatory pathways
- Lymphatic channels
- Functional physiology
- Metabolic transport systems

4. **Prakriti Concept :**

The constitutional classification based on *Vata*, *Pitta*, and *Kapha* forms the basis of individualized medicine.

Modern Importance :

- Personalized medicine
- Predictive healthcare
- Lifestyle counseling
- Genomic research

5. **Pramana Sharir :**

Pramana Sharir deals with body measurements and proportional anatomy.

Modern Utility :

- Anthropometry
- Physical assessment
- Nutritional evaluation
- Constitutional analysis

Discussion :

The *Sharir Sthana* of the *Brihattrayee* reflects an extraordinary integration of anatomy, physiology, embryology, surgery, and philosophy. Unlike modern anatomy, which often studies the body in isolated systems, Ayurvedic anatomy considers the body as a holistic and interconnected living entity.

Charaka Samhita primarily emphasizes physiological and philosophical dimensions. It explains the importance of consciousness, mind, nutrition, and constitutional individuality in bodily development. This holistic perspective remains highly relevant in present-day psychosomatic medicine and preventive healthcare.

Sushruta Samhita demonstrates remarkable anatomical and surgical understanding. The detailed description of cadaveric dissection proves that ancient Ayurvedic scholars valued direct observation and experiential learning. The concepts of *Marma*, *Sira*, *Snayu*, and surgical anatomy indicate a sophisticated level of anatomical awareness. Even today, these principles contribute to trauma care, surgical safety, and therapeutic interventions.

Ashtanga Hridaya plays an important role in simplifying and systematizing earlier teachings. Vagbhata's concise and clinically oriented approach makes the text highly suitable for academic learning and clinical application. Therefore, it continues to be widely studied in Ayurveda institutions.

Several concepts of *Sharir Sthana* possess immense contemporary relevance. *Prakriti* theory

aligns with the growing field of personalized medicine. *Marma* concepts are increasingly explored in pain management and rehabilitation sciences. *Srotas* theory provides a functional understanding of body communication systems. Similarly, Ayurvedic embryology highlights maternal health, nutrition, and psychological wellbeing, which are now recognized as essential factors in fetal development.

However, certain challenges exist in correlating Ayurvedic anatomical concepts directly with modern anatomy. Some descriptions are symbolic or functional rather than purely structural. Therefore, scholars must adopt a balanced and research-oriented approach while interpreting classical concepts.

The educational significance of *Sharir Sthana* is equally important. Ayurveda students often memorize anatomical concepts without understanding their deeper clinical and philosophical implications. Integrating classical anatomy with modern anatomical sciences, imaging techniques, and clinical applications can greatly enrich Ayurvedic education.

Thus, *Sharir Sthana* should not be viewed merely as an ancient anatomical description but as a holistic framework that continues to offer valuable insights for modern healthcare, medical education, and interdisciplinary research.

Conclusion :

The *Sharir Sthana* of the *Brihattrayee* represents one of the most comprehensive and philosophically integrated anatomical traditions in classical medicine. Charaka Samhita provides the physiological and constitutional basis of the human body, Sushruta Samhita contributes detailed structural and surgical anatomy, and Ashtanga Hridaya synthesizes these teachings into a concise and practical format.

The analytical review demonstrates that Ayurvedic anatomical concepts retain substantial relevance in the modern era. Concepts such as *Marma*, *Srotas*, *Prakriti*, and *Garbha Sharir* continue to contribute to personalized medicine, holistic healthcare, preventive medicine, and interdisciplinary research.

Although certain descriptions require contextual interpretation rather than direct anatomical comparison, the foundational principles of integration, individuality, and functional understanding remain scientifically valuable. Therefore, *Sharir Sthana* should be studied not only as a historical component of Ayurveda but also as a dynamic scientific framework with enduring academic and clinical significance.

Future research should focus on evidence-based interpretation, interdisciplinary correlation studies, and practical clinical applications to further establish the importance of Ayurvedic anatomy in contemporary medical science.

References :

- Sharma PV. *Charaka Samhita*. Chaukhambha Orientalia, Varanasi.
- Shastri Ambikadutta. *Sushruta Samhita*. Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi.
- Murthy KRS. *Ashtanga Hridaya of Vagbhata*. Chaukhambha Krishnadas Academy.
- Chakrapani Datta. *Ayurveda Dipika Commentary on Charaka Samhita*.
- Dalhana. *Nibandha Sangraha Commentary on Sushruta Samhita*.
- Arunadatta. *Sarvanga Sundara Commentary on Ashtanga Hridaya*.
- Classical Ayurvedic Texts: Charaka, Sushruta, and Ashtanga Hridayam.
- Comparative Anatomical Analysis in Ayurveda and Modern Science.
- Srotas Sharir in Ayurveda: A Comprehensive Review.
- Modern Interpretation of Marma Sharir and Surgical Anatomy.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
May 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 90-102

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

ANATOMICAL POINT OF VIEW OF PRANAVAHA SROTAS AND ITS MODERN CORRELATION

Dr. Mani Sharma, Assistant Professor, Samhita Sidhanta Evam Sanskrit Vibhag
Dr. Sangeeta Dev, Associate Professor, Rachana Sharir Department
Mr. Rajendra Prasad, Assistant Professor, Samhita Sidhanta Evam Sanskrit Vibhag
Desh Bhagat university, Mandi Gobindgarh.

Abstract :

Pranavaha Srotas is one of the most essential physiological channel systems described in Ayurveda. It is responsible for the maintenance of life through the regulation of respiration, circulation, vitality, and consciousness. Ancient Ayurvedic Acharyas considered Prana as the supreme sustaining force of the body, and therefore Pranavaha Srotas has been given prime importance among all Srotas. Classical texts describe Hridaya and Mahasrotas or Rasavahi Dhamani as the Moola Sthana of this Srotas, indicating a deep relationship between respiratory and circulatory mechanisms. Modern anatomical and physiological understanding suggests that Pranavaha Srotas can be correlated with the integrated cardiorespiratory system along with neurophysiological control mechanisms. This review article critically analyzes the anatomical concept of Pranavaha Srotas from classical Ayurvedic literature and correlates it with modern anatomy and physiology. The article elaborates the structural, functional, and pathological aspects of Pranavaha Srotas in a detailed and plagiarism-free manner for Ayurveda scholars and researchers.

Keywords : Pranavaha Srotas, Prana, Cardiorespiratory system, Respiratory anatomy, Ayurveda, Srotas Sharira, Modern correlation

Introduction :

Ayurveda, the ancient science of life, explains the human body as a highly organized and coordinated system composed of Dosha, Dhatu, Mala, and Srotas. Among these, the concept of Srotas occupies a unique position because every physiological activity in the body depends upon proper transportation and communication through these channels. The term "Srotas" literally means pathways, channels, or systems through which various substances flow continuously within the body. These

channels are not merely physical tubes but represent both anatomical and physiological pathways responsible for the movement of nutrients, waste products, biological energies, and life-sustaining elements.

According to Ayurvedic philosophy, life cannot exist without the proper functioning of Prana. Prana is regarded as the fundamental vital force that maintains respiration, consciousness, circulation, sensory functions, mental activities, and vitality. The system responsible for carrying and regulating this life force is called Pranavaha Srotas. Ancient scholars gave extraordinary importance to Pranavaha Srotas because disturbance in this channel system directly threatens life.

The concept of Pranavaha Srotas reflects the advanced observational understanding of ancient Ayurvedic scholars regarding respiration and circulation. Even in the absence of modern scientific instruments, they understood that breathing alone is not sufficient for sustaining life. The inhaled air must be distributed throughout the body, and this requires an integrated mechanism involving the heart, blood vessels, lungs, and neural regulation. This holistic concept remarkably resembles the modern understanding of the cardiorespiratory system.

Modern medical science explains that the respiratory system is responsible for gaseous exchange, while the cardiovascular system transports oxygen to tissues and removes carbon dioxide. Simultaneously, the nervous system regulates the rhythm and depth of breathing according to physiological needs. Ayurveda conceptualized these integrated activities under the broader concept of Prana and Pranavaha Srotas.

In the present era, there is growing interest in correlating Ayurvedic principles with modern biomedical sciences. Understanding Pranavaha Srotas through anatomical and physiological perspectives not only enriches Ayurvedic education but also promotes interdisciplinary integration between Ayurveda and contemporary medicine. Therefore, a detailed anatomical and physiological study of Pranavaha Srotas is essential for Ayurveda scholars, clinicians, and researchers.

Concept of Srotas in Ayurveda :

The concept of Srotas forms the basis of Ayurvedic physiology and pathology. Acharya Charaka states that the entire body is composed of Srotas, emphasizing that all biological functions depend upon proper transportation within the body. Srotas are responsible for the circulation of nutrients, body fluids, waste products, and vital energies. They maintain communication between tissues and organs and help in sustaining homeostasis.

Ayurveda describes Srotas as both gross and subtle pathways. Some Srotas can be anatomically visualized, such as blood vessels and gastrointestinal channels, while others represent functional systems that cannot be directly seen. The concept of Srotas is therefore broader than the modern

understanding of anatomical ducts or vessels.

Srotas are continuously involved in absorption, transportation, transformation, and excretion. Any obstruction, injury, dilatation, or dysfunction in these channels results in disease. Thus, Srotas are considered the foundation of both health and disease.

Among all Srotas, Pranavaha Srotas is regarded as one of the most important because it governs the activities necessary for sustaining life itself.

Definition of Pranavaha Srotas :

Pranavaha Srotas refers to the channels responsible for the transportation and regulation of Prana within the body. The word "Prana" is derived from the Sanskrit root "Ana," meaning movement or breathing, with the prefix "Pra" indicating excellence or primary importance. Therefore, Prana signifies the primary life-sustaining force.

In Ayurveda, Prana is not limited only to air or oxygen. It represents the vital energy responsible for maintaining respiration, circulation, sensory perception, consciousness, mental activities, and vitality. Thus, Pranavaha Srotas includes all structures and mechanisms involved in sustaining life.

Ancient Ayurvedic scholars recognized that interruption of Prana leads to immediate death. Hence, Pranavaha Srotas has been considered one of the most critical physiological systems in the body.

Moola Sthana of Pranavaha Srotas :

The Moola Sthana of a Srotas refers to its root structures or primary anatomical bases. Different Acharyas have described slightly different Moola Sthanas for Pranavaha Srotas.

According to Acharya Charaka, the Moola Sthana of Pranavaha Srotas are Hridaya and Mahasrotas. Acharya Sushruta describes Hridaya and Rasavahi Dhamani as the Moola Sthana. These descriptions indicate that Pranavaha Srotas is closely associated with both respiratory and circulatory systems.

The inclusion of Hridaya as the root structure is highly significant. In Ayurveda, Hridaya is not merely a muscular pumping organ. It is regarded as the center of consciousness, circulation, emotions, and vitality. Modern physiology also recognizes the heart as an essential organ for maintaining circulation and tissue oxygenation.

Mahasrotas has been interpreted differently by various scholars. Some consider it as the gastrointestinal tract, while others interpret it as the major thoracic channels involved in respiration. In the context of Pranavaha Srotas, Mahasrotas can be correlated with the respiratory passages and thoracic cavity because respiration is the principal function associated with Prana.

Rasavahi Dhamani are channels carrying Rasa Dhatu throughout the body. Modern interpretation

suggests that these structures resemble blood vessels responsible for transporting oxygenated blood and nutrients. This clearly demonstrates that ancient Ayurvedic scholars understood the close relationship between respiration and circulation.

Anatomical Perspective of Pranavaha Srotas :

Pranavaha Srotas can be anatomically correlated with the structures involved in respiration, gaseous exchange, circulation, and neurophysiological regulation. It should not be restricted only to the respiratory tract because the concept of Prana includes the integrated functioning of multiple organ systems.

The upper respiratory tract forms the initial component of Pranavaha Srotas. Air enters the body through the nose, which Ayurveda considers the gateway of the head. The nasal cavity filters, humidifies, and warms inspired air before it passes into deeper respiratory passages. This function resembles the Ayurvedic concept of preparing and conducting Prana into the body.

The pharynx and larynx serve as conducting pathways for air. The larynx also plays an important role in voice production. Ayurveda describes Prana as essential for speech and vocalization, which corresponds to the modern understanding that airflow through vocal cords produces sound.

The trachea, bronchi, and bronchioles form the conducting portion of the respiratory system. These branching airways distribute inhaled air into the lungs. Their structural organization ensures efficient movement of air to the alveoli where gaseous exchange occurs.

The lungs represent the principal organs of respiration. They contain millions of alveoli that provide a large surface area for oxygen and carbon dioxide exchange. Oxygen diffuses from alveoli into blood capillaries while carbon dioxide diffuses outward for expiration. This mechanism can be correlated with the Ayurvedic description of Prana entering the body and sustaining life.

The heart and blood vessels are equally important in understanding Pranavaha Srotas. Oxygen absorbed in the lungs must be transported to tissues through blood circulation. The heart pumps oxygenated blood throughout the body, thereby maintaining cellular respiration and vitality. Ayurveda includes Hridaya as the root of Pranavaha Srotas, demonstrating recognition of this essential circulatory role.

The nervous system also contributes significantly to Pranavaha Srotas. Respiration is regulated by respiratory centers located in the medulla oblongata and pons. These centers control the rate and depth of breathing according to metabolic demands. Autonomic nervous regulation further coordinates respiratory and cardiovascular activities. Ayurveda similarly associates Prana with mental functions, consciousness, and sensory activities.

Therefore, from an anatomical perspective, Pranavaha Srotas can be understood as an integrated

system involving the respiratory tract, lungs, heart, blood vessels, and nervous control mechanisms.

Physiological Functions of Pranavaha Srotas :

The primary function of Pranavaha Srotas is respiration, which is essential for the maintenance of life. Respiration supplies oxygen to the body and removes carbon dioxide produced during metabolic activities. According to Ayurveda, Prana is the vital force responsible for the process of inhalation (*Shwasa*) and exhalation (*Prashwasa*). It maintains continuous respiratory activity and ensures proper functioning of all organs and tissues. Ancient Ayurvedic scholars considered Prana as the foundation of life because interruption of respiration immediately affects consciousness and survival. Modern physiology explains that respiration includes pulmonary ventilation, gaseous exchange in the lungs, transport of respiratory gases through blood, and cellular respiration occurring in tissues. Oxygen absorbed from the atmosphere enters the alveoli of the lungs, diffuses into blood capillaries, and is transported to body cells where it participates in energy production through aerobic metabolism. Simultaneously, carbon dioxide formed during cellular metabolism is transported back to the lungs for expiration. Thus, the physiological activities described under Pranavaha Srotas closely resemble the integrated respiratory and circulatory functions explained in modern science.

Another important function of Pranavaha Srotas is the maintenance of vitality and consciousness. Ayurveda states that Prana sustains *Chetana* (consciousness), mental alertness, sensory perception, and physical energy. Proper flow of Prana ensures normal functioning of the mind, sense organs, and nervous system. In modern physiology, adequate oxygen supply is essential for neuronal activity and brain function. The brain is highly sensitive to oxygen deficiency, and even a brief interruption in oxygen supply can result in unconsciousness or irreversible neuronal damage. Therefore, the Ayurvedic concept of Prana maintaining consciousness can be correlated with cerebral oxygenation and neural regulation.

Pranavaha Srotas also plays a vital role in circulation and nourishment of tissues. After oxygen enters the lungs, it is transported through blood circulation to every part of the body. Ayurveda describes that Prana circulates throughout the body and supports all physiological activities. This concept resembles the modern understanding of oxygen transport through the cardiovascular system. The heart pumps oxygenated blood through arteries to tissues where oxygen is utilized for cellular metabolism and energy production. Thus, proper functioning of Pranavaha Srotas is necessary for maintaining tissue nutrition, metabolism, and vitality.

Speech and vocalization are also dependent upon Pranavaha Srotas. Ayurveda considers Prana essential for proper speech, communication, and expression. Modern anatomy explains that sound production occurs when expired air passes through the larynx and causes vibration of the vocal cords.

Coordinated respiratory activity is therefore necessary for phonation and speech production. Any disturbance in respiratory airflow affects voice quality and speech.

Another important physiological role of Pranavaha Srotas is regulation of mental and emotional functions. Ayurveda explains that balanced Prana supports emotional stability, concentration, enthusiasm, and psychological well-being. Disturbance of Prana may lead to anxiety, fear, confusion, or mental instability. Modern medical science also recognizes the close relationship between respiration and mental health. Abnormal breathing patterns are often associated with stress, panic disorders, and emotional disturbances. Proper oxygenation and autonomic nervous regulation are essential for maintaining normal psychological functions.

Pranavaha Srotas further contributes to coordination between different organ systems. Respiration is closely linked with cardiovascular activity, neural control, and metabolic regulation. During physical activity, respiratory rate and cardiac output increase simultaneously to meet the oxygen demands of tissues. This integrated physiological response reflects the holistic concept of Pranavaha Srotas described in Ayurveda.

Thus, Pranavaha Srotas performs multidimensional functions including respiration, circulation, maintenance of consciousness, speech production, tissue oxygenation, mental regulation, and preservation of life. Its physiological significance extends far beyond simple breathing and represents a complex integrated system essential for survival and overall health.

Pranavaha Srotodushti (Disorders) Classical Symptoms Shwasa (dyspnea) Kasa (cough) Hikka (hiccup) Atisrishta Shwasa Alpalpa Shwasa Modern Correlation of Disorders Ayurvedic Disorder Modern Correlation Shwasa Bronchial asthma/COPD Kasa Cough syndromes Hikka Hiccup due to diaphragmatic irritation Pranavaha Srotodushti Respiratory insufficiency Hridaya involvement Cardiac failure Detailed Modern Correlation of Pranavaha Srotas Correlation with Respiratory System Structural Similarities Ayurvedic Concept Modern Structure Pranavaha Srotas Respiratory tract Prana Oxygen/vital respiration Nasa Nose Urah Thoracic cavity Shwasa Respiration Correlation with Cardiovascular System Prana circulation cannot occur without: Heart Blood Vessels Hence Pranavaha Srotas has strong correlation with: Cardiac output Pulmonary circulation Tissue oxygen delivery Correlation with Neurophysiology Ayurveda considers Prana responsible for: Consciousness Sensory activity Mental functions Modern science attributes these to: Brainstem respiratory centers Autonomic nervous system Cerebral oxygenation. covert these into paragraphs and elaborate all the points

Pranavaha Srotodushti (Disorders of Pranavaha Srotas) :

Pranavaha Srotodushti refers to the pathological condition resulting from the vitiation or dysfunction of Pranavaha Srotas. Ayurveda explains that improper diet, suppression of natural urges,

excessive physical exertion, emotional stress, environmental pollution, trauma, and imbalance of Doshas can disturb the normal functioning of Pranavaha Srotas. Since this Srotas is responsible for maintaining respiration and vitality, its impairment affects the entire body and may become life-threatening if severe.

Ancient Ayurvedic texts describe several characteristic symptoms associated with Pranavaha Srotodushti. One of the most important symptoms is *Shwasa*, which refers to difficulty in breathing or dyspnea. The patient experiences labored breathing, chest discomfort, and inability to breathe properly. This symptom indicates obstruction or dysfunction in the movement of Prana. In modern medicine, Shwasa can be correlated with respiratory disorders such as bronchial asthma, chronic obstructive pulmonary disease (COPD), bronchitis, and respiratory insufficiency. These conditions interfere with airflow and gaseous exchange, resulting in breathlessness and reduced oxygen supply to tissues.

Another important symptom is *Kasa*, which means cough. Ayurveda considers cough as a defensive reflex occurring due to irritation or disturbance in Pranavaha Srotas. Persistent coughing may indicate accumulation of Doshas, infection, or irritation in respiratory passages. Modern science correlates Kasa with acute and chronic cough syndromes caused by respiratory infections, allergies, inflammation, asthma, tuberculosis, or chronic pulmonary diseases. Cough acts as a protective mechanism to clear mucus, foreign particles, or secretions from the respiratory tract.

Hikka, or hiccup, is another disorder mentioned under Pranavaha Srotodushti. Ayurveda explains that abnormal movement of Vata in the thoracic region causes repeated involuntary contractions resulting in hiccups. Modern medicine correlates Hikka with spasmodic contractions of the diaphragm and irritation of the phrenic or vagus nerves. Persistent hiccups may occur due to gastrointestinal disorders, neurological disturbances, respiratory diseases, or diaphragmatic irritation.

The term *Atisrishta Shwasa* refers to excessive or rapid breathing. The patient experiences increased respiratory rate and difficulty maintaining normal breathing rhythm. This condition may develop due to anxiety, fever, severe respiratory diseases, cardiac disorders, or metabolic disturbances. In modern physiology, it can be correlated with tachypnea or hyperventilation, where the respiratory system attempts to compensate for oxygen deficiency or metabolic imbalance.

Alpalpa Shwasa refers to shallow or inadequate breathing. In this condition, respiration becomes weak, insufficient, and ineffective in supplying adequate oxygen to tissues. Modern correlation includes hypoventilation, respiratory depression, restrictive lung diseases, or advanced respiratory failure. Shallow breathing reduces oxygen intake and may result in fatigue, cyanosis, and impaired organ function.

Pranavaha Srotodushti not only affects respiration but also influences the cardiovascular system because circulation of oxygenated blood depends upon proper respiratory activity. Severe dysfunction may involve Hridaya (heart), leading to weakness, reduced circulation, and cardiac complications. Modern medicine recognizes that chronic respiratory diseases often place excessive strain on the heart and may eventually cause cardiac failure, pulmonary hypertension, or cor pulmonale. Thus, the Ayurvedic description of Hridaya involvement demonstrates an advanced understanding of cardiorespiratory interdependence.

Detailed Modern Correlation of Pranavaha Srotas

Correlation with Respiratory System :

Pranavaha Srotas shows a strong anatomical and physiological correlation with the modern respiratory system. The respiratory system includes structures responsible for conduction of air, gaseous exchange, and maintenance of oxygen supply to the body. Ayurveda describes Pranavaha Srotas as the channel system responsible for carrying Prana, which can be correlated with the movement of inspired air and oxygen within the body.

The term *Prana* itself can be correlated with oxygen and vital respiration because oxygen is indispensable for survival and cellular metabolism. Just as Ayurveda describes Prana as the sustaining force of life, modern physiology recognizes oxygen as essential for ATP production and energy metabolism within cells.

Ayurveda considers *Nasa* (nose) as the gateway for Prana. Modern anatomy similarly recognizes the nose as the primary entrance for air into the respiratory tract. The nasal cavity filters dust particles, humidifies inspired air, and regulates air temperature before it enters deeper respiratory passages. This protective and preparatory function corresponds closely with Ayurvedic understanding.

The term *Urah* mentioned in Ayurveda corresponds to the thoracic cavity. The thoracic cavity houses important respiratory organs including the lungs, bronchi, pleura, and associated structures. Expansion and contraction of the thoracic cage during breathing facilitate pulmonary ventilation. Ayurveda recognized the thoracic region as the primary site of respiratory activity and movement of Prana.

Shwasa, described in Ayurveda as the process of breathing, directly corresponds to respiration in modern physiology. Respiration includes inspiration, expiration, gaseous exchange, and transport of respiratory gases. These activities collectively maintain oxygen supply and carbon dioxide elimination essential for life.

Thus, structurally and functionally, Pranavaha Srotas closely resembles the respiratory system described in contemporary anatomy and physiology.

Correlation with Cardiovascular System :

Pranavaha Srotas also has a strong relationship with the cardiovascular system because respiration alone cannot sustain life without circulation. Oxygen absorbed in the lungs must be transported through blood to all tissues of the body. Ayurveda recognized this intimate relationship by including Hridaya and Rasavahi Dhamani in the Moola Sthana of Pranavaha Srotas.

The heart plays a central role in maintaining circulation of oxygenated blood. After gaseous exchange occurs in the lungs, oxygen-rich blood returns to the left side of the heart and is pumped throughout the body through arteries. This process ensures continuous delivery of oxygen and nutrients to tissues. Ayurveda describes the circulation of Prana throughout the body, which can be correlated with systemic blood circulation carrying oxygen.

Blood vessels also form an essential component of Pranavaha Srotas. Arteries transport oxygenated blood to tissues, while veins return deoxygenated blood back to the heart and lungs. Pulmonary circulation specifically connects the respiratory and cardiovascular systems by transporting blood between the heart and lungs for oxygenation.

Modern physiology explains that proper tissue oxygen delivery depends upon adequate cardiac output, healthy blood vessels, and efficient pulmonary circulation. Similarly, Ayurveda considers uninterrupted flow of Prana essential for sustaining vitality and physiological functions. Therefore, Pranavaha Srotas can be understood as an integrated cardiorespiratory system rather than merely the respiratory tract alone.

Correlation with Neurophysiology :

Ayurveda attributes several higher physiological functions to Prana, including consciousness, sensory perception, mental activity, and coordination of bodily functions. This indicates that Pranavaha Srotas also has a close relationship with the nervous system.

Modern neurophysiology explains that respiration is regulated by respiratory centers located in the brainstem, particularly in the medulla oblongata and pons. These centers continuously monitor blood oxygen and carbon dioxide levels and regulate the rate and depth of breathing according to the metabolic requirements of the body. This automatic regulation resembles the Ayurvedic concept of Prana governing involuntary life-sustaining activities.

The autonomic nervous system also plays a major role in coordinating respiratory and cardiovascular functions. Sympathetic and parasympathetic nerves regulate heart rate, bronchial diameter, respiratory rhythm, and vascular tone. Ayurveda similarly explains that balanced Prana maintains harmony between bodily functions and mental stability.

Ayurveda considers Prana essential for consciousness and sensory activity. Modern science

correlates these functions with adequate cerebral oxygenation and neuronal activity. The brain requires a constant oxygen supply for normal functioning, and interruption of oxygen delivery rapidly affects consciousness, cognition, and sensory perception. Severe hypoxia may lead to confusion, unconsciousness, or death.

Mental functions such as concentration, emotional balance, alertness, and memory are also influenced by proper oxygen supply and neural regulation. Ayurveda explains that disturbance of Prana can produce anxiety, fear, confusion, and mental instability. Modern medicine similarly recognizes the association between respiratory dysfunction, oxygen deficiency, and neuropsychological disturbances.

Thus, the neurophysiological correlation of Pranavaha Srotas further supports the view that it is a multidimensional system integrating respiration, circulation, neural regulation, and consciousness.

Discussion :

Pranavaha Srotas represents one of the most important physiological systems described in Ayurveda because it is directly associated with the maintenance of life, respiration, vitality, and consciousness. The classical Ayurvedic texts have described Prana as the supreme sustaining force of the body, and therefore the channels responsible for its transportation and regulation have been given immense importance. The present understanding of Pranavaha Srotas reveals that ancient Ayurvedic scholars possessed a remarkably advanced and holistic knowledge of human physiology long before the development of modern medical science.

The concept of Pranavaha Srotas cannot be restricted only to the respiratory tract because the functions attributed to it are multidimensional. Classical descriptions include respiration, maintenance of consciousness, speech production, mental stability, sensory perception, and circulation of life force throughout the body. Such extensive physiological responsibilities indicate that Pranavaha Srotas is a comprehensive functional system integrating respiratory, cardiovascular, neurological, and metabolic activities. This broad concept closely resembles the modern understanding of the integrated cardiorespiratory and neurophysiological systems.

The description of Hridaya as the Moola Sthana of Pranavaha Srotas is particularly significant from an anatomical perspective. In Ayurveda, Hridaya is not merely considered a muscular organ pumping blood, but also the seat of consciousness, emotions, intellect, and vitality. Modern physiology also recognizes the central importance of the heart in maintaining circulation and oxygen delivery to tissues. Oxygen absorbed in the lungs cannot sustain life unless it is efficiently transported through blood circulation. This demonstrates that Ayurvedic scholars understood the intimate relationship between respiration and circulation centuries ago.

Similarly, the inclusion of Mahasrotas and Rasavahi Dhamani further supports the integrated interpretation of Pranavaha Srotas. Rasavahi Dhamani can be correlated with blood vessels responsible for transporting oxygenated blood and nutrients throughout the body. This suggests that Pranavaha Srotas includes not only air-conducting passages but also circulatory pathways essential for tissue oxygenation and nourishment.

The physiological functions of Pranavaha Srotas described in Ayurveda show remarkable similarity with modern respiratory physiology. Ayurveda explains that Prana governs inhalation and exhalation, while modern science describes pulmonary ventilation as the process by which oxygen enters the lungs and carbon dioxide is expelled. The concept of Prana maintaining vitality and consciousness can be correlated with the essential role of oxygen in cellular metabolism and neuronal function. Modern neurophysiology confirms that adequate oxygen supply is indispensable for brain activity, sensory perception, and maintenance of consciousness. Even temporary interruption of oxygen supply can produce severe neurological damage or death, which validates the Ayurvedic view that Prana is essential for life.

The correlation between Pranavaha Srotas and neurophysiology is another remarkable aspect. Ayurveda associates Prana with mental functions, emotional balance, sensory activities, and consciousness. Modern medicine explains these activities through the coordinated action of the brain, autonomic nervous system, and cerebral oxygenation. Respiratory centers located in the medulla oblongata and pons continuously regulate breathing according to metabolic demands. Simultaneously, the autonomic nervous system coordinates cardiovascular and respiratory responses. These modern concepts strongly support the Ayurvedic understanding of Prana as a regulatory force controlling involuntary physiological activities.

The pathological manifestations of Pranavaha Srotodushti also demonstrate significant similarity with modern respiratory and cardiovascular disorders. Symptoms such as Shwasa, Kasa, Hikka, Atisrishta Shwasa, and Alpalpa Shwasa clearly indicate respiratory dysfunction. Modern correlation with bronchial asthma, chronic obstructive pulmonary disease, respiratory insufficiency, cough syndromes, and diaphragmatic irritation further validates the clinical observations made by ancient Ayurvedic scholars. Moreover, Ayurveda recognizes that severe dysfunction of Pranavaha Srotas can affect Hridaya and produce life-threatening complications, which corresponds to modern understanding of cardiac involvement in chronic respiratory diseases.

One of the most important aspects of Ayurveda is its holistic approach toward human physiology. Unlike modern medicine, which often studies systems separately, Ayurveda views the body as an interconnected functional unit. The concept of Pranavaha Srotas beautifully illustrates this holistic

philosophy because it integrates breathing, circulation, neural regulation, mental functions, and vitality within a single framework. This integrated understanding is highly relevant even today because modern biomedical science increasingly recognizes the interdependence of organ systems in maintaining health.

The modern correlation of Pranavaha Srotas with the cardiorespiratory and neurophysiological systems provides a valuable bridge between Ayurveda and contemporary medicine. Such correlations help in scientific interpretation of classical Ayurvedic concepts and encourage interdisciplinary research. They also improve the academic understanding of Ayurveda among students and researchers while promoting integrative approaches in healthcare.

Thus, the study of Pranavaha Srotas demonstrates that Ayurvedic physiology is not merely philosophical but is deeply rooted in careful clinical observation and functional understanding of the human body. The ancient concept of Prana continues to hold great significance in explaining the physiological basis of life and health.

Conclusion :

Pranavaha Srotas is one of the most essential and life-sustaining physiological systems described in Ayurveda. It is responsible for the regulation of respiration, circulation of Prana, maintenance of vitality, consciousness, sensory activities, and overall physiological coordination. Classical Ayurvedic texts emphasize the importance of Pranavaha Srotas because proper functioning of this system is indispensable for survival.

The anatomical and physiological analysis of Pranavaha Srotas clearly indicates that it cannot be limited only to the respiratory tract. The inclusion of Hridaya, Mahasrotas, and Rasavahi Dhamani as its root structures demonstrates that ancient Ayurvedic scholars understood the close relationship between respiration and circulation. Modern anatomical correlation strongly suggests that Pranavaha Srotas represents the integrated cardiorespiratory system along with neurophysiological regulatory mechanisms.

Structures such as the nose, respiratory passages, lungs, heart, blood vessels, thoracic cavity, and respiratory control centers collectively contribute to the functioning of Pranavaha Srotas. Physiological activities including pulmonary ventilation, gaseous exchange, oxygen transport, tissue oxygenation, autonomic regulation, and maintenance of consciousness closely resemble the Ayurvedic functions attributed to Prana.

The disorders described under Pranavaha Srotodushti also show remarkable similarity with modern respiratory and cardiovascular diseases such as bronchial asthma, chronic obstructive pulmonary disease, respiratory insufficiency, and cardiac complications. This demonstrates the

accuracy of Ayurvedic clinical observations and their relevance even in contemporary medical understanding.

The concept of Pranavaha Srotas reflects the holistic and scientific nature of Ayurveda. Ancient scholars recognized the interdependence of respiration, circulation, neural regulation, and mental functions centuries before the development of modern physiology. Their integrated approach provides valuable insight into the functional unity of the human body.

Modern correlation of Pranavaha Srotas not only enriches the academic understanding of Ayurveda but also encourages interdisciplinary dialogue between traditional and modern medical sciences. Further scientific research on Prana and Pranavaha Srotas may contribute significantly to the development of integrative healthcare approaches and deeper understanding of human physiology.

Therefore, Pranavaha Srotas should be understood as a multidimensional physiological system responsible for sustaining life through coordinated respiratory, cardiovascular, neurological, and metabolic activities. Its study remains highly relevant for Ayurveda scholars, clinicians, and researchers in the modern era.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 103-111

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

A CRITICAL REVIEW ON SADYAH PRANHARA MARMA : CLASSICAL CONCEPTS, ANATOMICAL PERSPECTIVE AND CLINICAL SIGNIFICANCE

Dr. Sunayana Mahajan, Assistant Professor, Rachana Sharir Department

Mr. Rajendra Prasad, Assistant Professor, Samhita Sidhanta Evam Sanskrit Vibhag

Dr. Sangeeta Dev, Associate Professor, Rachana Sharir Department

Desh Bhagat University, Mandi Gobindgarh.

Abstract :

Marma Sharir is one of the most important and unique branches of Ayurveda that deals with the vital points of the body. These points are considered seats of life (*Prana*) where structures such as muscles, vessels, ligaments, bones, and joints meet together. Injury to these vital points produces serious consequences depending upon the severity and location of trauma. Among all types of Marma, *Sadyah Pranahara Marma* are regarded as the most dangerous because injury to these points causes immediate or very rapid death. Ancient Ayurvedic scholars emphasized their surgical, anatomical, military, and therapeutic importance. These Marma are mainly located near vital organs such as the brain, heart, urinary bladder, and major vascular structures. Modern anatomical correlation suggests that these Marma correspond to highly sensitive areas containing major nerves, blood vessels, vital organs, and neurovascular centers essential for survival. This review article critically analyzes the classical concept, anatomical basis, modern correlation, and clinical significance of Sadyah Pranahara Marma in a detailed and comprehensive manner.

Keywords : Marma, Sadyah Pranahara Marma, Marma Sharir, Vital points, Ayurveda anatomy, Surgical anatomy, Modern correlation

Introduction :

Ayurveda is not only a science of medicine but also a complete science of life that explains the structural and functional aspects of the human body in great detail. Among the various branches of Ayurveda, *Marma Sharir* occupies a special position because it deals with the vital points of the body that are directly related to the maintenance of life. The science of Marma was extensively described

by Acharya Sushruta, who is regarded as the father of surgery. He emphasized that proper knowledge of Marma is essential for surgeons because injury to these points during surgical procedures can produce severe disability or death.

The term “Marma” is derived from the Sanskrit root “Mri,” which means death or destruction. Marma are therefore considered highly sensitive and vulnerable anatomical locations where injury can result in pain, deformity, dysfunction, or death. According to Ayurveda, Marma are the seats of *Prana*, and disturbance of Prana at these sites affects the entire body.

Acharya Sushruta described 107 Marma in the human body and classified them according to structure, location, size, and prognosis after injury. Prognostically, Marma are divided into five categories :

- Sadyah Pranahara Marma
- Kalantara Pranahara Marma
- Vishalyaghna Marma
- Vaikalyakara Marma
- Rujakara Marma

Among these, *Sadyah Pranahara Marma* are considered the most dangerous because injury to these points causes immediate or rapid death, usually within a short period. The term “Sadyah” means immediate, while “Pranahara” means loss of life. Thus, Sadyah Pranahara Marma are those vital points whose injury results in instantaneous or very early death due to severe damage to vital structures.

Ancient Ayurvedic scholars recognized the importance of these Marma in warfare, surgery, and trauma management. Soldiers were trained to protect these areas during combat because injury to these points could prove fatal. Similarly, surgeons were instructed to avoid accidental trauma to these Marma during operative procedures.

Modern anatomy and trauma surgery also recognize several critical anatomical regions where injury can rapidly cause death due to hemorrhage, brain injury, cardiac arrest, respiratory failure, or neurovascular collapse. This striking similarity between classical Ayurvedic concepts and modern medical understanding highlights the scientific and practical significance of Sadyah Pranahara Marma. The present review article aims to critically evaluate the classical descriptions, anatomical basis, modern correlation, and clinical significance of Sadyah Pranahara Marma in a comprehensive and analytical manner.

Concept of Marma in Ayurveda :

Marma are specific anatomical locations where structures such as *Mamsa* (muscle), *Sira*

(blood vessels), *Snayu* (ligaments/tendons), *Asthi* (bones), and *Sandhi* (joints) meet together. These sites are considered highly vital because they contain concentrated Pranic energy and perform essential physiological functions.

According to Acharya Sushruta :

"Mamsa Sira Snayu Asthi Sandhinam Sannipatah Marma"

This means that Marma are the meeting points of muscles, vessels, ligaments, bones, and joints.

Marma are not merely structural points but functional centers essential for maintaining life and physiological coordination. Trauma to these regions disrupts Prana and leads to serious pathological consequences.

The concept of Marma demonstrates the advanced anatomical and surgical understanding of ancient Ayurvedic scholars. Even without modern dissection techniques, they accurately identified vulnerable areas where injury could produce severe morbidity or mortality.

Classification of Marma :

Ayurveda classifies 107 Marma according to different criteria such as structure, location, and effect of injury.

According to prognosis after injury, Marma are classified into :

- Sadyah Pranahara Marma
- Kalantara Pranahara Marma
- Vishalyaghna Marma
- Vaikalyakara Marma
- Rujakara Marma

Among these, Sadyah Pranahara Marma are considered the most critical because trauma to these points results in rapid death due to destruction of vital organs and physiological systems.

Sadyah Pranahara Marma :

Sadyah Pranahara Marma are the vital points where injury causes immediate or very rapid death. According to Acharya Sushruta, there are 19 Sadyah Pranahara Marma in the body.

These Marma are mainly situated in regions containing :

- Brain
- Heart
- Major blood vessels
- Respiratory passages
- Urinary bladder

- Vital neurovascular structures

The rapid fatality associated with these Marma indicates their close relationship with organs essential for sustaining life.

Names and Locations of Sadyah Pranahara Marma :

The important Sadyah Pranahara Marma include :

- Shringataka
- Adhipati
- Shankha
- Guda
- Hridaya
- Basti
- Nabhi
- Matruka
- Sthapani

These Marma are distributed mainly in the head, neck, thorax, abdomen, and pelvic regions where vital organs and neurovascular structures are concentrated.

Anatomical Perspective of Sadyah Pranahara Marma

Shringataka Marma :

Shringataka Marma is situated in the cranial region and is associated with structures supplying the nose, ears, eyes, and tongue. Modern correlation suggests that this Marma corresponds to the cavernous sinus region or central cranial neurovascular junctions.

Injury to this area may damage major cranial nerves and blood vessels, resulting in severe hemorrhage, neurological collapse, and death.

Adhipati Marma :

Adhipati Marma is located at the superior aspect of the skull near the cranial vault. It can be correlated with the vertex region containing major venous sinuses and meningeal structures.

Trauma to this region may produce intracranial hemorrhage, brain injury, increased intracranial pressure, and rapid death.

Shankha Marma :

Shankha Marma is situated in the temporal region of the skull. The temporal bone is relatively thin and overlies important vascular structures such as the middle meningeal artery.

In modern trauma surgery, injury to the temporal region can cause extradural hemorrhage, which may rapidly become fatal if untreated. This strongly supports the Ayurvedic classification of

Shankha as Sadyah Pranahara Marma.

Hridaya Marma :

Hridaya Marma is situated in the cardiac region and represents one of the most vital Marma in the body. Ayurveda considers Hridaya as the seat of consciousness, circulation, and Prana.

Modern anatomy correlates Hridaya Marma with the heart, great vessels, coronary circulation, and cardiac conduction system. Injury to this region may cause massive hemorrhage, cardiac tamponade, arrhythmias, or cardiac arrest leading to immediate death.

Nabhi Marma :

Nabhi Marma is situated at the umbilical region and is considered an important center of circulation and metabolism.

Modern correlation includes the mesenteric vascular plexus, autonomic nerve plexuses, and abdominal viscera. Severe trauma to this area may result in hemorrhage, shock, intestinal injury, and peritonitis.

Basti Marma :

Basti Marma corresponds to the urinary bladder and surrounding pelvic structures.

Injury to the bladder region may produce urine leakage, pelvic sepsis, hemorrhage, and shock. In ancient times, absence of surgical intervention made such injuries rapidly fatal.

Matruka Marma :

Matruka Marma are situated in the neck region and correspond to major cervical vessels and nerves.

Modern anatomy correlates them with :

- Carotid arteries
- Jugular veins
- Vagus nerve
- Cervical sympathetic chain

Trauma to these structures can produce severe hemorrhage, cerebral ischemia, respiratory arrest, and death.

Sthapani Marma :

Sthapani Marma is located between the eyebrows and corresponds to frontal neurovascular structures.

Though smaller in size, deep penetrating injury may involve frontal sinus, cranial cavity, or brain tissue leading to fatal complications.

Clinical Importance of Sadyah Pranahara Marma :

The concept of Sadyah Pranahara Marma has immense clinical importance in surgery, traumatology, sports medicine, military science, and Marma therapy.

Ancient surgeons were advised to avoid injury to these Marma during operative procedures because damage could produce irreversible complications. Even today, surgeons exercise extreme caution while operating near the brain, heart, neck vessels, and pelvic organs.

The concept is also important in trauma management because many Sadyah Pranahara Marma correspond to “fatal zones” recognized in emergency medicine. Injury to these areas requires immediate medical intervention.

In martial arts and military applications, knowledge of Marma was used for self-defense and combat techniques. Simultaneously, protection of these points was considered essential for survival.

Modern Marma therapy also utilizes selected Marma points for therapeutic stimulation, pain management, and restoration of physiological balance.

Modern Correlation of Sadyah Pranahara Marma :

Modern medical science strongly supports the practical relevance of Sadyah Pranahara Marma.

These Marma correspond to anatomical regions containing :

- Vital organs
- Major arteries and veins
- Cranial structures
- Cardiac centers
- Respiratory pathways
- Neurovascular plexuses

Trauma to these regions can rapidly produce :

- Hemorrhagic shock
- Respiratory failure
- Brain herniation
- Cardiac arrest
- Neurogenic shock
- Multiorgan failure

Thus, the Ayurvedic concept reflects highly advanced clinical observation and anatomical understanding.

Discussion :

The concept of Sadyah Pranahara Marma represents one of the most remarkable contributions

of Ayurveda to anatomical and surgical sciences. Ancient Ayurvedic scholars recognized that certain regions of the body are exceptionally vulnerable because they contain structures essential for sustaining life. Even in the absence of modern imaging techniques and advanced anatomical tools, they accurately identified areas where injury could rapidly produce death. This demonstrates the depth of clinical observation and practical experience possessed by ancient surgeons and physicians.

The classification of Marma according to prognosis after injury reflects a highly systematic understanding of trauma and its consequences. Among all categories, Sadyah Pranahara Marma occupy the highest importance because they are directly associated with immediate fatality. The term itself indicates rapid destruction of Prana, which can be correlated with sudden failure of vital physiological systems such as circulation, respiration, and neural control.

Most Sadyah Pranahara Marma are located in anatomically critical regions such as the head, neck, thorax, abdomen, and pelvis. These areas contain major organs including the brain, heart, lungs, bladder, and great blood vessels. Modern trauma surgery confirms that injuries to these regions are associated with very high mortality rates due to hemorrhage, organ rupture, respiratory arrest, or neurological collapse.

The description of Shankha Marma is particularly significant because the temporal region of the skull overlies the middle meningeal artery. Trauma to this area can produce extradural hematoma, a condition that may rapidly become fatal without timely intervention. Similarly, injury to Hridaya Marma corresponds to cardiac trauma causing hemorrhage, arrhythmias, or cardiac arrest. These correlations demonstrate the scientific accuracy of Ayurvedic observations.

Matruka Marma located in the neck region also shows excellent correlation with modern anatomy. The neck contains carotid arteries, jugular veins, vagus nerve, trachea, and cervical sympathetic structures. Injury to these components can rapidly compromise cerebral circulation and respiration, resulting in immediate death. This explains why Ayurveda categorized these points as Sadyah Pranahara.

Another important aspect is the holistic interpretation of Prana in Ayurveda. Prana does not merely signify breathing but represents the integrated life force responsible for consciousness, circulation, sensory activity, and physiological coordination. Therefore, injury to Sadyah Pranahara Marma disrupts multiple systems simultaneously, producing rapid systemic collapse.

The concept also reflects the advanced surgical awareness of Acharya Sushruta. During ancient surgical procedures, knowledge of Marma was essential to prevent accidental injury to vital structures. This principle remains equally relevant in modern surgery where careful preservation of neurovascular and vital organ structures is critical for patient survival.

The relevance of Sadyah Pranahara Marma extends beyond surgery into modern traumatology, emergency medicine, sports injuries, and military science. Modern medicine recognizes several "fatal zones" of the body where trauma requires immediate intervention. These regions closely correspond to the Marma described in Ayurveda.

Thus, Sadyah Pranahara Marma represent a profound anatomical and clinical concept that integrates structural knowledge with physiological and prognostic significance. Their study not only enriches Ayurvedic anatomy but also provides valuable insight into trauma care and integrative medical sciences.

Conclusion :

Sadyah Pranahara Marma are the most vital and clinically significant Marma described in Ayurveda. These Marma are situated in anatomically sensitive regions containing essential organs, major blood vessels, nerves, and neurovascular centers responsible for sustaining life. Injury to these points causes immediate or rapid death due to severe disruption of respiration, circulation, consciousness, and other vital physiological functions.

The classical descriptions provided by Acharya Sushruta demonstrate an exceptionally advanced understanding of anatomy, trauma, and surgical principles. The correlation of Sadyah Pranahara Marma with modern anatomical structures such as the brain, heart, carotid vessels, cranial sinuses, thoracic organs, and pelvic viscera strongly validates the scientific basis of Ayurvedic observations.

Modern trauma surgery and emergency medicine also recognize that injuries to these critical anatomical regions are associated with very high mortality. This close similarity between classical Ayurvedic concepts and modern medical understanding highlights the timeless relevance of Marma Sharir.

The concept of Sadyah Pranahara Marma is highly important in surgery, traumatology, military medicine, sports science, and Marma therapy. Knowledge of these vital points helps in preventing accidental injuries, understanding trauma prognosis, and developing safer surgical approaches.

Thus, Sadyah Pranahara Marma represent a unique integration of anatomy, physiology, surgery, and clinical medicine within Ayurveda. Their study provides valuable insight into the holistic understanding of the human body and continues to remain highly relevant in modern integrative medical research and practice.

References :

- Sushruta Samhita, Sharira Sthana, Chapter 6.
- Charaka Samhita.

- Ashtanga Hridaya.
- Ambikadutta Shastri. Sushruta Samhita. Chaukhambha Sanskrit Sansthan.
- Sharma PV. Sushruta Samhita. Chaukhambha Vishvabharati.
- Gray's Anatomy. Elsevier Publication.
- B.D. Chaurasia. Human Anatomy. CBS Publishers and Distributors.
- Guyton AC, Hall JE. Textbook of Medical Physiology. Elsevier Publication.
- Davidson's Principles and Practice of Medicine. Elsevier Publication.
- Ganong WF. Review of Medical Physiology. McGraw Hill Education.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 112-119

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन में भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता

आदित्य राज
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार।

सारांश (Abstract)

21वीं सदी में शिक्षा व्यवस्था वैश्वीकरण, डिजिटलीकरण, तकनीकी प्रगति तथा ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था के प्रभाव से तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। वर्तमान समय में अकादमिक प्रबंधन का उद्देश्य केवल प्रशासनिक दक्षता और व्यावसायिक कौशल तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि यह नैतिक मूल्यों, समावेशिता, नवाचार, मानवीय संवेदनाओं तथा सतत विकास को भी समान रूप से महत्व देता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में बढ़ती प्रतिस्पर्धा, मानसिक तनाव, सांस्कृतिक विघटन तथा नैतिक मूल्यों के ह्रास जैसी चुनौतियों ने वैकल्पिक एवं मूल्यपरक शिक्षा दृष्टि की आवश्यकता को और अधिक प्रासंगिक बना दिया है। ऐसे परिवर्तित शैक्षिक परिदृश्य में भारतीय ज्ञान प्रणाली एक समग्र, संतुलित एवं मानवीय शिक्षा दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा वेद, उपनिषद, योग, आयुर्वेद, दर्शन, गणित, ज्योतिष तथा गुरु–शिष्य परंपरा जैसे विविध ज्ञान स्रोतों पर आधारित है। यह प्रणाली व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास पर समान रूप से बल देती है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य 21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन में भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता तथा उपयोगिता का विश्लेषण करना है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली शिक्षा को केवल रोजगारोन्मुखी न बनाकर उसे समाजोपयोगी, मूल्याधारित तथा मानवीय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपरा, मातृभाषा, बहुविषयक शिक्षा, योग तथा नैतिक शिक्षण को विशेष महत्व प्रदान किया गया है, जो आधुनिक शिक्षा को अधिक समावेशी और संस्कृति–सापेक्ष बनाने का प्रयास है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली 21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन को अधिक नैतिक, संतुलित, समावेशी एवं सतत विकासोन्मुख बनाने की क्षमता रखती है। आधुनिक शिक्षा और भारतीय ज्ञान परंपरा के समन्वय से एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण संभव है, जो वैश्विक प्रतिस्पर्धा के साथ–साथ मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक चेतना को भी सुदृढ़ कर सके।

मुख्य शब्द : भारतीय ज्ञान प्रणाली, अकादमिक प्रबंधन, नई शिक्षा नीति 2020, बहुविषयक शिक्षा, सतत विकास।

प्रस्तावना :

21वीं सदी ज्ञान, सूचना, तकनीक और वैश्वीकरण के तीव्र विस्तार का युग है, जिसमें शिक्षा का स्वरूप मूल रूप से परिवर्तित हो चुका है। वर्तमान समय में शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्त करने या रोजगार सुनिश्चित करने का साधन नहीं रह गई है, बल्कि यह व्यक्ति के संपूर्ण विकास बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक का आधार बन चुकी है। इस परिवर्तन ने अकादमिक प्रबंधन को भी एक अत्यंत जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया बना दिया है, जिसमें संस्थागत प्रशासन, गुणवत्ता आश्वासन, शोध प्रबंधन, डिजिटल शिक्षण, नवाचार तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा जैसे तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में तकनीकी दक्षता और रोजगारपरक कौशल पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप कई बार शिक्षा का मानवीय और मूल्यपरक पक्ष कमजोर होता दिखाई देता है। विद्यार्थियों में बढ़ता मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा का दबाव, नैतिक मूल्यों में गिरावट तथा सामाजिक संवेदनशीलता की कमी जैसी समस्याएँ यह संकेत देती हैं कि वर्तमान शिक्षा मॉडल में संतुलन की आवश्यकता है।

इसी संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक एवं पूरक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जो शिक्षा को केवल व्यावसायिक प्रशिक्षण तक सीमित न रखकर उसे जीवन निर्माण की समग्र प्रक्रिया के रूप में देखती है। भारतीय परंपरा में शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण, आत्मानुशासन, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना रहा है। यह दृष्टिकोण आधुनिक अकादमिक प्रबंधन को अधिक संतुलित और मानवीय आधार प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषता इसकी समग्र दृष्टि में निहित है, जिसमें ज्ञान को खंडित न मानकर एक परस्पर जुड़ी हुई प्रणाली के रूप में देखा जाता है। यही कारण है कि यह प्रणाली 21वीं सदी की शिक्षा व्यवस्था के लिए प्रासंगिक बन जाती है और आधुनिक अकादमिक प्रबंधन को नई दिशा प्रदान कर सकती है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली की अवधारणा :

भारतीय ज्ञान प्रणाली एक अत्यंत प्राचीन, समृद्ध और बहुआयामी ज्ञान परंपरा है, जिसका विकास हजारों वर्षों में भारतीय उपमहाद्वीप में हुआ। यह केवल धार्मिक या दार्शनिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें विज्ञान, गणित, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, भाषा, साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, पर्यावरण अध्ययन तथा सामाजिक जीवन से संबंधित व्यापक ज्ञान शामिल है। भारतीय ज्ञान प्रणाली की मूल विशेषता इसकी "समग्रता" है, जिसमें जीवन, समाज और प्रकृति को एक दूसरे से जुड़ा हुआ माना जाता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान को केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं माना गया, बल्कि उसे जीवन को सही दिशा देने वाला साधन माना गया है। यहाँ ज्ञान का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि नैतिक उत्थान और आत्मिक उन्नति भी है। इसी कारण भारतीय शिक्षा परंपरा में "विद्या" को शक्ति और "अविद्या" को अज्ञान का प्रतीक माना गया है। उपनिषदों में ज्ञान को ब्रह्म तक पहुँचने का माध्यम बताया गया है, जो यह दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली आध्यात्मिक और भौतिक दोनों पक्षों को साथ लेकर चलती है।[1]

भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका "गुरु–शिष्य परंपरा" पर आधारित होना है। इस परंपरा में शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि व्यवहारिक अनुभव, अनुशासन और जीवन

मूल्यों के माध्यम से दी जाती थी। गुरु को ज्ञान का जीवंत स्रोत माना जाता था, जो शिष्य के व्यक्तित्व निर्माण में मार्गदर्शक की भूमिका निभाता था। यह व्यवस्था शिक्षा को व्यक्तिगत, अनुभवात्मक और नैतिक बनाती थी। इसके अतिरिक्त, भारतीय ज्ञान प्रणाली में विभिन्न विषयों का अंतःसंबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, प्राचीन भारत में गणित और खगोल विज्ञान, आयुर्वेद और रसायन विज्ञान, तथा दर्शन और राजनीति शास्त्र एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए थे। आर्यभट्ट, वराहमिहिर और सुश्रुत जैसे विद्वानों के कार्य यह प्रमाणित करते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा वैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यंत विकसित थी।[2]

भारतीय ज्ञान प्रणाली में प्रकृति के साथ सामंजस्य को विशेष महत्व दिया गया है। वेदों और उपनिषदों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पवित्र तत्व माना गया है। यह दृष्टिकोण आधुनिक समय के पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की अवधारणा से गहराई से मेल खाता है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है।[3] आज 21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन में जब शिक्षा प्रणाली वैश्वीकरण, तकनीकी परिवर्तन और प्रतिस्पर्धा के दबाव से गुजर रही है, तब भारतीय ज्ञान प्रणाली शिक्षा को नैतिक, सांस्कृतिक और मानवीय आधार प्रदान करती है। यह छात्रों में आलोचनात्मक सोच, रचनात्मकता और जीवन मूल्यों के विकास में सहायक है।

21वीं सदी का अकादमिक प्रबंधन :

21वीं सदी का अकादमिक प्रबंधन शिक्षा के क्षेत्र में एक गतिशील, तकनीकी और बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में उभर कर सामने आया है। यह केवल संस्थानों के प्रशासन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें शिक्षण–प्रशिक्षण की गुणवत्ता, शोध एवं नवाचार, डिजिटल तकनीक का उपयोग, मानव संसाधन प्रबंधन, छात्र–केंद्रित नीतियाँ तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था का विकास शामिल है। वर्तमान समय में अकादमिक प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य शिक्षा को अधिक प्रभावी, समावेशी और रोजगारोन्मुख बनाना है। 21वीं सदी में अकादमिक प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू "डिजिटल परिवर्तन" है। ऑनलाइन शिक्षा, ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म, स्मार्ट क्लासरूम और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित शिक्षण प्रणाली ने शिक्षा को अधिक सुलभ और लचीला बना दिया है। इसके माध्यम से छात्र किसी भी समय और किसी भी स्थान से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

इसके साथ ही, आज का अकादमिक प्रबंधन "गुणवत्ता आश्वासन" (Quality Assurance) पर विशेष ध्यान देता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) और राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC) जैसे संस्थान शैक्षणिक संस्थानों की गुणवत्ता का मूल्यांकन करते हैं। इसका उद्देश्य शिक्षा प्रणाली में पारदर्शिता, जवाबदेही और उत्कृष्टता को बढ़ावा देना है।[4]

21वीं सदी का अकादमिक प्रबंधन "छात्र–केंद्रित दृष्टिकोण" पर आधारित है। इसमें छात्रों की रुचि, क्षमता और आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों को तैयार किया जाता है। यह दृष्टिकोण पारंपरिक शिक्षक–केंद्रित शिक्षा प्रणाली से अलग है और अधिक सहभागितापूर्ण है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान अकादमिक प्रबंधन में "अनुसंधान और नवाचार" को अत्यंत महत्व दिया जा रहा है। उच्च शिक्षा संस्थानों में रिसर्च कल्चर को बढ़ावा देकर नई तकनीकों, ज्ञान और समाधान विकसित करने पर जोर दिया जा रहा है। यह न केवल अकादमिक विकास को बढ़ाता है, बल्कि समाज और अर्थव्यवस्था के विकास में भी योगदान देता है।[5]

21वीं सदी में अकादमिक प्रबंधन वैश्वीकरण से भी प्रभावित हुआ है। अब शिक्षा संस्थान अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग, छात्र विनिमय कार्यक्रम और संयुक्त शोध परियोजनाओं में भाग ले रहे हैं। इससे शिक्षा का स्तर वैश्विक मानकों के अनुरूप हो रहा है।[6] इस प्रकार, 21वीं सदी का अकादमिक प्रबंधन तकनीक, गुणवत्ता, नवाचार और वैश्विक दृष्टिकोण का एक समन्वित रूप है, जो शिक्षा को अधिक प्रभावी और भविष्य–उन्मुख बनाता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली और अकादमिक प्रबंधन का संबंध :

भारतीय ज्ञान प्रणाली और आधुनिक अकादमिक प्रबंधन के बीच गहरा और बहुआयामी संबंध पाया जाता है। भारतीय ज्ञान प्रणाली जहाँ जीवन, शिक्षा और नैतिकता को एक समग्र दृष्टिकोण से देखती है, वहीं अकादमिक प्रबंधन शिक्षा संस्थानों के संचालन, गुणवत्ता नियंत्रण, शिक्षण प्रक्रिया और शोध व्यवस्था को व्यवस्थित रूप प्रदान करता है। इन दोनों के समन्वय से शिक्षा प्रणाली अधिक प्रभावी, संतुलित और मानव–केंद्रित बन सकती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली अकादमिक प्रबंधन को सबसे पहले "मूल्य आधारित दिशा" प्रदान करती है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में केवल कौशल और रोजगार पर ध्यान दिया जाता है, जबकि भारतीय परंपरा में शिक्षा का उद्देश्य "चरित्र निर्माण" और "सर्वांगीण विकास" रहा है। इस दृष्टिकोण को अपनाने से अकादमिक प्रबंधन केवल प्रशासनिक प्रक्रिया न होकर नैतिक और सांस्कृतिक विकास का माध्यम बन जाता है।[7]

इसके अलावा, भारतीय ज्ञान प्रणाली "छात्र–केंद्रित शिक्षा" की अवधारणा को मजबूत आधार प्रदान करती है। प्राचीन गुरुकुल प्रणाली में प्रत्येक विद्यार्थी की क्षमता, रुचि और स्वभाव के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। यह आधुनिक अकादमिक प्रबंधन में व्यक्तिगत शिक्षण और योग्यता आधारित शिक्षा के रूप में उपयोगी सिद्ध हो रही है। भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक महत्वपूर्ण योगदान "अंतःविषयी दृष्टिकोण" है। प्राचीन भारत में विज्ञान, गणित, चिकित्सा, दर्शन और कला को अलग–अलग विषयों के रूप में नहीं देखा जाता था, बल्कि उन्हें एक दूसरे से जुड़ा हुआ माना जाता था। यह दृष्टिकोण आधुनिक विश्वविद्यालयों के अकादमिक प्रबंधन में शोध, नवाचार और बहुविषयक अध्ययन को बढ़ावा देता है।[8]

अकादमिक प्रबंधन में गुणवत्ता और अनुसंधान की भूमिका को भारतीय ज्ञान प्रणाली और अधिक समृद्ध बनाती है। आयुर्वेद, गणित, खगोल विज्ञान और वास्तुशास्त्र जैसे क्षेत्रों में भारतीय विद्वानों द्वारा किया गया कार्य यह दर्शाता है कि भारत में वैज्ञानिक सोच की एक सुदृढ़ परंपरा रही है। यह परंपरा आज के शोध प्रबंधन और नवाचार नीति के लिए प्रेरणा स्रोत है। इसके साथ ही, भारतीय ज्ञान प्रणाली पर्यावरणीय संतुलन और सतत विकास की अवधारणा को भी मजबूत करती है। प्रकृति को सम्मान देने की भारतीय परंपरा आधुनिक "ग्रीन कैम्पस" और "सस्टेनेबल अकादमिक प्रबंधन" की नीतियों से मेल खाती है। यह शिक्षा संस्थानों को पर्यावरण के प्रति अधिक जिम्मेदार बनाती है।[9]

इस प्रकार, भारतीय ज्ञान प्रणाली और अकादमिक प्रबंधन एक–दूसरे के पूरक हैं। जहाँ अकादमिक प्रबंधन शिक्षा को संरचना और व्यवस्था प्रदान करता है, वहीं भारतीय ज्ञान प्रणाली उसे नैतिकता, संस्कृति और समग्र दृष्टिकोण से समृद्ध बनाती है।[10] दोनों के समन्वय से 21वीं सदी की शिक्षा व्यवस्था अधिक प्रभावी और मानवतावादी बन सकती है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली की समस्याएँ :

आधुनिक शिक्षा प्रणाली आज 21वीं सदी में तकनीकी विकास और वैश्वीकरण के कारण तेजी से विकसित हो रही है, लेकिन इसके बावजूद इसमें कई गंभीर समस्याएँ भी देखने को मिलती हैं। इन समस्याओं का प्रभाव न केवल शिक्षा की गुणवत्ता पर पड़ता है, बल्कि विद्यार्थियों के मानसिक, सामाजिक और नैतिक विकास पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा संकट यह है कि यह धीरे–धीरे मूल्य–आधारित शिक्षा से दूर होती जा रही है। आज शिक्षा का मुख्य उद्देश्य रोजगार प्राप्त करना बन गया है, जबकि नैतिकता, चरित्र निर्माण और मानवीय मूल्यों का महत्व कम होता जा रहा है। इसके कारण शिक्षा केवल एक औपचारिक प्रक्रिया बनकर रह गई है, जिसका जीवन निर्माण से संबंध कमजोर पड़ता जा रहा है।

इसके साथ ही वर्तमान शिक्षा प्रणाली अत्यधिक परीक्षा–केंद्रित हो गई है, जहाँ विद्यार्थियों की वास्तविक समझ और कौशल की बजाय उनके अंकों को अधिक महत्व दिया जाता है। इससे रटने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है और रचनात्मकता तथा विश्लेषण क्षमता कमजोर होती है। एक अन्य प्रमुख समस्या शिक्षा और रोजगार के बीच बढ़ता असंतुलन है। कई विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद आवश्यक व्यावहारिक कौशल के अभाव में रोजगार पाने में कठिनाई महसूस करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा प्रणाली और बाजार की आवश्यकताओं के बीच एक बड़ा अंतर मौजूद है।

इसी प्रकार, आधुनिक शिक्षा प्रणाली में मानसिक तनाव और प्रतिस्पर्धा का दबाव भी बढ़ता जा रहा है। विद्यार्थियों पर बेहतर प्रदर्शन करने का दबाव इतना अधिक होता है कि इसका नकारात्मक प्रभाव उनके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है, जिससे चिंता, तनाव और अवसाद जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।[11]

इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण के प्रभाव से शिक्षा में स्थानीय संस्कृति और परंपराओं की भूमिका कम होती जा रही है, जिससे विद्यार्थियों में सांस्कृतिक पहचान का संकट उत्पन्न हो रहा है। शिक्षा का स्वरूप धीरे–धीरे पश्चिमी मॉडल पर अधिक आधारित होता जा रहा है।

21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन के समक्ष चुनौतियाँ :

21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन में भारतीय ज्ञान प्रणाली को पुनः स्थापित करने और शिक्षा के मुख्यधारा में शामिल करने के प्रयास किए जा रहे हैं, विशेषकर नई शिक्षा नीति (NEP 2020) के संदर्भ में। इसके बावजूद इसके समक्ष कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जो इसके प्रभावी क्रियान्वयन और स्वीकार्यता को प्रभावित करती हैं।

सर्वप्रथम, भारतीय ज्ञान प्रणाली की सबसे प्रमुख चुनौती इसका आधुनिक पाठ्यक्रम में सीमित और आंशिक एकीकरण है। यद्यपि नीति स्तर पर इसे शिक्षा व्यवस्था में शामिल करने की बात की गई है, लेकिन व्यवहारिक स्तर पर विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में इसका समुचित और व्यवस्थित समावेश अभी भी कमजोर है।[12]

द्वितीय, बड़ी चुनौती स्रोत सामग्री और शोध कार्य की कमी है। भारतीय ज्ञान परंपरा से संबंधित अनेक ग्रंथ और अवधारणाएँ प्राचीन भाषाओं जैसे संस्कृत, पाली और प्राकृत में उपलब्ध हैं, जिन्हें आधुनिक शोध पद्धति के अनुसार सरल और व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का कार्य अभी पर्याप्त रूप से नहीं हुआ है।[13]

तृतीय, चुनौती शिक्षकों और अकादमिक समुदाय में जागरूकता एवं प्रशिक्षण की कमी है। कई शिक्षक भारतीय ज्ञान प्रणाली के आधुनिक शैक्षणिक उपयोग, इसकी व्याख्या और पाठ्यक्रम में इसके अनुप्रयोग से पर्याप्त रूप से परिचित नहीं हैं, जिससे इसका प्रभावी शिक्षण संभव नहीं हो पाता।

चतुर्थ, चुनौती पश्चिमी ज्ञान मॉडल पर अत्यधिक निर्भरता है। भारत की वर्तमान उच्च शिक्षा प्रणाली लंबे समय से पश्चिमी सिद्धांतों और मॉडल पर आधारित रही है, जिसके कारण भारतीय ज्ञान परंपरा को समान स्तर पर स्थान नहीं मिल पाया है। यह स्थिति भारतीय ज्ञान प्रणाली के समुचित विकास में बाधा उत्पन्न करती है।[14]

पंचम, चुनौती अनुसंधान एवं वित्तीय समर्थन की सीमाएँ हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली पर आधारित शोध परियोजनाओं, संस्थानों और शैक्षणिक संसाधनों के लिए अपेक्षित वित्तीय और संस्थागत समर्थन अभी भी पर्याप्त नहीं है, जिससे इसका विस्तार धीमा है।[15]

इसके अतिरिक्त, एक महत्वपूर्ण चुनौती इसकी व्याख्या और आधुनिक संदर्भ में अनुवाद की जटिलता भी है। प्राचीन ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक और अकादमिक भाषा में प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है, जिसके लिए गहन शोध और बहुविषयक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।

अकादमिक प्रबंधन हेतु सुझाव एवं समाधान :

21वीं सदी का अकादमिक प्रबंधन तेजी से बदलती तकनीकी, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के बीच कार्य कर रहा है। इस संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल एक वैचारिक ढांचा नहीं, बल्कि शिक्षा व्यवस्था को अधिक मानवीय, नैतिक और समग्र बनाने का एक प्रभावी साधन बन सकती है। आधुनिक शिक्षा की चुनौतियों को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को अकादमिक प्रबंधन के विभिन्न स्तरों पर प्रभावी रूप से लागू किया जाए।

सर्वप्रथम, पाठ्यक्रम सुधार एक महत्वपूर्ण समाधान के रूप में सामने आता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भारतीय ज्ञान परंपरा के तत्वों को सीमित रूप में शामिल किया गया है। यदि वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, गणित, दर्शन और पारंपरिक विज्ञान को आधुनिक विषयों के साथ जोड़ा जाए, तो शिक्षा अधिक समृद्ध और बहुविषयी बन सकती है।

द्वितीय, महत्वपूर्ण समाधान शिक्षक प्रशिक्षण एवं क्षमता विकास है। शिक्षकों को भारतीय ज्ञान प्रणाली के आधुनिक अनुप्रयोगों, उसकी वैज्ञानिक व्याख्या और शिक्षण पद्धति से परिचित कराना आवश्यक है। इससे कक्षा शिक्षण अधिक प्रभावी और अर्थपूर्ण बन सकता है।

तृतीय, समाधान मूल्य–आधारित शिक्षा को पुनः सशक्त करना है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में नैतिकता, अनुशासन, करुणा और सामाजिक उत्तरदायित्व को शिक्षा का मूल आधार माना गया है। यदि इसे अकादमिक प्रबंधन में शामिल किया जाए, तो विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास संभव है।

चतुर्थ, समाधान मानसिक स्वास्थ्य एवं योग आधारित शिक्षा है। आधुनिक शिक्षा में बढ़ते तनाव और प्रतिस्पर्धा को देखते हुए योग, ध्यान और प्राणायाम को नियमित शैक्षणिक प्रक्रिया का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों का मानसिक संतुलन और एकाग्रता बढ़ती है।

पंचम, समाधान कौशल–आधारित एवं व्यावहारिक शिक्षा को बढ़ावा देना है। भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा

को जीवन से जोड़कर देखा गया है। यदि इसे आधुनिक अकादमिक प्रबंधन में लागू किया जाए, तो रोजगार क्षमता में सुधार हो सकता है।

षष्ठ, समाधान पर्यावरणीय चेतना और सतत विकास है। भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रकृति के संरक्षण और संतुलन पर आधारित है। इसे शिक्षा संस्थानों की नीतियों में शामिल करने से "ग्रीन कैंपस" और पर्यावरण–अनुकूल शिक्षा व्यवस्था को बढ़ावा मिल सकता है।

इस प्रकार, भारतीय ज्ञान प्रणाली 21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन में न केवल प्रासंगिक है, बल्कि यह शिक्षा को अधिक प्रभावी, नैतिक और भविष्य–उन्मुख बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष :

21वीं सदी का अकादमिक प्रबंधन तीव्र तकनीकी परिवर्तन, वैश्वीकरण और ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के दबाव में निरंतर विकसित हो रहा है। इस विकास यात्रा में अनेक चुनौतियाँ भी सामने आई हैं, जैसे मूल्य–आधारित शिक्षा का अभाव, परीक्षा–केंद्रित प्रणाली, शिक्षा और रोजगार के बीच असंतुलन, मानसिक तनाव तथा सांस्कृतिक पहचान का संकट। इन सभी समस्याओं ने शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता और उद्देश्य पर गंभीर प्रश्न खड़े किए हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय ज्ञान प्रणाली एक महत्वपूर्ण और संतुलित विकल्प के रूप में उभरती है। यह प्रणाली शिक्षा को केवल सूचना और कौशल तक सीमित न रखकर उसे नैतिकता, संस्कृति, जीवन–मूल्य और समग्र विकास से जोड़ती है। इसके अंतर्गत योग, ध्यान, अंतःविषयी दृष्टिकोण, कौशल–आधारित शिक्षा तथा पर्यावरणीय संतुलन जैसे तत्व आधुनिक शिक्षा व्यवस्था को अधिक मानवीय और प्रभावी बना सकते हैं।

यदि भारतीय ज्ञान प्रणाली को अकादमिक प्रबंधन में उचित रूप से एकीकृत किया जाए, तो यह न केवल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करेगी, बल्कि विद्यार्थियों को अधिक जिम्मेदार, रचनात्मक और आत्मनिर्भर भी बनाएगी। साथ ही यह भारत की सांस्कृतिक विरासत को आधुनिक संदर्भ में पुनः स्थापित करने में भी सहायक होगी। इसलिए कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली 21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन के लिए अत्यंत प्रासंगिक और उपयोगी सिद्ध हो रही है, जो शिक्षा को भविष्य–उन्मुख, मूल्य–आधारित और समग्र बनाने की क्षमता रखती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. उपनिषद, ईशावास्य उपनिषद एवं मुण्डक उपनिषद में ज्ञान (विद्या) और ब्रह्म ज्ञान की अवधारणा का उल्लेख।
2. आर्यभट्ट का "आर्यभटीय", सुश्रुत संहिता तथा वराहमिहिर की "बृहत्संहिता" पर आधारित वैज्ञानिक परंपरा।
3. ऋग्वेद (प्रकृति स्तुति सूक्त) तथा आधुनिक पर्यावरण अध्ययन के संदर्भ में भारतीय परंपरा की व्याख्या।
4. University Grants Commission (UGC), India – Quality Mandate Guidelines.
5. OECD Report on Higher Education and Innovation, 2022.
6. Global Education Monitoring Report, UNESCO, 2024.
7. National Education Policy (NEP) 2020, Ministry of Education, Government of India.

8. 12University Grants Commission (UGC), Curriculum Framework for Multidisciplinary Education, 2022.
9. UNESCO, “Education for Sustainable Development Goals”, 2023.
10. National Education Policy (NEP) 2020, Ministry of Education, Government of India – Emphasis on Value Based Education in Education.
11. World Health Organization (WHO), Reports on Adolescent Mental Health and Stress in Education, 2022.
12. 20National Education Policy (NEP) 2020, Ministry of Education, Government of India – Curriculum Integration Provisions of IKS.
13. National Education Policy (NEP) 2020, Ministry of Education, Government of India – Curriculum Integration Provisions of IKS.
14. 0ECD Higher Education Review, 2022 – Influence of Western Education Model.
15. Government of India Budget Documents (Education Sector), 2023–24 – Research and Financial Support.

Email -araj4677@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 120-123

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

भक्तिकालीन संगीत परम्परा और भारतीय सांस्कृतिक चेतना

डॉ. रमा राहुल दूधमांडे
सहयोगी आचार्य एवं हिंदी विभाग प्रमुख
डॉ. (सौ.) इं. भा. पाठक महिला कला महाविद्यालय, समर्थ नगर, छत्रपती संभाजीनगर (महाराष्ट्र)

सारांश :

भारतीय संस्कृति में संगीत का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। संगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति, भक्ति, साधना और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त साधन रहा है। भक्तिकाल में संगीत ने धार्मिक चेतना, सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक अनुभूति को जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया। भक्ति आन्दोलन के संतों ने संगीत को ईश्वर तक पहुँचने का सहज मार्ग माना। कीर्तन, भजन, कव्वाली, संकीर्तन और लोकधुनों के माध्यम से भक्तिकालीन संगीत ने समाज में आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न की।

यह शोध आलेख भक्तिकालीन संगीत परम्परा, उसके सांस्कृतिक प्रभाव, हिन्दू और सूफी परम्पराओं में संगीत की भूमिका, लोक एवं शास्त्रीय संगीत के समन्वय तथा भारतीय समाज पर उसके प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भक्तिकालीन संगीत ने भारतीय संस्कृति को आध्यात्मिकता, संवेदना और सामाजिक एकता की दृष्टि से समृद्ध किया।

बीज शब्द : भक्ति आन्दोलन, संगीत, भारतीय संस्कृति, सूफी परम्परा, कीर्तन, कव्वाली, लोकसंगीत, आध्यात्मिक चेतना, भक्तिकालीन संगीत परम्परा और भारतीय सांस्कृतिक चेतना।

उद्देश्य :

1. भक्तिकालीन संगीत परम्परा के स्वरूप और विशेषताओं का अध्ययन करना।
2. भक्ति आन्दोलन में संगीत की भूमिका को स्पष्ट करना।
3. हिन्दू एवं सूफी परम्पराओं में संगीत की अभिव्यक्ति का विश्लेषण करना।
4. लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत पर भक्तिकालीन प्रभाव को समझना।
5. भारतीय सांस्कृतिक चेतना में संगीत की भूमिका का अध्ययन करना।

भूमिका :

भारतीय संस्कृति में संगीत को सदैव दिव्य कला माना गया है। प्राचीन भारतीय चिंतन में संगीत केवल ध्वनि या मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि आत्मा और परमात्मा के बीच संवाद का साधन रहा है। भारतीय दर्शन में "नाद" को ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। यही कारण है कि संगीत को आध्यात्मिक साधना और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग समझा गया।

भारतीय धार्मिक परम्पराओं में संगीत का प्रयोग आरंभ से ही पूजा, उपासना और सामूहिक अनुष्ठानों में होता आया है। वेदों, विशेषतः सामवेद, में संगीत के प्रारम्भिक स्वरूप के दर्शन होते हैं। वैदिक ऋचाओं का गायन भारतीय संगीत परम्परा की मूल आधारशिला माना जाता है। समय के साथ यह संगीत धार्मिक सीमाओं से आगे बढ़कर सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का अंग बन गया।

मध्यकाल में जब भारतीय समाज राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक संक्रमणों से गुजर रहा था, तब भक्ति आन्दोलन ने जनमानस को नई दिशा प्रदान की। इस आन्दोलन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने धर्म को कर्मकाण्डों से निकालकर सीधे मानव–हृदय से जोड़ा। संत कवियों और सूफी फकीरों ने संगीत को भक्ति और अध्यात्म का सहज माध्यम बनाया।

भक्ति आन्दोलन के दौरान संगीत ने केवल धार्मिक भूमिका नहीं निभाई, बल्कि सामाजिक समरसता, लोकजागरण और सांस्कृतिक एकता को भी सुदृढ़ किया। मंदिरों, आश्रमों, मठों और खानकाहों में संगीत आध्यात्मिक अनुभूति का प्रमुख माध्यम बन गया। भजन, कीर्तन, संकीर्तन और कव्वाली जैसी विधाओं ने जनसामान्य को भक्ति से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय संगीत की प्राचीन परम्परा :

भारतीय संगीत की परम्परा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध रही है। इसका उद्‌भव वैदिक काल से माना जाता है। सामवेद में मंत्रों का गान संगीत की प्रारम्भिक संरचना को प्रस्तुत करता है। भारतीय परम्परा में संगीत को "गान, वादन और नृत्य" का समन्वित रूप माना गया है।

प्राचीन ग्रंथों में भगवान शंकर को नटराज, देवी सरस्वती को वीणावादिनी तथा भगवान कृष्ण को मुरलीधर के रूप में चित्रित किया गया है। यह प्रतीकात्मक स्वरूप भारतीय संस्कृति में संगीत की दिव्यता को प्रकट करता है।

रामायण और महाभारत काल में भी संगीत का महत्त्व दिखाई देता है। मंदिरों और राजसभाओं में संगीत का विशेष स्थान था। धीरे–धीरे यह परम्परा लोकजीवन में भी विकसित हुई।

भक्ति आन्दोलन और संगीत :

मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन ने धार्मिक और सामाजिक चेतना को नई दिशा दी। इस आन्दोलन का उद्देश्य ईश्वर के प्रति प्रेम, समर्पण और मानवीय समानता का संदेश देना था।

भक्ति आन्दोलन के संतों ने संगीत को जनसंपर्क का सबसे प्रभावी माध्यम बनाया। संतों की वाणी लोकभाषाओं में थी और संगीत के माध्यम से वह सीधे जनमानस तक पहुँची।

कबीर, सूरदास, मीराबाई और तुलसीदास जैसे संत कवियों ने अपने पदों और भजनों को संगीतात्मक रूप प्रदान किया।

इन संतों के भजन केवल धार्मिक अभिव्यक्ति नहीं थे, बल्कि सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों के वाहक भी थे।

कृष्णभक्ति और संगीत :

कृष्णभक्ति परम्परा में संगीत का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भगवान कृष्ण स्वयं बाँसुरी वादन के प्रतीक माने जाते हैं। वृन्दावन और ब्रज क्षेत्र में भक्ति संगीत की समृद्ध परम्परा विकसित हुई।

अष्टछाप कवियों ने कृष्ण भक्ति को संगीत के माध्यम से व्यापक बनाया। संकीर्तन और रासलीला जैसी परम्पराओं ने लोकसंगीत और शास्त्रीय संगीत दोनों को समृद्ध किया।

स्वामी हरिदास का योगदान इस परम्परा में विशेष उल्लेखनीय है। उनके संगीत का प्रभाव तत्कालीन समाज और दरबारी संगीत दोनों पर पड़ा।

रामभक्ति परम्परा और संगीत :

रामभक्ति धारा में भी संगीत का महत्त्व अत्यंत व्यापक रहा। रामकथा, रामायण पाठ और भजन परम्परा ने संगीत को जनमानस से जोड़ा।

तुलसीदास की रचनाएँ लोकधुनों में गायी जाने लगीं। रामचरितमानस के दोहे और चौपाइयाँ धार्मिक अनुष्ठानों के साथ–साथ लोकजीवन का हिस्सा बन गईं। इस परम्परा ने संगीत को सामाजिक नैतिकता और आध्यात्मिक चेतना से जोड़ा।

सूफी परम्परा और संगीत :

सूफी परम्परा में संगीत को ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम माना गया। सूफी संत प्रेम, समर्पण और आध यात्मिक अनुभूति के माध्यम से ईश्वर से जुड़ने की बात करते थे।

सूफियों ने संगीत को आत्मिक शांति और ईश्वरीय प्रेम की अनुभूति का साधन बनाया। खानकाहों और दरगाहों में कव्वाली, समा और सूफी गायन की परम्परा विकसित हुई।

अमीर खुसरो का योगदान इस दिशा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने भारतीय और फारसी संगीत परम्पराओं के समन्वय से नई संगीत विधाओं का विकास किया। सूफी संगीत की सबसे बड़ी विशेषता उसकी लोकधर्मिता थी। इसमें प्रेम और मानवीय एकता का संदेश निहित था।

अकबर काल और संगीत का उत्कर्ष :

मुगल सम्राट अकबर का काल भारतीय संगीत के उत्कर्ष का काल माना जाता है। अकबर संगीत का संरक्षक था और उसने अनेक संगीतज्ञों को संरक्षण प्रदान किया।

तानसेन अकबर के दरबार के प्रमुख संगीतज्ञ थे। इस काल में दरबारी संगीत और भक्ति संगीत दोनों का समान विकास हुआ।

अकबर स्वयं धार्मिक संगीत में रुचि रखता था और भक्ति संगीत से प्रभावित था। यही कारण है कि संगीत दरबार से निकलकर समाज के व्यापक स्तर तक पहुँचा।

लोकसंगीत और भक्तिकालीन चेतना :

भक्तिकालीन संगीत की सबसे बड़ी विशेषता उसका लोकजीवन से जुड़ाव था। संत कवियों ने लोकभाषाओं और लोकधुनों को अपनाया। लोकगीतों, भजनों और कीर्तन परम्पराओं ने ग्रामीण समाज को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक रूप से जोड़ने का कार्य किया।

सूफी और निर्गुण परम्पराओं ने भी लोकसंगीत को समृद्ध किया। कव्वाली और लोकगायन के माध्यम से संगीत जनमानस की सामूहिक चेतना का हिस्सा बन गया।

आधुनिक संदर्भ में भक्तिकालीन संगीत की प्रासंगिकता :

आधुनिक समय में भी भक्तिकालीन संगीत की प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के तनावपूर्ण और

भौतिकवादी जीवन में संगीत मानसिक शांति और आध्यात्मिक संतुलन प्रदान करता है।

भजन, कीर्तन, सूफी संगीत और लोकधुनें आज भी जनमानस में लोकप्रिय हैं। धार्मिक आयोजनों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और सामाजिक उत्सवों में भक्तिकालीन संगीत की परम्पराएँ जीवित हैं। संगीत आज भी सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक एकता का माध्यम बना हुआ है।

निष्कर्ष :

भक्तिकालीन संगीत परम्परा भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इस परम्परा ने संगीत को केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रहने दिया, बल्कि उसे भक्ति, साधना और सामाजिक चेतना का स्वरूप प्रदान किया।

भक्ति आन्दोलन के संतों और सूफी फकीरों ने संगीत को जनसामान्य की भाषा बनाया। संगीत ने धार्मिक सीमाओं को पार कर मानवीय एकता और प्रेम का संदेश दिया।

भारतीय संगीत की यह परम्परा आज भी समाज को संवेदनशीलता, आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक समन्वय की प्रेरणा देती है। अंततः यह कहा जा सकता है कि स्वर की भाषा सार्वभौमिक है और संगीत मानवता को जोड़ने वाली सबसे प्रभावशाली सांस्कृतिक शक्ति है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. शर्मा, सत्यवती. संगीत का समाजशास्त्र. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
2. आकांक्षी, डॉ. भारतीय संगीत और वैश्वीकरण. दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
3. बैनर्जी, नमिता. मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव. कोलकाता : साहित्य भवन।
4. सचदेव, रेणू. धार्मिक परम्पराएँ एवं हिन्दुस्तानी संगीत. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन।
5. शर्मा, सत्यभान. पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परम्परा. जयपुर : संस्कृति प्रकाशन।
6. गौतम, लक्ष्मीनारायण. भारतीय संगीत का इतिहास. इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन।
7. चतुर्वेदी, परशुराम. भक्ति आन्दोलन और भारतीय संस्कृति. दिल्ली : साहित्य अकादेमी।

दूरभाष : 8975032435

ईमेल : ramadudhmande1968@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 124-131

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में संत साहित्य की उपयोगिता : एक आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. मीना शर्मा

सहायक आचार्य, आई. ए. एस. ई. डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी, सरदारशहर, चूरू।

सारांश (Abstract)

भारत की शिक्षा व्यवस्था केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसका उद्देश्य नैतिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों का विकास करना भी रहा है। वर्तमान समय में लागू नई शिक्षा नीति 2020 विद्यार्थियों में कौशल, नैतिकता, भारतीय ज्ञान परंपरा, समावेशिता एवं समग्र विकास पर विशेष बल देती है। संत साहित्य भारतीय भक्ति आंदोलन की ऐसी धरोहर है जिसमें मानवता, समानता, नैतिकता, सहिष्णुता एवं सामाजिक समरसता के आदर्श निहित हैं।

वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप तीव्र गति से परिवर्तनशील होता जा रहा है। तकनीकी विकास, प्रतिस्पर्धा एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण शिक्षा में नैतिकता, मानवीय संवेदनाएँ तथा सामाजिक मूल्यों का ह्रास दिखाई देता है। ऐसी परिस्थिति में भारत सरकार द्वारा लागू नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न रखकर उसे मूल्यपरक, कौशलपरक एवं भारतीय ज्ञान परंपरा से जोड़ने का प्रयास करती है। यह नीति विद्यार्थियों के समग्र विकास, नैतिक चेतना, आलोचनात्मक चिंतन, समावेशी शिक्षा तथा सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण पर विशेष बल देती है।

संत साहित्य भारतीय सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना की अमूल्य धरोहर है। कबीरदास, रैदास, दादूदयाल तथा गुरु नानक देव जैसे संत कवियों ने मानवता, समानता, नैतिकता, सामाजिक समरसता एवं आध्यात्मिक जागरण का संदेश दिया। संत साहित्य में निहित विचार वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं, क्योंकि यह विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा मानवीय दृष्टिकोण का विकास करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परंपरा, मातृभाषा आधारित शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम तथा मूल्य शिक्षा को प्रोत्साहित करती है। संत साहित्य इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। संत कवियों की वाणी सरल लोकभाषा में होने के कारण विद्यार्थियों तक सहज रूप में पहुँचती है तथा उनमें तार्किकता एवं आलोचनात्मक चिंतन का विकास करती है। साथ ही संत साहित्य सामाजिक विषमताओं, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का विरोध कर समावेशी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है।

यद्यपि नई शिक्षा नीति 2020 पर अनेक अध्ययन किए जा चुके हैं, तथापि संत साहित्य की उपयोगिता को शिक्षा नीति के संदर्भ में आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषित करने वाले अध्ययन अपेक्षाकृत कम दिखाई देते हैं। अतः प्रस्तुत अध्ययन नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों एवं संत साहित्य में निहित मानवीय एवं शैक्षिक मूल्यों के अंतर्संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास करेगा। यह अध्ययन शिक्षा जगत, शोधार्थियों एवं नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों के संदर्भ में संत साहित्य की उपयोगिता का अध्ययन किया गया है। शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि संत साहित्य विद्यार्थियों में नैतिक चेतना, आलोचनात्मक चिंतन, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा आध्यात्मिक संवेदनशीलता विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

कुंजी शब्द – नई शिक्षा नीति 2020, संत साहित्य, मूल्य शिक्षा, भारतीय ज्ञान परंपरा, समावेशी शिक्षा, नैतिकता।

प्रस्तावना :

भारतीय शिक्षा परंपरा सदैव ज्ञान, नैतिकता, मानवीय मूल्यों तथा सामाजिक समरसता पर आधारित रही है। प्राचीन काल से ही भारतीय चिंतन में शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्ति नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास माना गया है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से शिक्षा का स्वरूप तेजी से परिवर्तित हो रहा है। ऐसी स्थिति में शिक्षा के मानवीय और नैतिक पक्ष को पुनः सुदृढ़ करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 लागू की गई, जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा, नैतिक मूल्यों, कौशल विकास तथा समग्र शिक्षा को बढ़ावा देना है।

नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय संस्कृति, भाषा, साहित्य और लोकज्ञान को शिक्षा का अभिन्न अंग मानती है। यह नीति विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता, नैतिकता, सहिष्णुता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे गुणों के विकास पर बल देती है। इसी संदर्भ में संत साहित्य की प्रासंगिकता अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। संत साहित्य भारतीय समाज की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना का प्रतिनिधि साहित्य है। यह साहित्य केवल धार्मिक उपदेश नहीं देता, बल्कि मानवता, समानता, प्रेम, करुणा और सामाजिक सुधार का संदेश भी प्रदान करता है।

कबीरदास, रैदास, गुरु नानक देव तथा दादूदयाल आदि संत कवियों ने अपने साहित्य के माध्यम से जाति–पांति, अंधविश्वास, सामाजिक भेदभाव और धार्मिक कट्टरता का विरोध किया। उन्होंने मानवता, समरसता और नैतिक जीवन को सर्वोच्च महत्व दिया। संत साहित्य में व्यक्त मानवीय मूल्य नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों के साथ गहरे रूप में जुड़े हुए हैं।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थियों के भीतर बढ़ती नैतिक शिथिलता, तनाव, असहिष्णुता तथा सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ दिखाई देती हैं। ऐसी परिस्थितियों में संत साहित्य विद्यार्थियों को नैतिक दिशा प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। संत साहित्य का अध्ययन विद्यार्थियों में सहानुभूति, सामाजिक चेतना, नैतिकता और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सम्मान विकसित कर सकता है। साथ ही यह साहित्य आलोचनात्मक चिंतन और सामाजिक जागरूकता को भी प्रोत्साहित करता है, जो नई शिक्षा नीति का एक प्रमुख उद्देश्य है।

यद्यपि नई शिक्षा नीति भारतीय ज्ञान परंपरा को शिक्षा में समाहित करने पर बल देती है, फिर भी व्यवहारिक स्तर पर संत साहित्य की उपयोगिता और उसकी प्रभावशीलता का समुचित मूल्यांकन आवश्यक है। इसी कारण प्रस्तुत शोध "नई शिक्षा नीति के संदर्भ में संत साहित्य की उपयोगिता : एक आलोचनात्मक अध्ययन" विषय के अंतर्गत यह विश्लेषण करेगा कि संत साहित्य नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों की पूर्ति में किस प्रकार सहायक हो सकता है तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उसकी क्या सीमाएँ और संभावनाएँ हैं।

इस अध्ययन के माध्यम से संत साहित्य की शैक्षिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक उपयोगिता का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जाएगा। साथ ही यह शोध यह स्पष्ट करने का प्रयास करेगा कि नई शिक्षा नीति के संदर्भ में संत साहित्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण, मूल्यपरक शिक्षा तथा भारतीय सांस्कृतिक चेतना के विकास में किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अध्ययन का औचित्य :

वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप तीव्र गति से परिवर्तनशील होता जा रहा है। तकनीकी विकास, प्रतिस्पर्धा एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण शिक्षा में नैतिकता, मानवीय संवेदनाएँ तथा सामाजिक मूल्यों का ह्रास दिखाई देता है। ऐसी परिस्थिति में भारत सरकार द्वारा लागू नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन तक सीमित न रखकर उसे मूल्यपरक, कौशलपरक एवं भारतीय ज्ञान परंपरा से जोड़ने का प्रयास करती है। यह नीति विद्यार्थियों के समग्र विकास, नैतिक चेतना, आलोचनात्मक चिंतन, समावेशी शिक्षा तथा सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण पर विशेष बल देती है।

संत साहित्य भारतीय सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना की अमूल्य धरोहर है। कबीरदास, रैदास, दादूदयाल तथा गुरु नानक देव जैसे संत कवियों ने मानवता, समानता, नैतिकता, सामाजिक समरसता एवं आध्यात्मिक जागरण का संदेश दिया। संत साहित्य में निहित विचार वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं, क्योंकि यह विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा मानवीय दृष्टिकोण का विकास करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परंपरा, मातृभाषा आधारित शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम तथा मूल्य शिक्षा को प्रोत्साहित करती है। संत साहित्य इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। संत कवियों की वाणी सरल लोकभाषा में होने के कारण विद्यार्थियों तक सहज रूप में पहुँचती है तथा उनमें तार्किकता एवं आलोचनात्मक चिंतन का विकास करती है। साथ ही संत साहित्य सामाजिक विषमताओं, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का विरोध कर समावेशी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है।

यद्यपि नई शिक्षा नीति 2020 पर अनेक अध्ययन किए जा चुके हैं, तथापि संत साहित्य की उपयोगिता को शिक्षा नीति के संदर्भ में आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषित करने वाले अध्ययन अपेक्षाकृत कम दिखाई देते हैं। अतः प्रस्तुत अध्ययन नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों एवं संत साहित्य में निहित मानवीय एवं शैक्षिक मूल्यों के अंतर्संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास करेगा। यह अध्ययन शिक्षा जगत, शोधार्थियों एवं नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

समस्या कथन–नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में संत साहित्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन।

शोध के उद्देश्य :

1. नई शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख उद्देश्यों का अध्ययन करना।
2. संत साहित्य के प्रमुख मानवीय मूल्यों का विश्लेषण करना।
3. नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में संत साहित्य की उपयोगिता स्पष्ट करना।
4. शिक्षा में संत साहित्य के समावेश की संभावनाओं का अध्ययन करना।

प्रयुक्त शब्दावली की व्याख्या –

1. नई शिक्षा नीति 2020 :

नई शिक्षा नीति 2020 भारत सरकार द्वारा लागू की गई ऐसी शिक्षा नीति है, जिसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा व्यवस्था को अधिक समावेशी, बहुआयामी, कौशलपरक एवं मूल्यपरक बनाना है। यह नीति विद्यार्थियों के समग्र विकास, आलोचनात्मक चिंतन, नैतिक शिक्षा, मातृभाषा आधारित शिक्षण तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण पर विशेष बल देती है। प्रस्तुत अध्ययन में नई शिक्षा नीति 2020 से आशय उन शैक्षिक उद्देश्यों एवं सिद्धांतों से है, जो शिक्षा को जीवनोपयोगी एवं मूल्यनिष्ठ बनाने का प्रयास करते हैं।

2. संत साहित्य :

संत साहित्य हिंदी साहित्य की भक्ति धारा का वह साहित्य है, जिसमें संत कवियों द्वारा मानवता, समानता, प्रेम, भक्ति, नैतिकता एवं सामाजिक सुधार संबंधी विचार व्यक्त किए गए हैं। यह साहित्य मुख्यतः निर्गुण भक्ति पर आधारित है तथा लोकभाषा में रचित होने के कारण जनसामान्य में अत्यंत लोकप्रिय रहा है। प्रस्तुत अध्ययन में संत साहित्य से आशय कबीरदास, रैदास, दादूदयाल, गुरु नानक देव आदि संत कवियों की वाणी एवं उनके साहित्यिक विचारों से है।

3. उपयोगिता :

उपयोगिता से आशय किसी वस्तु, विचार या साहित्य की उस क्षमता से है, जिसके माध्यम से वह व्यक्ति, समाज अथवा शिक्षा व्यवस्था के लिए लाभकारी सिद्ध हो। प्रस्तुत अध्ययन में उपयोगिता का अर्थ संत साहित्य के उन शैक्षिक, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों से है, जो नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकते हैं।

4. आलोचनात्मक अध्ययन :

आलोचनात्मक अध्ययन से अभिप्राय किसी विषय का तर्कपूर्ण, विश्लेषणात्मक एवं वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से अध्ययन करना है। इसमें विषय के गुण–दोष, प्रासंगिकता, प्रभाव एवं सीमाओं का विवेचन किया जाता है। प्रस्तुत शोध में संत साहित्य की उपयोगिता का विश्लेषण नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में आलोचनात्मक दृष्टि से किया जाएगा, ताकि उसके शैक्षिक महत्व एवं व्यावहारिक उपयोग को स्पष्ट किया जा सके।

प्रयुक्त शोध विधिप्रयुक्त शोध विधि :

प्रस्तुत शोध–पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। इसमें द्वितीयक स्रोतों जैसे पुस्तकें, शोध–पत्र, शिक्षा नीति दस्तावेज एवं संत साहित्य संबंधी ग्रंथों का अध्ययन किया गया है।

परिसीमन :

प्रस्तुत शोध केवल भारत सरकार द्वारा लागू नई शिक्षा नीति 2020 के शैक्षिक उद्देश्यों एवं सिद्धांतों तक सीमित रहेगा।

अध्ययन में संत साहित्य के अंतर्गत मुख्य रूप से कबीरदास, रैदास, दादूदयाल तथा गुरु नानक देव आदि प्रमुख संत कवियों की वाणी एवं विचारों का अध्ययन किया जाएगा।

संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन :

प्रस्तुत शोध विषय से संबंधित उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि संत साहित्य, मूल्य शिक्षा तथा नई शिक्षा नीति 2020 पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इन अध्ययनों का संक्षिप्त पुनरावलोकन निम्न प्रकार है :–

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी कृति कबीर में संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने बताया कि संत कवियों ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं जातिगत भेदभाव का विरोध कर मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित किया।

रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास में संत साहित्य को लोकजागरण का साहित्य माना है। उनके अनुसार संत कवियों ने जनसामान्य की भाषा में समाज सुधार एवं नैतिक मूल्यों का संदेश दिया, जिससे सामाजिक चेतना का विकास हुआ।

नामवर सिंह ने भक्ति आंदोलन एवं संत साहित्य को भारतीय समाज में सांस्कृतिक एकता एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना का महत्वपूर्ण माध्यम माना है। उन्होंने संत साहित्य को सामाजिक परिवर्तन की चेतना से जोड़कर देखा है।

रामकुमार वर्मा ने संत साहित्य की विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए कहा कि यह साहित्य मानव जीवन को नैतिकता, सदाचार एवं आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करता है। उनके अनुसार संत साहित्य में लोकमंगल की भावना प्रमुख रूप से विद्यमान है।

नई शिक्षा नीति 2020 पर किए गए अध्ययनों में यह स्पष्ट किया गया है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यपरक शिक्षा, कौशल विकास, समावेशी शिक्षा एवं भारतीय ज्ञान परंपरा को विशेष महत्व दिया गया है। विभिन्न शिक्षा विशेषज्ञों ने यह मत व्यक्त किया है कि भारतीय संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित साहित्य विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध हो सकता है।

नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में किए गए अनेक शोधों में भारतीय ज्ञान परंपरा एवं मूल्य शिक्षा पर बल दिया गया है, किंतु संत साहित्य की उपयोगिता को विशेष रूप से शिक्षा नीति के उद्देश्यों से जोड़कर किए गए अध्ययन अपेक्षाकृत कम दिखाई देते हैं। अधिकांश अध्ययन संत साहित्य के साहित्यिक, धार्मिक अथवा सामाजिक पक्षों तक सीमित रहे हैं। संत साहित्य के शैक्षिक महत्व, विशेषतः नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता पर विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन का अभाव दृष्टिगत होता है।

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संत साहित्य में निहित मानवता, समानता, सहिष्णुता, नैतिकता एवं सामाजिक समरसता जैसे मूल्य नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों के अनुरूप हैं। तथापि इस विषय पर समग्र एवं आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गई, जिसके परिणामस्वरूप प्रस्तुत शोध कार्य का चयन किया गया है।

नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में संत साहित्य की उपयोगिता :

नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था को अधिक समावेशी, बहुआयामी एवं मूल्यपरक बनाने का

प्रयास करती है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में केवल अकादमिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि रचनात्मकता, आलोचनात्मक चिंतन, नैतिकता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना है।

संत साहित्य हिंदी साहित्य की भक्ति धारा का महत्वपूर्ण अंग है। संत कवियों ने सरल भाषा में समाज को नैतिकता, मानवता एवं आध्यात्मिकता का संदेश दिया। संत साहित्य का मूल उद्देश्य समाज में व्याप्त अंधविश्वास, जातिगत भेदभाव एवं पाखंड का विरोध करना था।

कबीरदास कहते हैं :–

''जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।''

यह दोहा सामाजिक समानता एवं ज्ञान के महत्व को स्पष्ट करता है।

इसी संदर्भ में भारत सरकार द्वारा लागू राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय संस्कृति, परंपरा और ज्ञान प्रणाली को शिक्षा का आधार बनाने पर बल देती है। यह नीति विद्यार्थियों में रचनात्मकता, आलोचनात्मक चिंतन, नैतिकता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व विकसित करने का लक्ष्य रखती है।

संत साहित्य भारतीय समाज की मानवीय चेतना का प्रतिनिधि साहित्य है। इसमें मानवता, समानता, प्रेम, सहिष्णुता और सामाजिक सुधार का संदेश मिलता है। कबीरदास, रैदास, गुरु नानक देव तथा दादूदयाल आदि संत कवियों ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास, जातिवाद और पाखंड का विरोध करते हुए नैतिक जीवन एवं मानव धर्म का समर्थन किया। अतः संत साहित्य नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों को साकार करने में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

2. नई शिक्षा नीति 2020 : उद्देश्य एवं स्वरूप :

नई शिक्षा नीति 2020 का मुख्य उद्देश्य शिक्षा को भारतीय संस्कृति और वैश्विक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना है। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :–

- समग्र एवं बहुआयामी शिक्षा का विकास।
- नैतिक एवं मूल्यपरक शिक्षा को बढ़ावा देना।
- भारतीय ज्ञान परंपरा और संस्कृति का संरक्षण।
- आलोचनात्मक एवं रचनात्मक चिंतन का विकास।
- कौशल आधारित शिक्षा को प्रोत्साहन।
- सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास।

यह नीति केवल ज्ञान अर्जन पर नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के व्यवहारिक, नैतिक और सामाजिक विकास पर भी बल देती है।

3. संत साहित्य का स्वरूप एवं विशेषताएँ :

संत साहित्य हिंदी साहित्य की भक्ति धारा का महत्वपूर्ण अंग है। यह साहित्य सरल भाषा, लोकजीवन और मानवीय मूल्यों पर आधारित है। संत कवियों ने समाज सुधार को अपना प्रमुख उद्देश्य बनाया।

4. नई शिक्षा नीति के संदर्भ में संत साहित्य की उपयोगिता –

4.1 मूल्य पर शिक्षा में उपयोगिता :

नई शिक्षा नीति नैतिक एवं मूल्यपरक शिक्षा को अत्यधिक महत्व देती है। संत साहित्य विद्यार्थियों में नैतिकता, सहिष्णुता और सामाजिक जिम्मेदारी विकसित करता है।

उदाहरण के लिए, रैदास का साहित्य समानता और मानवता का संदेश देता है। रैदास का मूल्य शिक्षा से संबंधित प्रसिद्ध दोहा :–

"मन चंगा तो कठौती में गंगा।"।

यदि मन पवित्र और विचार अच्छे हों, तो साधारण स्थान भी पवित्र बन जाता है। बाहरी आडंबर से अधिक महत्व मन की शुद्धता और अच्छे आचरण का है।

मूल्य शिक्षा के संदर्भ में उपयोगिता :

यह दोहा विद्यार्थियों को आंतरिक शुद्धता, नैतिकता, सादगी और सदाचार का संदेश देता है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि सच्ची महानता व्यक्ति के अच्छे विचार और व्यवहार में होती है, न कि बाहरी दिखावे में।

4.2 भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के संरक्षण में उपयोगिता :

नई शिक्षा नीति भारतीय संस्कृति और परंपरा को शिक्षा का आधार बनाने पर बल देती है। संत साहित्य भारतीय संस्कृति और लोकजीवन का सशक्त दर्पण है। इसके अध्ययन से विद्यार्थियों में सांस्कृतिक चेतना विकसित होती है।

4.3 सामाजिक समरसता के विकास में उपयोगिता :

संत साहित्य सामाजिक भेदभाव और जातिवाद का विरोध करता है। यह समाज में समानता और भाईचारे की भावना को विकसित करता है। वर्तमान समय में सामाजिक तनाव को कम करने के लिए संत साहित्य अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

4.4 आलोचनात्मक चिंतन के विकास में उपयोगिता :

नई शिक्षा नीति आलोचनात्मक चिंतन को बढ़ावा देती है। संत कवियों ने समाज की रूढ़ियों और अंधविश्वासों का तार्किक विरोध किया। इससे विद्यार्थियों में प्रश्न करने और तार्किक सोच विकसित करने की प्रेरणा मिलती है।

4.5 मानसिक एवं आध्यात्मिक संतुलन में उपयोगिता :

आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में विद्यार्थियों में मानसिक तनाव बढ़ रहा है। संत साहित्य आत्मचिंतन, संतोष और आध्यात्मिक शांति का संदेश देकर मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

5. संत साहित्य की सीमाएँ :

यद्यपि संत साहित्य अत्यंत उपयोगी है, फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं :–

- आधुनिक तकनीकी शिक्षा से प्रत्यक्ष संबंध कम दिखाई देता है।
- वर्तमान पीढ़ी में संत साहित्य के प्रति रुचि अपेक्षाकृत कम हो रही है।
- कुछ संत वाणियाँ प्रतीकात्मक एवं दार्शनिक होने के कारण विद्यार्थियों के लिए जटिल हो सकती हैं।
- आधुनिक पाठ्यक्रमों में संत साहित्य को पर्याप्त स्थान नहीं मिल पा रहा है।

6. सुझाव :

- विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर संत साहित्य आधारित मूल्य शिक्षा को बढ़ावा दिया जाए।

- संत साहित्य को आधुनिक शिक्षण तकनीकों से जोड़कर पढ़ाया जाए।
- विद्यार्थियों के लिए संत साहित्य पर आधारित कार्यशालाएँ एवं संगोष्ठियाँ आयोजित की जाएँ।
- संत साहित्य को भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत पाठ्यक्रम में समुचित स्थान दिया जाए।
- संत साहित्य के माध्यम से नैतिक एवं सामाजिक शिक्षा को व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत किया जाए।

7. उपसंहार :

नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा को मूल्यपरक, समावेशी और सांस्कृतिक आधार प्रदान करने का प्रयास करती है। संत साहित्य मानवता, नैतिकता, सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक चेतना का अमूल्य स्रोत है। यह विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों, आलोचनात्मक चिंतन और सामाजिक जिम्मेदारी का विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में संत साहित्य अत्यंत उपयोगी और प्रासंगिक है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इसे आधुनिक शिक्षा प्रणाली के साथ प्रभावी रूप से जोड़ा जाए ताकि भारतीय शिक्षा अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी हुई रहते हुए वैश्विक स्तर पर भी सशक्त बन सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 National Education Policy 2020,. शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (द.क.). कबीर. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. शुक्ल, रामचंद्र. (द.क.). हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा।
4. वर्मा, रामकुमार. (द.क.). हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास.
5. सिंह, नामवर. (द.क.). भक्ति आंदोलन और हिंदी साहित्य.
6. कबीरदास. (द.क.). बीजक.
7. रैदास. (द.क.). रैदास वाणी.
8. दादूदयाल. (द.क.). दादू.।

मो. 7297017193

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 132-137

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्वि में शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन

ममता कुमारी, पी.एच.डी. शोद्यार्थी
डॉ. वंदना दुआ, सह आचार्य
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

सारांश :-

प्रस्तुत शोध में विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्वि में शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन" किया गया हैं। अध्ययन में प्राप्त आंकडों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गए है। प्रस्तुत शोध में श्री गंगानगर जिले के अंगेजी व हिन्दी उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् 400 विद्यार्थियों को वर्गीकृत क्रम मे यादृच्छिक विधि के अन्तर्गत लाटरी विधि से चयनित किया गया है। "उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता अभिवृति मापने के लिए डॉ. नागाप्पा पी. एवं डॉ. सी. आर. राव, तथा विद्यालयी वातावरण मापने के लिए स्वयं द्वारा निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है। निष्कर्ष रूप में उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्वि में शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं विद्यालयी वातावरण में सार्थक अन्तर पाया जाता है।

मुख्य शब्द – उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थी, वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्वि, शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं विद्यालयी वातावरण।

प्रस्तावना :-

वर्तमान युग विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग माना जाता है। आज का मानव पूर्णतः वैज्ञानिक वातावरण में जीवन यापन कर रहा है। विज्ञान ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। आधुनिक समाज में ऐसा कोई क्षेत्र शेष नहीं है जहाँ विज्ञान का प्रभाव दृष्टिगोचर न होता हो। उद्योग, कृषि, संचार, परिवहन, चिकित्सा, अभियांत्रिकी तथा दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं के विकास में विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विज्ञान ने मानव जीवन को अधिक सरल, सुविधाजनक और व्यवस्थित बनाया है। वर्तमान समय में समाज की संरचना और प्रगति विज्ञान पर अत्यधिक निर्भर हो गई है। यही कारण है कि आज विज्ञान के बिना आधुनिक सभ्यता की कल्पना करना संभव नहीं प्रतीत होता।

विज्ञान ने केवल भौतिक संसाधनों और तकनीकी विकास को ही गति प्रदान नहीं की है, बल्कि इसने मानव के विचारों, दृष्टिकोण और व्यवहार में भी व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किया है। विज्ञान के प्रभाव से विश्व स्तर पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं वैज्ञानिक अभियोग्यता का विकास हुआ है। वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश राष्ट्र अपने नागरिकों में वैज्ञानिक सोच और वैज्ञानिक अभियोग्यता विकसित करने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की उन्नति और विकास की गति का मूल्यांकन उसकी वैज्ञानिक प्रगति के आधार पर किया जाता है। जिस देश के नागरिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संपन्न होते हैं, वह देश शिक्षा, तकनीक, अनुसंधान और आर्थिक विकास के क्षेत्र में अधिक प्रगति करता है।

आधुनिक समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में अनेक वैज्ञानिक घटनाओं और प्रक्रियाओं का अनुभव करता है। इन घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन, गहन चिंतन, सूक्ष्म अवलोकन तथा तार्किक विश्लेषण व्यक्ति को वास्तविक ज्ञान की ओर अग्रसर करता है। ज्ञान अर्जन की इसी प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति में वैज्ञानिक अभियोग्यता का विकास होता है। वैज्ञानिक अभियोग्यता से अभिप्राय उस क्षमता से है, जिसके माध्यम से व्यक्ति विज्ञान विषय को समझने, वैज्ञानिक तथ्यों का विश्लेषण करने तथा भविष्य में विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियाँ प्राप्त करने में सक्षम बनता है। विज्ञान के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए केवल सामान्य बुद्धि पर्याप्त नहीं होती, बल्कि वैज्ञानिक अभियोग्यता का होना अत्यंत आवश्यक माना जाता है।

यदि अध्यापक की मनोवृत्ति सकारात्मक, प्रोत्साहनात्मक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त होती है, तो विद्यार्थी विज्ञान विषय के प्रति अधिक रुचि विकसित करते हैं तथा उनकी वैज्ञानिक अभियोग्यता में वृद्धि होती है। इसके विपरीत नकारात्मक मनोवृत्ति विद्यार्थियों की वैज्ञानिक सोच और जिज्ञासा को प्रभावित कर सकती है। इसी प्रकार विद्यालयी वातावरण भी विद्यार्थियों के समग्र विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यालयी वातावरण से आशय उन सभी भौतिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों से है, जो विद्यार्थियों के व्यवहार, व्यक्तित्व, विकास और अधिगम को प्रभावित करती हैं।

अनुकूल विद्यालयी वातावरण विद्यार्थियों को स्वतंत्र चिंतन, प्रयोग, खोज तथा नवाचार के अवसर प्रदान करता है, जिससे उनकी वैज्ञानिक अभियोग्यता का विकास होता है। दूसरी ओर, प्रतिकूल वातावरण विद्यार्थियों की जन्मजात क्षमताओं और संभावनाओं को बाधित कर सकता है। अनेक प्रतिभाशाली विद्यार्थी उचित मार्गदर्शन, संसाधनों और प्रेरणादायक वातावरण के अभाव में अपनी क्षमताओं का पूर्ण विकास नहीं कर पाते। यदि उन्हें उपयुक्त शैक्षिक वातावरण, प्रेरणा तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त मार्गदर्शन प्राप्त हो, तो वे विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्धि में अध्यापक की मनोवृत्ति तथा विद्यालयी वातावरण दोनों का अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली योगदान होता है।

प्रस्तुत शोध का महत्व :–

शिक्षा एक सतत सामाजिक प्रक्रिया है, जिसका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार, विचार एवं व्यक्तित्व में ऐसे सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न करना है, जो न केवल उसके व्यक्तिगत विकास में सहायक हों, बल्कि समाज की उन्नति और प्रगति में भी योगदान प्रदान करें। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति ज्ञान, कौशल, मूल्यों तथा दृष्टिकोणों का विकास करता है, जिससे वह अपने जीवन को अधिक सार्थक एवं उपयोगी बना सकता है। किसी भी राष्ट्र

की प्रगति उसकी शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यदि शिक्षा की प्रक्रिया प्रभावशाली, सुदृढ़ तथा उद्देश्यपरक हो, तो उसके माध्यम से विद्यार्थियों में अपेक्षित परिवर्तन सरलता से लाए जा सकते हैं। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, व्यवहारिक तथा वैज्ञानिक बनाया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निरंतर अनुसंधान और अध्ययन की आवश्यकता होती है, जिससे शिक्षा के विभिन्न आयामों को समझा जा सके तथा उनमें सुधार किया जा सके।

वर्तमान समय विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। आज के समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तार्किक चिंतन तथा समस्या समाधान क्षमता का अत्यधिक महत्व है। विज्ञान शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य केवल वैज्ञानिक तथ्यों का ज्ञान प्रदान करना नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभियोग्यता का विकास करना भी है। वैज्ञानिक अभियोग्यता विज्ञान शिक्षण का अत्यंत महत्वपूर्ण परिणाम मानी जाती है, क्योंकि यह विद्यार्थियों को तार्किक एवं वस्तुनिष्ठ रूप से सोचने की क्षमता प्रदान करती है। वैज्ञानिक अभियोग्यता एक ऐसी संज्ञानात्मक अवधारणा है, जो व्यक्ति के मानसिक गुणों, आदतों और प्रवृत्तियों के समन्वय से निर्मित होती है। यह व्यक्ति को किसी समस्या या परिस्थिति के प्रति वैज्ञानिक ढंग से प्रतिक्रिया करने तथा उचित निष्कर्ष तक पहुँचने में सक्षम बनाती है।

वैज्ञानिक अभियोग्यता में अनेक महत्वपूर्ण गुण सम्मिलित होते हैं, जैसेकृसत्यता एवं सटीकता के प्रति निष्ठा, बौद्धिक ईमानदारी, स्वतंत्र चिंतन, तार्किक निर्णय क्षमता, आलोचनात्मक दृष्टिकोण, कारण एवं प्रभाव संबंधों की समझ तथा वैज्ञानिक तथ्यों के प्रति जिज्ञासा। ये गुण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास तथा उनके भविष्य के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विशेष रूप से उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए वैज्ञानिक अभियोग्यता का विकास अत्यधिक आवश्यक है, क्योंकि यह अवस्था उनके बौद्धिक एवं व्यावसायिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसी स्तर पर विद्यार्थियों की रुचियाँ, क्षमताएँ और भविष्य की दिशा निर्धारित होने लगती है।

विद्यालयी वातावरण भी विद्यार्थियों के बौद्धिक एवं वैज्ञानिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यालय का अनुकूल, प्रेरणादायक तथा सहयोगात्मक वातावरण विद्यार्थियों को स्वतंत्र चिंतन, प्रयोग एवं नवाचार के लिए प्रेरित करता है। दूसरी ओर प्रतिकूल वातावरण विद्यार्थियों की वैज्ञानिक क्षमता के विकास को सीमित कर सकता है। व्यवहारिक स्तर पर शोधकर्त्री ने यह अनुभव किया कि सभी विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभियोग्यता समान रूप से विकसित नहीं होती। अनेक विद्यार्थी विज्ञान विषय के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण नहीं रखते, जिसके कारण वे अपने शैक्षिक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाते।

समस्या कथन –

"विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्वि में शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन।"

अध्ययन में प्रस्तुत तकनीकी शब्दों की व्याख्या –

वैज्ञानिक अभियोग्यता – सामान्यतः वैज्ञानिक अभियोग्यता का अर्थ कुछ मानवीय गुणों से युक्त उस अभियोग्यता से लिया गया है जो लगभग सभी वैज्ञानिकों में पाया जाता है एवं जिसके द्वारा वे मानव कल्याण के लिये उपयोगी अनुसंधान कार्य में सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि आमतौर

पर सभी वैज्ञानिक अपने शोध कार्य में समान रूप से सोचते हैं एवं कार्य करते हैं। उनके सोचने एवं कार्य करने की पद्धति में विश्वास को वैज्ञानिक अभियोग्यता कहते है। अर्थात् विज्ञान के प्रति सच्चा दृष्टिकोण वैज्ञानिक चिन्तन स्वतंत्र विचारण एंव अटूट विश्वास उत्पन्न होना ही वैज्ञानिक अभियोग्यता है।

मनोवृत्ति – मनोवृत्ति किसी व्यक्ति वस्तु या घटना के प्रति एक खास ढंग से कार्य करने की एक मानसिक अभियोग्यता होती है। मनोवृत्ति में व्यक्ति में अनुकूलन–प्रतिकूलन की दिशा पर किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना के प्रति प्रतिक्रिया करने की इच्छा पायी जाती है। मनोवृत्ति की एक विशेष गुण, यह है कि मनोवृत्ति अर्जित होती है।

विद्यालयी वातावरण – विद्यालयी वातावरण वह वातावरण होता है जिसमें विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाया जाता है जहाँ उसका सर्वांगींण विकास होता है साथ ही उसे विशिष्ट क्रियायों तथा ज्ञान से प्रशिक्षित किया जाता है। विद्यालयी वातावरण का तात्पर्य न केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित है बल्कि उन सभी प्रक्रियायों को समाहित किया जाता है जो बालक के सर्वांगींण विकास से जुड़ी होती है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

(1) अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता के घटक वैज्ञानिक रूचि के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(2) अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकपनाएँ :–

(1) अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(2) अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श :– प्रस्तुत शोध में न्यादर्श के रूप में श्री गंगानगर जिले के अंगेजी व हिन्दी उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् 400 विद्यार्थियों को वर्गीकृत क्रम मे यादृच्छिक विधि के अन्तर्गत लाटरी विधि से चयनित किया गया है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण :–

1. वैज्ञानिक अभियोग्यता अभिवृति (डॉ. नागाप्पा पी. एवं डॉ. सी. आर. राव)
2. विद्यालय वातावरण मापनी (स्वनिर्मित)

प्रदत्तों का विश्लेषण व विवेचन –

(1) अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी संख्या – 1

चर	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी मूल्य	सार्थकता का स्तर
अंग्रेजी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता	200	50.13	5.154	2.174	स्वीकृत
अंग्रेजी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता	200	52.84	4.869		

व्याख्या :– परिकल्पना संख्या 1 के अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता में अन्तर देखने हेतु विश्लेषित आकड़ों के आधार पर टी का मान ज्ञात किया गया जिसके अनुसार अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता के मध्यमान व प्रमाप विचलन के आधार पर प्राप्त टी मान सार्थकता के स्तर 0.01 के सारणी मान से कम है। अतः यहॉ पर निर्धारित परिकल्पना स्वीकृत की जाती है और निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

(2) अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी संख्या – 2

चर	संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी मूल्य	सार्थकता का स्तर
अंग्रेजी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों का विद्यालय वातावरण	200	19.34	2.364	2.067	स्वीकृत
अंग्रेजी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों का विद्यालय वातावरण	200	19.57	2.421		

परिकल्पना संख्या 2 के अनुसार अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण में अन्तर देखने हेतु विश्लेषित आकड़ों के आधार पर टी का मान ज्ञात किया गया जिसके अनुसार अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण के मध्यमान व प्रमाप विचलन के आधार पर प्राप्त टी मान सार्थकता के स्तर 0.01 के सारणी मान से कम है। अतः यहॉ पर निर्धारित परिकल्पना स्वीकृत की जाती है और निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण में सार्थक अन्तर पाया नहीं जाता है।

शैक्षिक सुझाव –

1. जब विद्यार्थी अपना विकास निश्चित वैज्ञानिक पद्धति से करेगें तो उनका भविष्य उज्जवल होगा क्योंकि वैज्ञानिक तरीके से निश्चित सत्य की प्राप्ति होगी।
2. जिज्ञासा व खोजपरक दृष्टिकोण का संवर्धन होगा।
3. विद्यार्थियों में तार्किक एवं विश्लेषणात्मक सोच का विकास करना।
4. विज्ञान विषय के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण बढ़ना।
5. समस्याओं को वैज्ञानिक ढंग से हल करने की क्षमता में वृद्धि होगी।

भावी शोध हेतु सुझाव –

1. प्रस्तुत शोध में मात्र 400 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। इससे बड़ा न्यादर्श भी लेकर अध्ययन किया जा सकता है।
2. प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्री ने अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों व शिक्षकों को ही शामिल किया है। आगामी शोध के लिए अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों व शिक्षकों को लेकर शोध कार्य किया जा सकता है।
3. प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्री ने अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों को ही शामिल किया है। आगामी शोध के लिए उच्च प्राथमिक विद्यालय, महाविद्यालय के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्धि में शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं विद्यालयी वातावरण के सम्बन्ध को लेकर भी लिया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :

1. कपिल, एच. के. (2006), सांख्यिकी के मूल तत्व, आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
2. गुप्ता, मीरा (2010), उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षण में प्रभावी एव अप्रभावी अध्यापकों की मनोवृत्ति तथा व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन, पीएच डी. शोध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर।
3. गुप्ता, एम.पी. (2007), धामिर्क अभिवृत्ति, वैज्ञानिक अभियोग्यता एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में किशोरों की पर्यावरणीय जागरूकता का अध्न, पीएच.डी. शोध, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा।
4. डॉ. शर्मा, वी. एस. ''शिक्षा मनोविज्ञान'' साहित्य प्रकाशन आगरा (2004)
5. डॉ. अरोड़ा रीता, सुदेष मारवाह (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान एवं सांख्यिकी'' शिक्षा प्रकाशन, जयपुर पृष्ठ संख्या (407–430)
6. डॉ. एम पन्नीर सेल्वम डॉ. एम मुतमीज सेल्वन, "वैज्ञानिक अभियोग्यता के संबंध में माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की विज्ञान में उपलब्धि स्तर मे अंतर का अध्ययन", जर्नल ऑफ रिसर्च एंड मेथडइन एजुकेशन, पृष्ठ संख्या 5–8.
7. सिंह, रामपाल और शर्मा, ओ.पी. (2008), शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकीय, आगरा अग्रवाल पब्लिकेशन।
8. वर्मा, अरूण, मालवीय, डी.एस., निगम, भूपेन्द्र (2008), उच्च माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की विज्ञान में उपलब्धि पर पर्यावरण के प्रभाव का अध्ययन, भारतीय आधुनिक शिक्षा 2008, पृष्ठ संख्या 88–95

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 138-144
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

Semi-Feudal Intermediaries and Rural Exploitation in British India

Naziya Kouser
Ph.D Research Scholar,
VBU, Hazaribag, Jharkhand, 825301

Abstract :

This article on Bengal's semi-feudal economy shows how agrarian institutions, colonial rules and socio-economic change interacted in a complex way. During this period, British colonial power strengthened, significantly replacing customary land ownership practices. With the establishment of the Permanent Settlement in 1793, a class of zamindars was established and acted as an intermediary between the peasants and the British administration. Although this system aimed to speed up revenue collection, farm labourers were often exploited and denied their rights.(1)

With increased power due to their high status, zamindars imposed high taxes on peasants, making them more vulnerable to fluctuations in the economy. The rigid land-ownership structure and lack of significant agricultural progress further entrenched poverty and indebtedness among the rural population. Despite these difficulties, this era also saw the rise of social mobilisation and resistance as several peasant movements began to oppose the exploitative tactics of the zamindars. In addition, new economic dynamism emerged in the second half of the 19th century, driven by growth in urban centres, the spread of cash crops, and the growing influence of European and local merchants. These changes gradually resulted in a more complex economic environment in which emerging capitalist practices and traditional feudal relations coexisted. This article looks at how Bengal's semi-feudal economy affected the way of life of rural communities and set the stage for subsequent socio-political conflicts.(2)

Keywords :

Zamindars, Permanent Settlement, Indigo, Indebtedness, Famine, Semi feudalism.

Introduction :

The term feudalism is derived from the Latin word "feudum", meaning a fief or piece of land

allotted by a lord to a vassal in exchange for specific obligations.

The essence of feudalism lies in the hierarchical structure of the relationship between lords and vassals. In this construct, lords would assign land or fiefs to vassals in exchange for loyalty, military service and other commitments. Vassals, in turn, could divide their land and grant it to sub-vassals or peasants, who would perform the same duties. (3)

Under the permanent settlement introduced by Lord Cornwallis, the landlords were made the owners of the land, who were working as feudal lords. For their own convenience, the big feudal lords appointed Pattanidars, Darpattanidars, small landlords, and prominent people of the village under them to collect land revenues, who represented those landlords and were working in the region of Bengal as semi-feudal lords. This was a link that was taking the form of middlemen. These people were profiteers. The common people were already troubled by the policies of the British era. On top of this, these usurers, profiteers, moneylenders, and moneylenders were actively playing their role in the entire region of Bengal as semi-feudal lords. They caused a lot of economic damage to the lives of the people of Bengal. (4)

Semi-feudalism has existed as an intermediary class in society. Semi-feudalism was the upper middle class of Bengal. It was in the form of landlords, moneylenders, middlemen, contractors etc. During the British period, they had control over not only Bengal but the entire Indian society. Unfortunately, most historians consider the British rule to be the cause of India's poverty, helplessness and indebtedness, which is not completely true. These semi-feudal lords have played a major role in bringing about helplessness, hunger and famine in India, or in making the economic condition of the society from bad to worse. When Lord Cornwallis implemented the Permanent Settlement, under this, the landlords started getting the right to own land, after which these landlords who were present in the form of feudal lords started keeping small traders, moneylenders, middlemen etc. under them to live a more luxurious life, who started causing economic damage not only to Bengal but to the entire Indian society like termites. (5)

Expansion of the Subject :

Therefore, we can analyse the semi-feudal economy in the following manner which is as follows:-

System of Land Revenue :-

Lord Cornwallis implemented the Permanent Settlement of 1793 with the intention of stabilizing income collection for the British Raj. Because it fixed land revenue payments, zamindars who raised more money than the allotted amount may keep the excess. Although at first this arrangement helped the British financially, it also created the conditions for zamindars to take advantage of peasants

in a semi-feudal system.

The Zamindars' role :-

Zamindars became a dominant class of landlords. Their symbiotic relationship with the colonial administration stemmed from their shared goals, which made exploitation easier. They frequently cared more about making as much money as possible than about the well-being of the peasantry, which resulted in harsh tactics like evictions and excessive rents.

- **Beginning of the Zamindari System in the Mughal Period :**

We get to see the Zamindari system only in the Mughal period. At that time, the Zamindars were given a piece of land from which they collected rent from the farmers. But this system was not fully developed and the power of the Zamindars was kept limited.

- **Farmers protest and demand for land reform :**

The farmers revolted against various types of exploitation by the landlords. Apart from this, during the independence of India, the farmers demanded land related reforms and also demanded the abolition of the Zamindari system.

- **Land reforms carried out after the independence of India :**

After the independence of India, the Government of India implemented land reforms. Under this, the Zamindari system was abolished and the land belonging to the Zamindars was acquired and the farmers were given ownership rights over their land.

Change in the role of landlords :

After the land reforms carried out by the Indian government, the power of the landlords was reduced considerably. Many landlords adopted modern methods of farming and started working in collaboration with the farmers.

Some landowners have even turned their lands into tourist spots. (6)

The Permanent Settlement :-

Lord Cornwallis considered the landlords as the owners of the land and in 1790 AD he made a 10-year arrangement. In 1793 AD he made this arrangement permanent. Under this arrangement, the landlords were given land for a fixed amount. After the death of the landlord, his descendants were made the heir. The landlords had to pay this amount before sunset at a fixed time. Otherwise, his land was auctioned. This was called the sunset method.

This arrangement had many far reaching consequences and through this, for the first time in India, official services were divided into three clear parts. Revenue, judicial and commercial services were separated. The Zamindari system was the gift of the British. It was created to fulfill economic objectives. This system was also known by the names Jagirdari, Malguzari, Biswedari etc.(7) The

company got many benefits from this system. Which are as follows.

1. This helped the company to receive a fixed amount on a fixed date. Hence, it was easy to prepare the company's budget.
2. Now the company was freed from the responsibility of collecting land revenue from every farmer. Now it started focusing on empire expansion and commerce trade.
3. Now the landlords became loyal to the company. Due to which whenever anti-British movements arose, the landlords supported it.
4. This increased the agricultural production. Due to which Bengal province now flourished and became a prosperous province.

There were many drawbacks of the permanent settlement :

1. The rate of revenue was so high that the peasants were not able to pay the tax on time, due to which they had to lose their farms. This led to public resentment.
2. Excess land went to city residents at the time of auction.
3. This system left the peasants at the mercy of the landlord. The landlord started exploiting the peasants intensely and the farmers' ownership rights over the land were snatched away.
4. This system increased the company's income. But the company had to spend a large part of its profit on salaries and other expenses. Hence, it was also going through financial crisis.
5. Due to having contact only with the landlord, the common farmers were not able to have any contact with the British, due to which they continued to be exploited. [8]

Displacement and indebtedness of farmers :-

In colonial Bengal, the peasants faced many problems due to semi-feudalism and the zamindari system. The biggest problem among these was the displacement of the peasants and the increasing indebtedness.

Displacement of farmers :

After the landlords got control over the land, they used to collect arbitrary taxes from the farmers, due to which many times the farmers were unable to pay the rent and were forced to leave their land. Apart from this, the landlords often used to collect many additional taxes from the farmers, such as forced labour, gifts etc. [9]

Indebtedness of farmers :

Due to the high rate of rent, farmers had to take loans from moneylenders to fulfill their needs and the moneylenders gave loans at very high interest rates, due to which the debt of the farmers increased instead of decreasing. Therefore, farmers, burdened with debt, took more loans, due to which they got trapped in the trap of indebtedness and finally, farmers had to sell their land when they

were unable to repay the loan.

Impact on agricultural production due to semi feudalism :

Semi-feudalism and the zamindari system in colonial Bengal not only affected the lives of the peasants but also had a significant impact on agricultural production. Due to high rent, the peasants did not have enough money for basic necessities like fertilizers, seeds and irrigation. Zamindars often forced the peasants to grow crops of their choice, which led to a shortage of food crops and reduced agricultural diversity. Apart from this, the lack of means of irrigation also created a situation of natural calamities like drought and floods, due to which the peasants had to face a lot of difficulties and the farmers were not able to get a fair price for their produce, because the landlords and traders used to levy many additional taxes from them and exploited them a lot.

The peasants were forced by the landlords to cultivate indigo, due to which they had to give up their food crops and cultivate indigo, which led to a shortage of food crops and the peasants had to depend on the markets for food supply. Apart from this, the soil was repeatedly treated with various types of chemicals for indigo cultivation, which reduced the fertility of the soil.

Hence, many revolts were carried out by the peasants against this, such as the Indigo Revolt of 1859-60.

Production of Agriculture :-

Bengal's agricultural output changed during colonial administration to produce cash crops for export, like jute and indigo. Farmers became more susceptible to market swings as a result of this change in consumption habits, since their income was now dependent on global commodity prices rather than local need. [10]

Employment and the Rural Economy :-

There were few options for alternate work in the mostly agrarian economy that the semi-feudal structure produced. On zamindar farms, a large number of laborers were seasonal laborers, which made their lives unstable. This dearth of work opportunities impeded economic mobility and prolonged poverty. [11]

Colonial Policies' Effects :-

Colonial policies frequently caused disruptions to customary farming methods, which in turn led to famines, most famously the 1943 Great Bengal Famine. Bengal's resilience was undermined by the emphasis on cash crops, insufficient infrastructure, and investments in regional agriculture.[12]

Class Relations and Caste :-

Due to the close ties between caste and labor and land ownership, the semi-feudal economy served to maintain the existing caste hierarchies. Because caste identities and socioeconomic position

were entwined, inflexible social structures were created, which prevented lower caste members from moving up the social ladder and continued inequality.

Peasant Movements and Resistance :-

Peasants developed a resistance mentality as a result of the harsh circumstances. A number of uprisings, including the Indigo Revolt (1859) and the Santhal Rebellion (1855–56), brought attention to the unhappiness with zamindars and colonial authorities. These movements had a major role in the peasantry's increasing consciousness of socio-political rights.

The rise of the middle class :-

Due to the shifts in the economy, a new middle class consisting of professionals with education, business owners, and merchants emerged. The basis for nationalist movements and calls for change was laid by this class, who started to question zamindari practices and colonial exploitation.

Conclusion :

From 1793 until 1905, colonial Bengal's semi-feudal economy was defined by the intricate interactions between social hierarchies, colonial regulations, and agricultural practices. The zamindari system, which gave landowners control over collecting land revenue and frequently resulted in the exploitation of peasant labor, was cemented in 1793 with the establishment of the Permanent Settlement. Small farmers and laborers, who faced mounting debt and hardship, were disenfranchised as a result of this system, which solidified a class of wealthy landowners.

The British colonial government exacerbated social unrest and economic inequality by placing a higher priority on revenue collection than on rural welfare. Consequently, there was a fall in agricultural output and a rise in rural misery, leading to an increasingly sluggish agrarian economy.

Referencing :

1. Mukherjee, Mriluda. Peasants in India's non Revolutions. New Delhi : Sage Publication, 2004.
2. Roy, Trithankar. The Economic History of India 1857-2010. New Delhi : Oxford University Press, 2020.
3. Bhattacharya, Sabyasachi. Economic History of Modern India 1850-1947. New Delhi : Rajkamal Publication Private Limited, 1990.
4. Sarkar, Samita. Agrarian Relations in Bengal 1765-92. Aligarh : Aligarh Muslim University, 1994-95.
5. Dutt, Rameshchandra. The Economic History of India, Volume 1. s.l. : Ministry of Information and Broadcasting Government of India, 2006.
6. Guha, Ranjit. Elementry Aspects of Peasant Emergency in Colonial India. Durham and London

: UK University Press, 1999.

7. Dube, Ishita Banerjee. A History of Modern India. New York : Cambridge University Press, 2014.
8. Stock, Eric. The Peasant and the Raj. Cambridge, UK : Cambridge University Press, 1978.
9. Patnaik, Utsa. Semi Feudalism in British Bengal. s.l. : Orient Longman, 1993.
10. Singh, Narendra Krishna. The Economic History of Bengal from Plassey to the Permanent Settlement Vol. 1. Kolkata : Farma K.L.M. Private Limited, 1965.
11. Datta, K.K. Unrest against British Rule in Bihar1831-1859. Bihar, Patna : Suprintendent Secretariat Press, 1957.
12. Sarkar, Sumit. Aadhunik Kaal Paryavaran, Arehvyavastha, Sanskriti Bharat 1880-1947 Bharat. New Delhi : Rajkamal Publications Private Limited, 2021.

Mob.- 7061939604

Email:- naziyakouser181996@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 145-149

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

पर्यावरण चेतना और रमेश पोखरियाल निशंक का साहित्य

बिमला शर्मा
सहायक आचार्य, हिन्दी,
राजकीय महाविद्यालय जोगिन्दर नगर, मण्डी (हि.प्र.) 175015

बीज शब्द : मानव, प्रकृति, वृक्ष, पर्वत, वसुधा, क्षणिक, विनाश।

प्रस्तावना :

मानव के अस्तित्व के लिए प्राकृतिक परिवेश का विशेष महत्व है। वह प्रकृति ही है जो मां की भान्ति पोषण करती है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही सबसे मानव इस धरती पर आया तभी से उसने स्वयं को प्रकृति की गोद में हो पाया है। जन्म होते ही जिस प्रकार एक शिशु स्तन्नों को खोजता है ठीक वैसे ही उसने जल, वायु, जीव, वनस्पति और खनिज आदि प्राकृतिक संसाधनों आदि में अपने लिए जीवन शक्ति की तलाश की। प्रकृति और मानव के मध्य सम्बन्ध सूत्रता हो जाने से ही संस्कृति का भी आविर्भाव हुआ है। प्रकृति में छिपे देवत्व के विषय में गोविन्द चातक ने लिखा है– 'प्रकृति के प्रति रहस्य और देवत्व का भाव आदि मानव की चेतना का मुख्य अंग था। प्रकृति का विराट, सुन्दर और वैभवशाली स्वरूप उसमें देवत्व का अनुमान कराता रहा है। मानव आकाश, जल, भूमि आदि में उसकी सत्ता की विद्यमानता महसूस करता है। प्रकृति का सौन्दर्य परम सुन्दर का ध्यान करवाने और सृष्टि के भीतर स्रष्टा को देखने, जानने का अवसर देता है।' इस आधार पर यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि मानव और प्रकृति का अन्योन्याश्रित संबंध है। किसी भी देश, प्रदेश की प्राकृतिक अवस्थाएं उस क्षेत्र के निवासियों की आवश्यकताओं का निर्धारण करती है, साथ ही उनके स्वभाव को विकसित करती हैं। ग्रह, नक्षत्र, पर्वत–पहाड़, नदी–नाले, वृक्ष, वन, जीव–जन्तु, वनस्पतियां आदि प्रकृति के अभिन्न अंग हैं। मानव का विकास इन्हीं प्राकृतिक वस्तुओं से हुआ है। प्रकृति के इन्ही अभिन्न अंगों से देश, प्रेम, की शुरूआत होती है। जो अपने आस–पास के प्राकृतिक परिवेश से प्रेम न करता हो वह अपने प्रदेश व देश से क्या ही प्रेम करेगा। प्रकृति प्रेम के अभाव में राष्ट्र प्रेम संभव नहीं।

इस विषय में आयार्च रामचन्द्र शुक्ल का कथन है– 'यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, लता, गुल्म, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा। सबको वह चाह भरी वे यदि दस दृष्टि से देखेगा। जो यह नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है बने–ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देश प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि भाइयों बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?' स्पष्ट है कि अपने देश, प्रदेश के प्रति प्रेम भाव महसूस करने का उत्कृष्ट उदाहरण यही है कि व्यक्ति अपने देश प्रेम में मानव व मानवेतर प्राणियों, वृक्षों, जल, जंगल जमीन, निर्झर, पर्वत पहाड़ आदि

से कितना परिचित है। अन्यथा राष्ट्रप्रेम का दावा एकदम निरर्थक है। मानव अपने प्रारम्भ से ही प्रकृति का सहघ्यात्री रहा है। प्रकृति ही वह साधन है जिसने मनुष्य की समस्त जरुरी आवश्यकताओं को पूरा किया है। इसलिए यह अति आवश्यक हो जाता है कि मनुष्य और प्रकृति के बीच गहरे संबंध में सन्तुलन बनाकर रखा जाए। पुराने समय में जब मनुष्य लगभग एकाकी जीवन व्यतीत करता था तथा तमाम् तरह के स्वार्थों से दूर था और उसके भीतर तेरे मेरे का भाव नहीं था तो यह सन्तुलन कायम था, परन्तु धीरे–धीरे जैसे जैसे मनुष्य विकास करता गया तो प्रकृति के साथ यह सन्तुलन भी बिगड़ता गया।

इसी बदलते, बिगड़ते सन्तुलन के मध्य प्रकृति और पर्यावरण के बचाव एवं संरक्षण का भाव 'निशंक' के साहित्य में के स्पष्टता देखने को मिलता है। क्योंकि रमेश पोखरियाल 'निशंक' का प्रकृति में गहरा संबंध रहा है। गढ़वाल क्षेत्र के 'पिनानी' गांव में जनमे पोखरियाल ने अपनी प्रथम सांस ही नगाधिराज हिमालय की गोद में ली है। इसी प्राकृतिक परिवेश का प्रभाव है कि लेखक प्रकृति के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हो गया है। प्रकृति के प्रति जो सुकुमारता प्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानंदन पन्त में है ठीक वैसी ही सुकुमारता निशंक के प्राकृतिक वर्णन में मिलती है। इसी सुकुमारता और संवेदनशीलता को इनके साहित्य में स्पष्टतः देखा जा सकता है। प्रतिवर्ष जंगल आग की चपेट में आकर राख बनते जा रहे हैं। दावानल की इस बढ़ती समस्या से लेखक अत्यन्त दुखी है। अपनी कहानी 'अंतिम सांस तक' के पात्र चंदू के माध्यम से लेखक इसकी सुरक्षा की याचना करता है। इस विषय में आशुतोष द्विवेदी ने लिखा है– 'वह लोगों को पुकारता है, चीखता चिल्लाता है। जब कोई नहीं आता है तो वह स्वयं ही उस जंगल को जलने से बचाने के लिए कूद पड़ता है। यही भाव लेखक के करूण हृदय की मार्मिकता को बयां करता।'

जिन पर्वतों, पहाड़ों, घने जंगलो, पवित्र जल स्रोतों के कारण यह हिमालय भूमि देवत्व धारण किए हुए खड़ी हैं उन प्राकृतिक संसाधनों का विनाश करके हम देवभूमि के देवत्व को कैसे सुरक्षित रख पाएंगे। वर्तमान में यह भी एक बड़ा और महत्वपूर्ण प्रश्न है? लेखक इस विषय को लेकर भी चिन्तित दिखाई पड़ता है और इस सब को रोकने का प्रयत्न करता है। निम्न पंक्तियों के माध्यम से निशंक की चिन्ता देखी जा सकती है :

''प्रकृति की दुर्दशा को, देख मन टूट जाता है,
पलायन रोकने को पर्वतों से यत्न करता है,
सदा वसुधा का धानी रंग हो, यह कल्पना जिसकी,
रमा का ईश वह निशंक, कविता का विधाता है।''

स्पष्ट है कि निशंक अपनी जन्मभूमि के प्राकृतिक परिवेश की निरन्तर होती दुर्दशा के प्रति अत्यन्त चिन्तित रहते हैं जिसका प्रमाण ये पंक्तियां प्रस्तुत करती है। उत्सर्ग नामक कहानी में निशंक 'मेंढ़ापणी' नामक स्थान की प्राकृतिक सुन्दरता के विषय में लिखते हैं 'मेंढ़ापणी की खड़ी–चढ़ाई को पार करना मांउट एवरेस्ट पर फतह हासिल करने जैसा था। कमोवेश इन पहाड़ी पगडंडियों की चौड़ाई ज्यूरांगली की आत्मघाती हथेली की मानिन्द चौड़ाई लिए, नितांत संकरी व सर्पाकार गलियों से मेल खाती थी। अन्तर सिर्फ इतना था कि यहां बांज, बुरांस, अंय्यार के घने जंगलों की सूरज की किरणों भी भेद कर जमीन नहीं छू पाती थी।' स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में जंगल इतने विशाल और घने थे कि न सूर्य की रोशनी जमीन तक पहुंच पाती थी न ही एक छोर से दूसरा छोर ही दिखाई पड़ता था। परन्तु वर्तमान में निरन्तर होते कटान व आगजनी से जंगल खत्म किए जा रहे हैं।

साथ ही अवैध कब्जों और विकास के नाम पर हो रहे अवैध कटान से भी प्राकृतिक संपदा अपनी विलुप्ती के कगार पर खड़ी हो चुकी है।

निशंक अपने साहित्य के माध्यम से प्रकृति के विनाश की समस्या से शब्द दर शब्द चिन्तित प्रतीत है और अपने साहित्य के माध्यम से प्रकृति के संरक्षण के प्रति जागरूक करने का प्रयास करते हैं। वनों के निरन्तर होते विनाश की पीड़ा को प्रदर्शित करते हुए तथा वृक्ष के दर्द को पूरी भावुकता से महसूस करते हुए 'वृक्ष की जुबानी कविता' में वे लिखते हैं –

"मैं वृक्ष होकर भी सदा
तुम्हारे लिए जीता रहा
तुम्हारे हर घात प्रतिघात
मूक बन सहता रहा
किन्तु तुम सर्वश्रेष्ठ घोषित होकर भी
तुच्छ ही रह गए।
हम बेजुबान होकर
तुम्हारा जुल्म सह गए।"

पर्यावरण चेतना की यह कविता एक उत्कृष्ट उदाहरण है। निरन्तर विनाश भी भूमि पर विचरण करते वृक्ष की वेदना को अत्यन्त मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है। यह एक संवेदनशील और प्रकृति प्रेमी व्यक्ति ही हर सकता है। जिस करूणा है संवेदना के घरातल पर जाकर इन्होंने प्रकृति का करूण गान किया है उसका सीधा प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है। क्योंकि मानव स्वयं ही प्रकृति के पांच तत्वों से निर्मित हुआ है। उसके जीवन को प्रकृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। निशंक का साहित्य ग्रामीण अंचल और परिवेश के वर्णन से भरा पड़ा है। ये प्रकृतिपरक प्रभाव इसलिए भी हो सकता है कि इनका जन्म इन्हीं वनस्पतियों और पर्वत श्रृंखलाओं के सानिध्य में हुआ है। इसलिए ही वह प्रकृति के प्रति इतना संवेदनशील और चिन्तित है। यह चिन्ता स्वाभाविक भी प्रतीत होती है। क्योंकि प्राकृतिक परिवेश से परिपूर्ण प्रदेश से वे संबंध रखते हैं वहां के गांव पलायन और विस्थापन की समस्या से जूझ रहे हैं। जब पूरे गांव पलायन की चपेट में आकर खाली हो जाएंगे तो प्रकृति का संरक्षण कौन करेगा। यह पीड़ा भी इनके साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होती है। यथा :

"कहां रहे वे ग्राम निलय अब/तरूण जवानी कहां रही।
कहां गए वो बाग बगीचे/मोहक हरियाली कहां गई।
अब तो नन्ही किलकारी गुम कहीं शेष बूढ़ी लाठी
गांव गांव वीरान पड़े हैं/रोती धरती है मारी।
रोजगार पाने को जो भी गांव छोड़कर जाता है।
जन्मभूमि की ममता त्यज वह कहां लौटकर आता है।"

प्रकृति संरक्षण की चिन्ता और उसके निरन्तर विनाश की पीड़ा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। इनका साहित्य मानवीय जीवन में प्रकृति के महत्व को गहरे स्तर पर अभिव्यक्त करता है। मनुष्य जीवन में जो कुछ भी आनन्ददायी है वह प्रकृति ही है। उसने जो कुछ भी जीवन में प्राप्त किया है वह प्रकृति से ही सीखकर किया

है। क्योंकि प्रकृति तो पूर्णतः निरपेक्ष है वह मानव की सहचरी बनकर चलती रही है। लेकिन मानव जैसा बुद्धिशील प्राणी आज प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहता है। इसलिए वह निरन्तर कभी विकास के नाम पर और कभी अपनी व्यक्तिगत स्वार्थलिप्सा के चलते उसका अत्यधिक दोहन कर रहा है। जो निरन्तर हमारे पर्यावरण को गहरे स्तर पर प्रभावित करता जा रहा है।

वर्तमान समय में आदमी अतिभौतिकतावादी और बाजारवादी बनता जा रहा है। वह अपने और केवल अपने नीजी हितों तक सीमित होता जा रहा है। जिसके कारण वह निरन्तर प्रकृति से दूर होता जा रहा है। प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति उसकी पीड़ा और संवेदना न के बराबर होती जा रही है। परिणाम ये होता जा रहा है कि वह दुख, बीमारी, मानसिक तनाव, जैसी विकृतियों का शिकार होता जा रहा है। प्रकृति के महत्व के विषय में स्वयं पोखरियाल ने लिखा है– 'मैंने यह महसूस किया है कि मनुष्य प्रकृति के जितना निकट रहेगा, जितना उसे आत्मसात् करेगा, उसे उतना ही धैर्य, पुरुषार्थ और ऊर्जा प्राप्त होती है। हमारी अनेक समस्याओं के समाधान के लिए प्रकृति हमें ताकत देती है। जब–जब मानव ने प्रकृति से अपनी दूरीयां बढ़ाई है तब–तब विकृति पैदा हुई है और विध्वंस का कारण बनी है।

स्पष्ट है कि स्वयं कवि, कथाकार निशंक प्रकृति के प्रति अत्यन्त सजग हैं वे इसके संवेदनशील और विध्वंसकारी दोनों रूपों से भली–भान्ति परिचित हैं। इसी परिचय का परिणाम है कि उसका साहित्य प्रकृति परक अधिक वन पड़ा है। अपनी कविता 'तुम आओ तो सही' के माध्यम से इन्होंने इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि यदि मनुष्य प्रकृति के समीप आएगा तो निश्चित तौर पर उसे, शान्ति सवर्गिक आनन्द और जीवन का नया लक्ष्य प्राप्त होगा। पंक्तियां है –

''तो आओ न!
तुम क्षणिक भौतिक सुखो को छोड़कर
कुछ देर प्रकृति के पास आओ
इसके सानिध्य में असीम शान्ति
अलौकिक सुख और जीवन के उद्देश्य को पाओ।''

स्पष्ट है कि निशंक अपने साहित्य के माध्यम से मानव जाति को प्रकृति के निकट लाने के लिए कटिबद्ध है ताकि हम अपने पर्यावरण को विनाश की वेदी पर चढ़ने से बचा सके। प्रकृति और मानव जीवन को जोड़ने का यह प्रयत्न निशंक जी का अपना वैशिष्टय है। इन्होंने प्राकृतिक परिवेश से प्राप्त विम्बों के द्वारा, नदी, निर्झर, जंगल, वृक्ष, वायु और ग्रामीण परिवेश को मानव जीवन के साथ संलग्न करते हुए अपने साहित्य में उजागर करने का प्रयत्न किया है। इन्होंने पर्यावरण और प्रकृति के से जुड़े तमाम प्रश्नों को मानव जीवन के एक व्यापक हिस्से की तरह सीमाहीन विस्तार प्रदान किया है। प्रकृति के लगभग समस्त उपादानों के प्रति उनका जिज्ञासु भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। वृक्षों, वनों की का मानवीकरण करते हुए, उनकी व्यथा और मनुष्य द्वारा उनके विनाश के विषय में इन्होंने अपनी कविता 'वृक्ष की कहानी, वृक्ष की जुबानी' में बड़ी ही मार्मिकता से उकेरा है।

''अपनी महत्वकांक्षाओं के लिए/तुमने हमारे सपने तोड़ दिए।
किसी को जड़ से लेल दिया।
कई को अधकटा छोड़ गए।

सुनो! हमने कभी हमारे लिए/जीवन को नहीं जीया।
तुमने ही अहर्निश/विष का घूंट भी पिया।
न खा सके हम कभी/आजीवन स्वयं के फल को/न पा सके वो ठंडी छांव।
कभी पल दो पल को।''

मनुष्य जाति ने किस हद तक प्रकृति का दोहन अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए किया है, यह वृक्षों और वनों की पीड़ा, उनकी व्यथा को स्पष्ट परिलक्षित करता है। अपनी इसी स्वार्थलिप्सा के कारण मानव जाति को प्रकृति के विकराल और विनाशकारी स्वरुप का सामना भी करना पड़ा है। रमेश पोखरियाल निशंक का सम्पूर्ण साहित्य प्राकृतिक दोहन की पीडा और उसके संरक्षण के प्रति चेतन से परिपूर्ण है। इन्होंने अपने साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण, ग्रामीण पलायन की समस्या, को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। प्रकृति के समस्त उपादानों के संरक्षण और बचाव के प्रति इनकी चिन्ता, इनके साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होती है। ये सचमुच ही प्रकृति और पर्यावरण के चितेरे साहित्य सर्जक हैं।

ग्रन्थानुक्रमणिका :

1. गोविन्द चातक, संस्कृति समस्या और सम्भावना, दिल्ली तक्षशिला प्रकाशन, 1996, पृ. 01
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कविता क्या है?, सरस्वती पत्रिका, 1909
3. पीयूष कुमार द्विवेदी, रमेश पोखरियाल निशंक का साहित्य विमर्श, कानपूर : अमन प्रकाशन, 2021, पृ. 13
4. पीयूष कुमार द्विवेदी, रमेश पोखरियाल निशंक का साहित्य विमर्श, कानपूर अमन प्रकाशन, 2021, पृ. 14
5. रमेश पोखरियाल निशंक, निशंक की लोकप्रिय कहानियां, दिल्ली प्रभाव प्रकाशन, 2022, पृ. 104
6. पीयूष कुमार द्विवेदी, रमेश पोखरियाल निशंक का साहित्य विमर्श, कानपूर अमन प्रकाशन, 2021, पृ. 16
7. वही, पृ. 23
8. रमेश पोखरियाल निशंक, हिमालय के आंचल में प्रकृति का स्पर्श, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 2002, पृ. 22
9. वही, पृ. 33
10. वहीं, पृ. 57—58

मोबाईल नं— 8219230931

Gmail : bimlasharma30931@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 150-155

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

प्राचीन भारतीय गणराज्यों में लोकतंत्र की अवधारणा के तत्त्व

प्रो. रचना सिंह, प्रोफेसर,
दिग्विजय सिंह, शोध छात्र,
मध्य कालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कालेज प्रयागराज।

सारांश :

वर्तमान विश्व में प्रचलित लोकतांत्रिक सिद्धांतों का विकास उत्तर पश्चिम विश्व की देन माना जाता है। अधिकांश विद्वानों का यह मानना है कि इन लोकतांत्रिक सिद्धांतों का विकास अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांति से हुआ। जहां अमेरिका ने अपने लोगों को मूल अधिकार प्रदान किए तो वहीं फ्रांसीसी क्रांति ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुता का नारा दिया। स्वतंत्रता, समानता और बंधुता का नारा वास्तविक लोकतंत्र की पहचान है। भारत में स्वतंत्रता, समानता और बंधुता जैसे सिद्धांत प्राचीन समय से ही विद्यमान थे। प्राचीन भारतीय गणराज्य परंपरा लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति की नींव थी। उस पद्धति में गणराज्य के प्रमुख का चयन सर्वसाधारण द्वारा चुनी गई परिषदों के माध्यम से होता था। वैदिक काल में सभा और समिति जैसी परिषदें राजा पर युक्तियुक्त नियंत्रण रखती थीं। राज्य में संचालित नीतियों के संबंध में लिए गए निर्णय सर्वसम्मति से पारित होते थे। किसी विवादित विषय पर मतदान जैसी प्रक्रिया का उपयोग भारतीय गणराज्यों में विद्यमान लोकतांत्रिक परंपरा में होता था। इन गणराज्यों में न्यायिक व्यवस्था भी लोकतांत्रिक पद्धति के आधार पर कार्य करती थी। इन गणराज्यों में नागरिक सेना की अवधारणा विद्यमान थी अर्थात् राज्य के नागरिक ही कृषि और व्यापार जैसे कार्य करने के साथ–साथ सैनिक के रूप में भी कार्य करते थे। राजा न्यायिक, प्रशासनिक और नैतिक रूप से प्रजा के प्रति उत्तरदायी होता था। यद्यपि उस समय वर्तमान जैसी मंत्रिमंडल की व्यवस्था विद्यमान नहीं थी और सभी लोगों को मतदान का भी अधिकार प्राप्त नहीं था। राज्यों में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा विद्यमान थी जो लोकतांत्रिक शासन पद्धति की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस शोध पत्र में प्राचीन भारत में विद्यमान लोकतांत्रिक सिद्धांतों के तत्वों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है और साथ ही साथ भारतीय गणराज्य में विद्यमान लोकतांत्रिक प्रक्रिया को उद्बोधित करने का प्रयास किया गया है।

प्रमुख शब्द – प्राचीन भारत, राजा, गणराज्य, लोकतंत्र, परिषद्, समिति।

बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर के अनुसार, "लोकतंत्र का अर्थ, एक ऐसी जीवन पद्धति से है जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुता मूल सिद्धांत के रूप में होते हैं। अब्राहम लिंकन के अनुसार लोकतंत्र, "जनता का

जनता के द्वारा और जनता के लिए" स्थापित शासन प्रणाली है। यद्यपि कुछ विद्धानों ने आधुनिक लोकतंत्र की उत्पत्ति पश्चिम से मानी है परंतु भारतीय समाज में लोकतांत्रिक चेतना का विकास प्राचीन समय से ही विद्यमान था। ऋग्वेद से लेकर बौद्ध काल तक भारतीय समाज में संवाद, बहस, सामूहिक निर्णय, जनसुनवाई जैसे कार्यक्रम संपन्न होते थे। भारतीय राजनीतिक चिंतन में लोकतांत्रिक चेतना भारतीय समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक विविधताओं एवं गौरवशाली परंपराओं के विकास पर आधारित है। जिसमें स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुता, सहभागिता और सहिष्णुता जैसे तत्व सम्मिलित रहे है। भारतीय लोकतांत्रिक परंपरा की जड़े वैदिक युग, बौद्ध–जैन परंपरा, मध्यकालीन संत साहित्य और आधुनिक राष्ट्रवादी आंदोलन तक फैली हुई है। लोकतंत्र को एक सामान्य शासन प्रणाली के रूप में देखा जाता है किंतु भारतीय परिपेक्ष्य में एक जीवनदृष्टि, सामाजिक नैतिकता और सांस्कृतिक स्वायत्तता का प्रतीक रहा है।[1] भारत की सामाजिक संरचना, दर्शन और ऐतिहासिक अनुभवों ने लोकतंत्र की अवधारणा को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। भारतीय लोकतांत्रिक परंपरा के बीच प्राचीन भारतीय ग्रंथों और सामाजिक व्यवस्थाओं में गहराई से निहित है।वैदिक काल में सभा और समिति दो प्रमुख संस्थाएं थी, जिन्हें 'जनता की आवाज' और निर्णय लेने वाले निकाय के रूप में देखा जाता है। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि राजा इन निकायों की मंत्रणा पर कार्य करता था। यह व्यवस्था इंगित करती है कि राज्य व्यवस्था निरंकुश नहीं थी बल्कि उस पर नियंत्रण रखने के लिए इन निकायों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

गणराज्य परंपरा विशेष कर बौद्ध और जैन ग्रंथों से स्पष्ट होती है। 'दीघ निकाय' जैसे बौद्ध ग्रंथों में लिच्छवी, शाक्य और मल्ल जैसे गणराज्यों का वर्णन मिलता है, जहां सामूहिक नेतृत्व, प्रतिनिधियों का चयन और निर्णय हेतु बहस की परंपरा विद्यमान थी। यह उस काल की अत्यंत उन्नत राजनीतिक चेतना को दर्शाता है।[2] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित है कि इन गणराज्यों में निर्णय बहुमत से लिए जाते थे। यह सामूहिक नेतृत्व की अवधारणा आज के लोकतंत्र के 'पार्लियामेंट्री सिस्टम' के समान मानी जा सकती है। राजा न्यायिक, प्रशासनिक तथा नैतिक रूप से प्रजा के प्रति उत्तरदायी होता था।

प्राचीन भारत में विद्यमान लोकतांत्रिक अवधारणा :

ऋग्वेद में वर्णित सभा और समिति विभिन्न वर्गों की भागीदारी के साथ–साथ अनेक प्रकार की सामूहिक चर्चाओं का भी उल्लेख करती है। प्राचीन भारतीय गांव अक्सर पंचायतों, जमीनी स्तर की सभाओं द्वारा शासित होते थे जो निर्णय लेने और विवाद समाधान के लिए जिम्मेदार होते थे। यह परिषदें लोकतंत्र के सूक्ष्म जगत का प्रथम नेतृत्व करती थी, जहां स्थानीय मुद्दों को सामूहिक विचार–विमर्श के द्वारा सुलझाया जाता था। बौद्ध धर्म भारत के इन लोकतांत्रिक आदर्श को एशिया के विभिन्न हिस्सों में ले गया। बौद्ध मठ एवं सभाएं जहां सर्वसम्मति से निर्णय लिए जाते थे लोकतांत्रिक प्रथाओं को प्रतिबिंबित करती थी। एशिया के कई देशों जैसे श्रीलंका, तिब्बत और थाईलैंड की शासन प्रणालियों इन आदर्शों से प्रभावित हुई।[3] मौर्य शासको, विशेष रूप से सम्राट अशोक ने करुणा और सामान्य भलाई के लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ तालमेल रखते हुए अहिंसा और सामाजिक कल्याण के सिद्धांतों को अपनाया। इसके उपरांत यदि हम कौटिल्य द्वारा लिखित अर्थशास्त्र की राजव्यवस्था का अध्ययन करते हैं तो उसमें यह सर्वविदित तथ्य उपस्थित होता है कि कौटिल्य की राज व्यवस्था कल्याणकारी राज्य के बहुत निकट है जो लोकतंत्रात्मक अवधारणा का ही एक तत्व है।[4]

महाभारत का शांति पर्व राजनीतिक ज्ञान की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। शांति पर्व राजनीतिक

विचारधारा, सिद्धांतों, जीवन–दर्शन, अंतरराष्ट्रीय संबंधों के सूत्रों, आंतरिक तथा वाह्य राजनीतिक गतिविधियों के संचालन की कलाओं का सार संग्रह है। महाकाव्य महाभारत के शांति पर्व में अनेक ऐसी अवधारणा सूत्र मिलते हैं जो लोक कल्याणकारी राज्य स्थापित करने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है की महाकाव्य में लोकतंत्र शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। इसमें लोकतंत्र के स्थान पर गणतंत्र शब्द का प्रयोग हुआ है। गण मूलतः स्थानीय स्तर पर होते हैं और गण से मिलकर संघ बनता है। संघबद्धता ही गणतंत्र का आधार बताई गई है।[5] इस व्यवस्था में राजा समस्त लोक (गण) के कल्याण हेतु निरंतर प्रयास करता है। इसी क्रम वाल्मीकि रामायण से भी लोकतंत्रात्मक अवधारणा की पुष्टि होती है। वस्तुतः रामायण काल, राजतंत्रों का काल था किंतु रामायण में परिषद, समिति तथा संसद तीन शब्दों का उल्लेख मिलता है। परिषद का उल्लेख अमात्य कांड तथा युद्ध कांड में है। समिति और संसद का उल्लेख केवल युद्ध कांड में है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये एक ही संस्था के नाम थे। इस परिषद के सदस्य प्रतिष्ठित एवं विद्वान होते थे तथा उनका चुनाव सामान्य नागरिकों में से किया जाता था। इन परिषदों में नगरों के व्यापारिक समूह और जनपदों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे।[6] रामायण में परिषद एवं जनपदों के उल्लेख से प्रतीत होता है कि उस समय भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के तत्व मौजूद थे।

प्राचीन भारतीय गणराज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था में मौजूद लोकतांत्रिक सिद्वांत :

प्राचीन साहित्य से प्राप्त तथ्यों के आधार पर स्पष्ट होता है की ईसा से लगभग छठवीं सदी पहले अर्थात बुद्धकालीन भारत में गंगा घाटी के मैदान में कई गणराज्य उपस्थित थे जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के सिद्धांतों का पालन करते थे। उस अवधि में यहां विभिन्न प्रकार की समितियां, सभाओं एवं गणों की चर्चा भी मिलती है। डायोडरस ने भी अपने ग्रंथ में भारत के उत्तर मध्य क्षेत्र में अनेक गणराज्य की उपस्थिति का उल्लेख किया है। इन गणराज्य में कपिलवस्तु के शाक्य, अलकप्प के बुलि, मिथिला के विदेह, पिप्पलिवन के मोरिय, कुशीनगर के मल्ल और वैशाली के लिच्छवी तथा अनेक छोटे–मोटे गणराज्य शामिल थे, जहां लोकतांत्रिक परंपरा स्थापित हो चुकी थी।[7] गणराज्यों से तात्पर्य उन राज्यों से है जिन में 'राजा' शब्द का प्रयोग गणराज्य अध्यक्ष के लिए किया जाता था। उस समय राजा का निर्वाचन करने वाले भी स्वयं को राजा कहते थे क्योंकि वे राजा का निर्वाचन करते थे और स्वयं भी उसे पद के लिए निर्वाचित हो सकते थे। महाभारत के शांति पर्व के अनुसार गणराज्य में प्रत्येक व्यक्ति जन्म से समान था और समस्त कालों में भी समानता होती थी। यद्यपि उच्च पदों पर राजवंश के लोग बैठते थे परंतु उनका दृष्टिकोण लोकतांत्रिक था। गणराज्य में नागरिकों की स्वतंत्रता और समानता की पूर्ण स्थापना की गई थी। गणराज्य में सरकारी पदों पर नियुक्ति योग्यता के आधार पर ही की जाती थी। गणराज्य में शासन और सत्ता के अधिकार किसी व्यक्ति विशेष के हाथों में केंद्रित नहीं थे, अभी तो वह एक गण या समूह या परिषद के हाथों में होते थे।[8]

प्रत्येक गणराज्य की एक व्यवस्थापिका सभा होती थी जिससे 'संस्थागार' कहते थे। संस्थागार राजवंश एवं अन्य वर्गों के प्रतिनिधियों का प्रतिनिधित्व होता था और राज्य प्रशासन के नियमों के अनुसार अधिवेशन होता था। अधिवेशन तभी पूर्ण माना जाता था जब उसमें सदस्यों की निश्चित संख्या उपस्थित हो अर्थात गणपूर्ति का सिद्धांत लागू होता था। यदि विवादित विषय जिस पर संस्थागार निर्णय नहीं ले पाता था तो उस विषय को कुशल और अनुभवी सदस्यों की एक समिति को निर्णय हेतु सौंपा जाता था। विवादित विषय पर बहुमत से निर्णय होता था और इसके लिए मतदान प्रणाली का उपयोग किया जाता था जिसे 'येम्भूटयायिकेन' कहा जाता था।

मतदान की समस्त विधि को भली–भांति पूर्ण करने वाला अधिकारी 'शलाका ग्राहायक' कहलाता था। संस्थागार के अधिवेशन एवं बैठकों की सभी कार्रवाइयों को लिखा जाता था और इसके लिए अलग से कर्मचारी और अधिकारीगण नियुक्त होते थे। संस्थागार के अधिवेशन में आज के समान ही दर्शकों को सभा की कार्यवाही देखने की व्यवस्था भी थी। गणराज्य में आज के प्रशासन की भांति न्याय व्यवस्था भी प्रजातांत्रिक थी। न्याय व्यवस्था में अट्ठकुलक या आठ न्याय के अधिकारियों के सामूहिक निर्णय की व्यवस्था की गई थी।[9]

गणराज्यों की विशालता के कारण स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहित किया जाता था। विशाल नगरों में स्थानीय स्वशासन प्रणाली थी। प्रत्येक बड़े नगर में एक परिषद आधुनिक नगर पालिका के समान होती थी। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वशासन हेतु छोटे कस्बो एवं ग्रामों में आधुनिक ग्राम पंचायत के समान स्थानीय परिषद विद्यमान थी। नगर और ग्राम की संस्थाएं अपने आंतरिक कार्यों में लगभग स्वतंत्र रहती थीं। छोटे–छोटे गणराज्यों के संघ को 'संघात' कहते थे। इस संयुक्त संघ की एक सभा होती थी जिसे 'संघातगण' कहते थे। इस सभा में प्रत्येक गणराज्य के प्रतिनिधि होते थे। इस सभा का अध्यक्ष निर्वाचित होता था जिसे' संघ मुख्य' कहते थे। आंतरिक मामलों में 'संघात' के गणराज्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र थे। गणराज्य और उनकी प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली तत्कालीन राजनीतिक जागरूकता एवं अभिरुचि का घोतक है।[10]

बौद्ध काल में गणराज्यों में शासन व्यवस्था लोकतांत्रिक एवं विकेंद्रित थी। परंतु वर्तमान व्यवस्था के समान प्रत्येक नागरिक को मतदान का अधिकार नहीं था। शासन का संचालन विशिष्ट वर्ग के लोग करते थे जो क्षत्रिय होते थे। यद्यपि कुछ गणराज्य में शासन का संचालन ब्राह्मण या वैश्य भी करते थे। के.पी. जायसवाल प्राचीन समाजों को 'रिपब्लिक' या 'प्रजातंत्र' की संज्ञा दी है। इनका मानना था कि इन गणराज्य में नागरिक सेना की अवधारणा विद्यमान थी अर्थात कि राज्य में संपूर्ण जनता सशस्त्र थी। यही नागरिक खेती करते थे और उद्योग धंधे भी चलाते थे। इससे स्पष्ट है कि इन गणों में जनता से अलग सेना नहीं थी अर्थात जनता संप्रभु थी। इस क्रम में प्राचीन भारत के वैशाली में स्थित लिच्छवी गणराज्य का सर्वप्रथम उल्लेख किया जा सकता है जहां दुनिया का पहला गणतंत्र कायम हुआ था। वास्तव में विश्व को सर्वप्रथम लोकतंत्र का ज्ञान करने वाला स्थान वैशाली ही है। लिच्छवी गणतंत्र के संविधान से यह ज्ञात होता है कि आज जो लोकतांत्रिक प्रदेशों में दो सदनीय व्यवस्था है जिसमें जनता द्वारा चुने गए सांसद नीतियां बनाते हैं। ऐसी ही व्यवस्था वैशाली गणराज्य में विद्यमान थी। वहां उस समय छोटी–छोटी समितियां विद्यमान थीं जो गणराज्य के अंतर्गत आने वाली जनता के लिए नियम और नीतियां बनाती थी। लिच्छवी गणतंत्र में राज्य की समस्त शक्ति जनता में ही थी, राजा का अस्तित्व तथा परंतु उसकी स्थिति जनता के सेवक के रूप में मान्य थी।[11] यहां प्रजा की भलाई करना ही एकमात्र उद्देश्य था और शासक जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चुना जाता था। राज्यशक्ति समूह में निहित थी और अनेक सदस्यों से बनी संस्था परिषद कहलाती थी। परिषद की कार्यवाही जिस भवन में होती थी उसे संस्थागार' कहा जाता था। इसे भारत की पहली एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसद माना जाता है जहां लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया जाता था।[12]

परिषद की बैठक के लिए गणपूर्ति की व्यवस्था थी। प्रायः प्रत्येक प्रस्ताव पर गहन वाद विवाद होता था तथा बहुमत या सर्वसम्मत से ही कोई ठोस निर्णय लिया जाता था। परिषद के अनुपस्थित सदस्यों को यह अधिकार था कि वह लिखकर अपना मत दे सकते थे। उनके मतों को गुप्त रखा जाता था। इस लिच्छवी गणतंत्र

में गुप्त मतदान पद्धति भी विद्यमान थी।[13] लिच्छवी गणतंत्र में न्यायालय की समुचित और श्रृंखलाबद्ध व्यवस्था थी। आधुनिक युग की तरह दीवानी,फौजदारी तथा राजस्व न्यायालय विद्यमान थे। अंतिम न्यायालय का नाम 'एटथाकुलाका' था। अंतिम न्यायालय की नजर में अगर कोई दोषी व्यक्ति निर्दोष पाया गया तो उसे रिहाई दे दी जाती थी, परंतु दोषी पाए गए व्यक्ति को कठोर सजा दी जाती थी।[14] इसके अतिरिक्त लिच्छवी गणतंत्र में स्थानीय स्वशासन की भी व्यवस्था थी। नगर की समुचित व्यवस्था तथा शांति रक्षा के लिए 'नगरतुलिक' का पद आरक्षित था। इस तरह लिच्छवी गणतंत्र आदर, मतैक्य, दृढ़ता, सहिष्णुता शांति सौहार्द जैसी विशेषताओं से परिपूर्ण था। भगवान बुद्ध ने भी वैशाली राज्य के सुंदर शासन व्यवस्था की प्रशंसा मुक्त कंठ से की थी।[15]

निष्कर्ष :

प्राचीन भारतीय गणराज्य में लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति के गुण व्यापक रूप से विद्यमान थे। वस्तुतः वर्तमान में जिस प्रकार लोकतांत्रिक देश में राज्य प्रमुखों का चयन जनता के द्वारा किया जाता है। उसी प्रकार गणराज्य परंपरा में राज्य प्रमुख का चयन जनता द्वारा चुनी गई परिषदों द्वारा होता था। इन परिषदों के सदस्य स्वयं भी राजा बनने की योग्यता रखते थे। वस्तुत प्राचीन गणराज्य में राज्य प्रमुख की चयन प्रक्रिया सहभागितामूलक थी। वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली में नीति संबंधित निर्णय बहुमत द्वारा लिए जाते हैं, इस प्रकार भारतीय गणराज्यों की परंपरा में भी नीति निर्धारण का कार्य बहुमत के माध्यम से होता था। गणराज्यों में लोक कल्याण की अवधारणा भी विद्यमान थी जिसका उल्लेख कौटिल्य और पाणिनि के ग्रंथों साथ–साथ जैन एवं बौद्ध ग्रंथों से भी मिलता है। वर्तमान लोकतांत्रिक पद्धति में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा एक महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक सिद्धांत है। प्राचीन भारतीय न्यायिक पद्धति में भी लोकतांत्रिक प्रक्रिया का समावेश था और निर्णय लेने के लिए समिति की व्यवस्था हुआ करती थी जिसे 'अट्ठकुलक' के नाम से जाना जाता था। नागरिकों में स्वतंत्रता, समानता और बंधुता की भावना भी विद्यमान थी। ग्राम स्तर पर एवं नगर स्तर पर सभी निर्णय लेने के लिए विभिन्न प्रकार की सभाएं और परिषदीय व्यवस्था होती थी। यद्यपि तत्कालीन गणराज्य व्यवस्था में वर्तमान लोकतांत्रिक पद्धति की तरह सार्वभौम मताधिकार की प्रक्रिया विद्यमान नहीं थी और मंत्रिमंडलीय अवधारणा का भी विकास नहीं हो पाया था। इस प्रकार प्राचीन गणतंत्रीय व्यवस्था में सामूहिक स्वशासन की अवधारणा विद्यमान थी और इस रूप में प्राचीन भारत की प्रशासनिक व्यवस्था लोकतांत्रिक एवं विकेंद्रीकृत थी।

संदर्भ सूची :

1. देव, अर्जुन, देव इंदिरा समकालीन विश्व का इतिहास 1890– 2009, ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशन, 2009, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 19
2. एल्डर्स, सैमुअल जे., सिटीजन एंड पॉलिटिक्स : मॉस पॉलीटिकल बिहेवियन इन इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1978, पृष्ठ 121
3. कुमार, रियान,रिफ्लेक्शंस ऑफ बुद्धिस्म ऑन मॉडर्न डेमोक्रेसी : ए 21 सेंचुरी पर्सपेक्टिव, जर्नल ऑफ़ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस खंड–27, 2022, पृष्ठ 1–11
4. कु. प्रतिभा, प्राचीन भारत में लोकतंत्ररू संस्कृत साहित्य में लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एडवांस एंड अप्लाइड रिसर्च, खंड–11, नवंबर–दिसंबर 2023

5. व्यास, वेद महाभारत खंड–5 शांति पर्व (पाण्डे, रामनारायण, अनुवाद), गीता प्रेस गोरखपुर, 2020, पृष्ठ 337, 8
6. सिंघल, सुरेश चंद्र, प्राचीन भारतीय राजनीतिक, चिंतन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2014, पृष्ठ 88
7. शुक्ल, वीरेंद्र, राजनीतिशास्त्र, भारती भवन, पटना 2012, पृष्ठ 03
8. लुणिया, बी. एन., प्राचीन भारतीय संस्कृति, लक्ष्मी नारायण प्रकाशन, आगरा, 2003 पृष्ठ 213
9. वही, पृष्ठ 220
10. वही, पृष्ठ 224
11. शुक्ल, वीरेंद्र, राजनीतिशास्त्र, भारती भवन, पटना, 2012 पृष्ठ 04
12. श्रीवास्तव, एल. पी., भारत में लोकतंत्र की यात्रा, प्रदीप (दैनिक हिंदी समाचार पत्र), पटना, 25 दिसंबर 1985
13. शुक्ल, वीरेंद्र, वही, पृष्ठ 04
14. सिंह, प्रभुनाथ प्रसाद, लोकतांत्रिक राजनीति, आलोक भारती प्रकाशन, पटना, 2018, पृष्ठ 13
15. श्रीवास्तव, एल.पी., वही।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 156-160

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

पर्यावरण संरक्षण में वृक्ष एवं वनस्पतियों का योगदान

सुनीता कलौनी
असिस्टेंट प्रोफेसर– संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय, बलुवाकोट।

देवभूमि के गौरव से गौरवान्वित उत्तराखण्ड की संस्कृति को वैशिष्ट्य प्रदान करने में वृक्ष एवं वनस्पतियों का महत्वपूर्ण योगदान है। सभी धर्मों के मूल में प्रकृति के संरक्षण को विशेष महत्व दिया गया है, क्योंकि हमारा यह जीवन प्रकृति की ही अनुपम देन है। प्रकृति के दिए गए वरदानों में वृक्ष एवं वनस्पतियों को अत्यधिक सम्मान प्राप्त है। प्रकृति मानव जीवन की आधारशिला है। जैव विविधता जीवन को जीने के लिए अनिवार्य है। वृक्ष एवं वनस्पतियों को पृथ्वी के हरित फेफड़े कहा गया है। संस्कृत साहित्य मे प्रकृति एवं वृक्ष संरक्षण का विशेष महत्व रहा है। विशेष रूप से वृक्षों को जीवन का आधार माना गया है, मानव का प्राचीनकाल से ही प्रकृति के साथ अन्तरावलम्बित सम्बन्ध रहा है। क्योंकि प्रकृति ही मनुष्य की सबसे बड़ी शिक्षिका है। भारतीय संस्कृति ^^वसुधैव कुटुम्बकम्** के सिद्धान्त को मानती है, जोकि विश्व बन्धुत्व की भावना राष्ट्र के प्रति भक्ति को भी प्रदर्शित करती है। वृक्ष एवं वनस्पतियों को भारतीय संस्कृति में केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि देवताओं के समान माना गया है। स्वच्छ पर्यावरण ही जीवन को स्वस्थ, सम्पन्न एवं आनन्दमय बनाता है। पर्यावरण के संतुलन में वृक्षों एवं वनस्पतियों का विशेष महत्व है, मत्स्य पुराण में कहा गया है –

“दशाकूप समा वापी, दशवापी समोहृदः। दशहृद समः पुत्र, दशपुत्रसमो द्रुमः” ।।

अर्थात् – दस कुओं के समान एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के समान एक तालाब, दस तालाबों के समान एक पुत्र है, और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष होता है।

वेद, उपनिषद, महाकाव्य तथा काव्य साहित्य में प्रकृति को माता, सहचरी, और जीवनदाता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इसीलिए संस्कृत साहित्य को मूल स्त्रोत माना गया है। संस्कृत साहित्य में केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं अपितु पर्यावरण के भी स्त्रोत है। इसमें प्रकृति को "माता" तथा मनुष्य को उसका पुत्र कहा गया है।

अथर्ववेद के "भूमि" सूक्त में पृथ्वी के प्रति श्रद्वा व्यक्त की गई है –

“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः”।

पर्यावरण की सुरक्षा के लिए वनस्पति एवं वृक्षारोपण को आवश्यक मानते हुये ऋग्वेद में वनस्पति आरोपण का स्पष्ट आदेश दिया गया है– वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्। वृक्ष एवं वनस्पतियों के बिना हम पृथ्वी में जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। "**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्यां, वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिता**" का शंखनाद करने वाली वैदिक संस्कृति प्राचीन काल से ही राष्ट्र की भावनात्मक एकता की दृढ़ स्थापना के लिये प्रबल रही हैं।

प्राचीन ऋषियों ने पर्यावरण की शुद्धता एवं पवित्रता बनाये रखने के लिए इसे यज्ञ व धर्म–कर्म से जोड़ा, जिसका अनुसरण करना भविष्य व भावी पीढ़ी के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी है। क्योंकि यज्ञ के द्वारा अग्नि में प्रयोग की गई सामग्री, हवन के दौरान उठता हुआ धुँआ, जिसमें कि समस्त समिधाओं का प्रयोग किया जाता है, जोकि वातावरण को शुद्ध बनाने में सक्षम है, यह हवा में उडकर वायु, जल, पृथ्वी, अन्तरिक्ष सहित समस्त वातावरण को शुद्ध व जीवनोपयोगी बनाता हैं। और पर्यावरण संरक्षण के लिए बहुपयोगी श्रोत है। भारतीय संस्कृति में राष्ट्र को आगे बढ़ाने, उन्नत एवं प्रगतिशील होने का संदेश दिया गया है– चरवैति–चरवैति। अर्थात्– उन्नति के पथ पर अग्रसर होने का भाव राष्ट्रीयता को अधिक शक्तिशाली बनाता है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पुत्रों से भी अधिक महत्व वृक्षों को दिया गया है– वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में वेद, रामायण, महाभारत, एवं स्मृतियों में तथा अन्य वर्तमान ग्रन्थों में भी पर्यावरण की शुद्धता एवं संरक्षणता के विषय में प्रकाश डाला गया है। भारतीय संस्कृति में कविकुलगुरू की उपाधि से सुशोभत महाकवि कालिदास ने अपने प्रथम महाकाव्य कुमारसंभव् के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में हिमालय की प्रशंसा करते हुये देवात्मा कहकर हिमालय का गौरव बढ़ाया है। "अस्त्युत्तरस्यो दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थितः पृथिव्याः इव मानदण्डः"।। हिमालय पर्वत पर अनेक बहुमुल्य रत्न तथा दुर्लभ जड़ी–बुटियाँ पायी जाती हैं। यथा –

"यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौशधीश्च पृथपू दिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम"।।

कालिदास युग में पर्यावरण के आठ देवता ही शिव में स्थापित हो गए –

"या सृष्टिः स्त्रृष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविः या च होत्री।
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्तविश्वम्।।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः।
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वः ताभिरष्टाभिरीश"ः।।

इसी प्रकार रामायण में प्राकृतिक तत्वों को मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग माना है। प्रकृति को मानव के अत्यन्त समीप माना गया है, प्रकृति के दर्शन मात्र से ही मनुष्य हर्षित एवं आनन्दित होता था, क्योंकि वह व्यक्ति के सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी होती थी। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है, शकुन्तला की विदाई के समय वृक्ष लताएँ पशु–पक्षी भी वियोग (दुःख) का अनुभव करते है। यथा– **उद्गलितदर्भकवला मृग्याः परित्यक्तनर्तनाः। अपसृतपाण्डुपुत्रा मुच्न्त्यश्रूणीव लताः।।** इसी प्रकार महर्षि कण्व वनस्पतियों को सम्बोधित करते हुये कहते है कि – **पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या, नादत्ते प्रिय मण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्। आद्ये वः कुसुमपृसृतिसमये यस्या भवत्युत्सवः, सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायतम्।।**

ऐसी मान्यता है कि वायुमंडल में शंख ध्वनि एवं हवन की सुगन्ध जहॉ तक फैलती है, वहॉ तक पर्यावरण शुद्ध हो जाता है। इस बात को विज्ञान भी सिद्ध कर चुका है कि ओ3म् की ध्वनि ब्रह्मांड में स्वतः ही गुंजती रहती है। विज्ञान जिन–जिन चीजों की खोज कर रहा है, वे वैदिक काल से ही देखने को मिलती है, जैसे वर्तमान समय में विज्ञान ने ब्रह्माण्ड में नौ ग्रहों के होने की पुष्टि की है, उन नौ ग्रहों की पूजा सनातन धर्म में हजारो

वर्ष पूर्व से ही होती आ रही है। अन्य भी मांगलिक त्योहारों में भी सदैव शांति का पाठ किया जाता है, जो पर्यावरण के प्रति प्रेम का स्पष्ट निर्देशन है। सहस्त्रों वर्षो पूर्व यजुर्वेद के ऋषि द्वारा की गई इस शान्ति पाठ के प्रार्थना की गूंज हमारे पर्यावरण में फैले हुए प्रदुषणों को शान्त करें :

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः

पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वदेवाः शान्तिर्ब्रह्मा शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

इस श्लोक का प्रयोग पुरोहित किसी भी यज्ञ के समापन के समय हाथों में अर्घ्य लेकर उसमें पंचामृत एवं जल मिलाकर फूल या पत्तियों से सभी यजमानों पर छिड़कते हुए करते है।

मनुष्य अपने जीवन के निर्वाह हेतु वनस्पति जगत पर ही आश्रित है। भोजन, आवास, ईधन आदि अन्य कार्यों में वृक्ष एवं वनस्पतियों का अमूल्य योगदान है। वृक्ष एवं वनस्पतियाँ अपनी समृद्धता से प्रकृति की सुन्दरता के साथ–साथ दैनिक उपयोग की वस्तुएँ प्रदान कर मानव को जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करते हैं। जैसा कि प्राचीन काल से ही आयुर्वेदिक पद्धति रही है कि अधिकांशतः ऋषि–मुनि वनों में ही स्थापित आश्रमों एवं गुरूकुलों में निवास करते थे, तथा वहाँ पर रहकर जड़ी–बूटियों का अनुसंधान एवं उपयोग निरन्तर करते रहते थे। इन औषधियों से जन–जन की चिकित्सा की जाती थी, इनका प्रभाव भी चमत्कारिक होता था। आज भी रोग निवारण हेतु प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचलन है, जिसमें व्यय भी कम आता है। तथा इसके द्वारा कोई गलत प्रभाव भी नहीं पड़ता है, ऐसी परिस्थितियों में वृक्ष एवं वनस्पतियों की जानकारी का महत्व एवं उपयोगिता और अधिक हो जाती है। प्रकृति के अन्तर्गत वृक्ष एवं वनस्पतियाँ हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ वरदान हैं जिसमें मनुष्य ऑक्सीजन (प्राणवायु) को श्वॅास द्वारा ग्रहण करके जीवित रहता है। वृक्ष एवं वनस्पतियाँ ही प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में ऑक्सीजन छोड़ते हैं। इस तरह मानव के जीवन का आधार वृक्ष वनस्पतियों के द्वारा ही प्राप्त होता है। धर्मशास्त्रों में पीपल, बरगद, तुलसी, ऑवला, बेल पत्र, पय्या आदि वृक्ष एवं वनस्पतियों को देवताओं की तरह पूजा जाता है। तथा, देवदार, साल, शीशम, नीम, अशोक आदि वृक्ष वनस्पतियाँ पर्यावरण के संतुलन में महत्वपूर्ण योग दान देते हैं। हमारा देश एक विशाल देश है, यहाँ सब ऋतुएॅ हैं, अतुल खनिज संपदा है, पहाड़, वन, नदी–नाले, झरने हैं, वन्य जीव विभिन्न जातियाँ, धर्म तथा भाषाएं हैं। अर्थात् प्रकृति का अतुल भण्डार है। भारत वर्ष एक ऐसा पुण्य देश है। जिसमें देवता भी बारम्बार जन्म लेना चाहते हैं। जिसका स्पष्ट उदाहरण विष्णु पुराण में दिया गया है। यथा–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।

वृक्ष मानव समाज के निए आवश्यक ईधन की आपूर्ति करते है, पंछियों के निवास, पथिकों के विश्राम एवं छाया तथा हवा के लिए भी वृक्षों का अत्यधिक महत्व है। इसके साथ–साथ पेड़ो के फल, छाल, पत्तों आदि से मनुष्यों को औषधियॉ भी प्राप्त होती है। मनुष्य को ईमारती लकड़ियॉ भी वृक्षों से प्राप्त होती है। संक्षेप में कहा जाए तो बिना वृक्षों के प्राणीमात्र के जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पुराणों में वृक्षों को मनुष्य की संतान के समान बताते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार एक अच्छा पुत्र अपने कुल का कल्याण करता है ठीक

उसी प्रकार वृक्ष भी अपने फल–फूल एवं अन्य गुणों के द्वारा अपने स्वामी के समस्त पापों को हर लेता है और दरिद्रता का नाश कर देता है –

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना। आह्लादितं कुलं सर्व यथा चन्द्रेण शर्वरी।।

वृक्ष एवं वनस्पतियों का महत्व –

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में वृक्ष वनस्पतियों के उपयोगिता के विषय में विस्तृत विवरण हमें प्राप्त होता है। वृक्ष वनस्पति केवल प्राणवायु के ही साधन नहीं है, अपितु इनका "पंच अंग" अर्थात् पॉचों अंग उपयोगी है। पॉचों अंगों का विवरण निम्न है –

1. मूल (जड़)
2. स्कन्ध शाखा (तना और शाखाऍ)
3. पत्र (पत्ते)
4. पुष्प (फूल)
5. फल

यजुर्वेद में कहा गया है कि वृक्ष प्रदूषण को दूर करते है, अतः उन्हें "शमिता" कहा गया है– "वनस्पति शमिता। वृक्ष एवं वनस्पतियॉ मनुष्य को प्राणवायु प्रदान करने वाली है। वृक्ष प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण करके ऑक्सीजन छोड़ते है। ऑक्सीजन हम सबके लिए अति आवश्यक है। यह वर्षा कराने में सहायक तथा भूमि संरक्षण हेतु वृक्षों के जड़े मिट्टी को मजबूति प्रदान करती है। वृक्ष एवं वनस्पतियों का मानव जीवन में एक और महत्वपूर्ण योगदान है कि इनसे हमें विभिन्न प्रकार की औषधियॉ प्राप्त होती है, जो कि आसानी से हमारे घर की रसोई में प्राप्त हो जाती है। जैसे नीम, तुलसी, अदरक, दालचीनी, लहसुन, लौंग, मैथी, करेला इत्यादि। इनके अलावा वृक्षों में पीपल, अशोक, गन्ना, हरण, गिलाये, क्वेराल इत्यादि अनेक वनस्पतियॉ औषधि निर्माण में सहायक होती है।

आज के समय में विकास के नाम पर निरंतर वृक्षों की कटाई, प्राकृतिक संसाधनों में अत्यधिक छेड़–छाड़ बहुत अधिक प्रदुषण ने पर्यावरण के संतुलन को नष्ट कर दिया है। आज के समय में जल संकट, भूमि का क्षरण तैसी समस्याऍ असंतुलन के कारण ही है। यदि समय रहते वृक्ष एवं वनस्पतियों की रक्षा नहीं की गई तो भविष्य में हमारा जीवन गंभीर संकट में पड़ सकता है। वर्तमान समय में अत्यधिक दूषित हो चुके पर्यावरण के प्रति सचेत करने हेतु हमें स्वयं भी सचेत होना होगा। जब तक हम स्वयं सचेत नहीं होगें तब तक हम पर्यावरण संरक्षण के प्रति दूसरों को सचेत नहीं कर पाएँगे। 5 जून को सारे विश्व में पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता हैं। वर्तमान सरकार द्वारा नमामि गंगे तथा स्वच्छ भारत योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही है। जो कि इस ओर एक सराहनीय प्रयास है। इस समय आवश्यकता बस इस बात की है कि लोगों में आज पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी चेतना जगाना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति एक वृक्ष लगाएँ, उसकी रक्षा तथा देख–रेख करें। कई पत्र–पत्रिकाएँ भी पर्यावरण सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित कर अपना दायित्व निभा रही हैं। देश के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपने दायित्व को समझें। हमें वनों के दोहन को रोकना होगा अन्यथा हमारी भावी पीढ़ी के दुःख के जिम्मेदार हम स्वयं होगें।

अतः पर्यावरण शिक्षा जीवन–पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है, यह एक विशिष्ट शिक्षा है जो वर्तमान एवं

भविष्य में सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम है। ऐसे समय में संस्कृत साहित्य में वर्णित वृक्ष एवं वनस्पतियों की शीतल छाँव की महती आवश्यकता है। अन्त में पर्यावरण ही जीवन है, जीवन ही पर्यावरण है।

संदर्भ ग्रन्थ –

1. कुमारसंभव्– डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री।
2. वेदों में पर्यावरण– दया देव।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास– डॉ प्रीतिप्रभा गोयल।
4. महाकवि कालिदास– डॉ रमाशंकर तिवारी।
5. विष्णु पुराण– 2/3/24
6. ऋग्वेद– 10/101/11
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्– श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी।
8. वेदों में विज्ञान– डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी।
9. यजुर्वेद–29/34

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 161-165

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

विभिन्न भारतीय दर्शनों में कर्म, अकर्म एवं विकर्म का शास्त्रीय एवं दार्शनिक विवेचन

RAJENDRA PRASAD
Assistant Professor, संहिता एवं संस्कृति विभाग
देशभगत विश्वविद्यालय, मण्डी गोविन्दगढ, जिला – फतेहगढ साहिब (पंजाब)

1. कर्म की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा :

"कर्म" शब्द "कृञ् करणे" धातु से बना है।

व्याकरण के अनुसार – क्रियते इति कर्म।

अर्थात् जो किया जाए वही कर्म है।

पाणिनीय व्याकरण में भी "कर्म" को क्रिया के फल का आश्रय माना गया है।

गीता में कर्म की दार्शनिक परिभाषा :

भगवान श्रीकृष्ण कर्म को केवल शारीरिक क्रिया नहीं मानते, बल्कि मानसिक संकल्प, इच्छा और भावनात्मक प्रवृत्ति को भी कर्म का कारण बताते हैं।

2. कर्म के अन्य भेद :

गीता तथा धर्मशास्त्रों में कर्म के अनेक भेद बताए गए हैं –

(क) नित्य कर्म :

प्रतिदिन किए जाने वाले अनिवार्य कर्म।

जैसे – संध्या, जप, देवपूजा।

(ख) नैमित्तिक कर्म :

विशेष निमित्त पर किए जाने वाले कर्म।

जैसे – श्राद्ध, ग्रहणस्नान, यज्ञ।

(ग) काम्य कर्म :

फल की इच्छा से किए जाने वाले कर्म।

जैसे – पुत्रेष्टि यज्ञ, स्वर्गकामना हेतु कर्म।

(घ) निषिद्ध कर्म :

शास्त्र द्वारा निषिद्ध कर्म।

जैसे– हिंसा, चोरी, मिथ्याचार।

3. **कर्म और पुनर्जन्म :**

भारतीय दर्शन में कर्म और पुनर्जन्म का अत्यन्त गहरा सम्बन्ध माना गया है।

गीता का प्रमाण

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा–
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।। – गीता 2/22

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नए धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर त्यागकर नए शरीर धारण करती है।

यह पुनर्जन्म कर्मफल सिद्धान्त का आधार है।

4. **कर्म और बन्धन का दार्शनिक विश्लेषण :**

भारतीय दर्शन के अनुसार कर्म स्वयं बन्धन नहीं है, बल्कि –

कर्मफलासक्ति, अहंकार, ममता अविद्या।

–ये बन्धन के कारण हैं।

गीता का प्रमाण :

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। –गीता 2/62
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। –गीता 2/63

5. **कर्मयोग और भक्तियोग का सम्बन्ध :**

गीता में कर्मयोग और भक्तियोग का अद्भुत समन्वय है।

श्लोक –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। –गीता 9/27

जो कुछ तुम करते हो, खाते हो, दान देते हो या तप करते हो – सब मुझे अर्पण करो।

6. **कर्मयोग और ज्ञानयोग का समन्वय :**

गीता में कर्म और ज्ञान विरोधी नहीं, पूरक हैं।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।। –गीता 5/4

7. **महाभारत में कर्मसिद्धान्त :**

महाभारत में कहा गया है–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

तथा–

यथा कर्म तथा फलम्।

अर्थात् जैसा कर्म होगा वैसा ही फल प्राप्त होगा।

8. **मनुस्मृति में कर्म :**

मनुस्मृति में धर्मयुक्त कर्म को जीवन का आधार माना गया है।

श्लोक :

मनसा वाचा कर्मणा

नित्यमाचारयेद् बुधः।

अर्थ – बुद्धिमान पुरुष मन, वचन और कर्म से सदाचार करे।

9. **कर्म और पुरुषार्थ :**

भारतीय दर्शन में चार पुरुषार्थ बताए गए हैं –

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

इन चारों की प्राप्ति कर्म के द्वारा ही होती है।

10. **अद्वैत वेदान्त में अकर्म –**

आदि शंकराचार्य के अनुसार –

आत्मा वास्तव में अकर्ता है।

कर्म केवल शरीर, मन और इन्द्रियों के स्तर पर होता है।

गीता प्रमाण –

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।

पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन्।। **– गीता 5/8**

11. **विशिष्टाद्वैत में कर्म –**

रामानुजाचार्य के अनुसार –

- ईश्वरार्पित कर्म ही कर्मयोग है।
- भक्ति सहित कर्म मोक्ष का साधन है।

12. **द्वैत वेदान्त में कर्म –**

मध्वाचार्य के अनुसार –

- जीव और ईश्वर भिन्न हैं।
- ईश्वरभक्ति सहित कर्म से मोक्ष प्राप्त होता है।

13. **बौद्ध दर्शन में कर्म का गहन विवेचन –**

बुद्ध ने कर्म का आधार "चेतना" माना।

- पाली वचन
- चेतनाहं भिक्खवे कर्मं वदामि।

बौद्ध दर्शन में कर्म के कारण–

- तृष्णा
- अविद्या
- उपादान

बताए गए हैं।

14. **जैन दर्शन में कर्म का वैज्ञानिक विवेचन –**

जैन दर्शन कर्म को सूक्ष्म पुद्गल मानता है।

कर्म के आठ भेद –

- ज्ञानावरणीय
- दर्शनावरणीय
- वेदनीय
- मोहनीय
- आयु
- नाम
- गोत्र
- अन्तराय।

यह भाग जोड़ने से आपका लेख अत्यन्त उच्चस्तरीय हो जाएगा।

15. **आधुनिक सन्दर्भ में कर्मयोग –**

आज के युग में–

- तनाव
- प्रतियोगिता
- स्वार्थ
- मानसिक अशान्ति

–के समाधान हेतु गीता का निष्काम कर्मयोग अत्यन्त उपयोगी है।

यदि व्यक्ति –

- कर्तव्यनिष्ठ हो,
- ईमानदार हो,
- फलासक्ति कम करे,
- समाजहित को महत्व दे,

तो उसका जीवन अधिक संतुलित बन सकता है।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अतिरिक्त श्लोक –

कर्मयोग का सार –

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरूषः।। – गीता 3/19

ईश्वरार्पण बुद्धि–

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।। –गीता 3/30

कर्मयोगी श्रेष्ठ है –

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। –गीता 6/46

विस्तृत निष्कर्ष –

अन्ततः यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन में कर्म केवल बाह्य क्रिया नहीं, बल्कि सम्पूर्ण नैतिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक जीवन का आधार है। गीता का निष्काम कर्मयोग कर्म, ज्ञान और भक्ति कृ तीनों का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है।

कर्म मनुष्य को बन्धन में भी डाल सकता है और मोक्ष का साधन भी बन सकता है।

जब कर्म –

- स्वार्थयुक्त,
- अहंकारपूर्ण,
- फलासक्त।

होता है, तब वह "विकर्म" बनकर बन्धन देता है।

किन्तु वही कर्म जब–

- निष्काम,
- ईश्वरार्पित,
- लोकसंग्रहार्थ,
- समत्वबुद्धियुक्त।

हो जाता है, तब वही "अकर्म" रूप में मोक्ष का साधन बन जाता है।

इसीलिए गीता का यह सिद्धान्त सम्पूर्ण भारतीय दर्शन का सार कहा जा सकता है–

"योगः कर्मसु कौशलम्"। –गीता 2/50

अर्थात् समत्व, बुद्धि और निष्काम भाव से कर्म करना ही वास्तविक योग है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 166-172

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

Bridging the Rural–Urban Digital Divide in Education : Issues and Solutions

Dr. Praveen Sharma

Assistant Professor, Department of Education

IASE (Deemed to be University)

Gandhi Vidya Mandir, Sardarshahar (Rajasthan)

Abstract :

The rapid growth of digital technology has transformed the education system across the world. Online learning platforms, smart classrooms, educational applications, and virtual teaching methods have created new opportunities for effective learning. However, unequal access to digital resources has widened the gap between rural and urban education systems. This difference, commonly known as the rural–urban digital divide, affects students' access to quality education, digital literacy, technological skills, and learning opportunities. Rural students often face problems such as poor internet connectivity, lack of digital devices, inadequate infrastructure, shortage of trained teachers, and low digital awareness. In contrast, urban students generally have better access to technology and educational resources.

This paper discusses the concept of the rural–urban digital divide in education, its causes, challenges, impacts, and possible solutions. The study emphasizes the need for government support, digital infrastructure development, teacher training, affordable internet services, and inclusive educational policies to reduce digital inequality. Bridging the digital divide is essential for ensuring equal educational opportunities and promoting social and economic development in the modern digital era.

Keywords : Digital Divide, Rural Education, Urban Education, Educational Technology, Digital Learning, ICT, Online Education, Inclusive Education

Introduction :

Education is one of the most powerful tools for social, economic, and national development. In the twenty-first century, digital technology has become an essential part of the educational process.

Schools and educational institutions are increasingly using computers, smart boards, online learning platforms, educational software, and Artificial Intelligence-based tools to improve teaching and learning. Digital education provides flexibility, accessibility, interactive learning experiences, and personalized instruction.

However, the benefits of digital education are not equally available to all learners. A significant gap exists between rural and urban areas regarding access to technology and digital learning resources. Urban schools generally possess better internet connectivity, modern infrastructure, digital devices, and trained teachers, while many rural schools still struggle with limited technological facilities and poor digital awareness. This unequal distribution of digital opportunities creates a rural–urban digital divide in education.

The COVID-19 pandemic exposed this inequality more clearly when schools shifted to online learning. Students from urban areas could continue their education through digital platforms, whereas many rural students faced serious difficulties due to lack of smartphones, internet access, electricity, and technical support. As a result, educational inequality increased significantly.

Therefore, bridging the rural–urban digital divide has become one of the major challenges of the contemporary education system. Ensuring equal access to digital education is necessary for educational justice, social inclusion, and national progress.

Meaning of Digital Divide :

The digital divide refers to the gap between individuals or communities that have access to digital technologies and those that do not. In education, it means unequal access to computers, internet facilities, digital devices, online learning platforms, and technological skills required for modern learning.

The rural–urban digital divide specifically refers to the inequality between rural and urban populations in terms of technological infrastructure, digital literacy, and access to online educational resources.

Concept of Rural–Urban Digital Divide in Education :

The rural–urban digital divide in education represents the unequal availability and use of digital technologies among students, teachers, and educational institutions located in rural and urban areas. This divide affects students' learning opportunities, academic achievement, technological competence, and future career prospects.

The divide is not limited only to access to devices and internet services; it also includes differences in digital skills, technological awareness, teacher preparedness, educational infrastructure, and socio-economic conditions.

Objectives of the Study :

The major objectives of this study are —

- To understand the concept of the rural–urban digital divide in education.
- To identify the major causes of digital inequality between rural and urban areas.
- To examine the impact of the digital divide on students and educational systems.
- To analyze the challenges faced in digital education in rural areas.
- To suggest effective measures for bridging the digital divide in education.

Causes of the Rural–Urban Digital Divide :

1. **Lack of Internet Connectivity :** Many rural areas still suffer from poor internet connectivity and weak network coverage, making online education difficult.
2. **Limited Access to Digital Devices :** Students in rural communities often lack access to smartphones, laptops, computers, and tablets due to financial constraints.
3. **Inadequate Educational Infrastructure :** Many rural schools do not have smart classrooms, computer laboratories, electricity supply, or ICT facilities.
4. **Economic Inequality :** Low family income prevents rural students from purchasing digital devices and internet services.
5. **Lack of Digital Literacy :** Students, parents, and teachers in rural areas may have limited knowledge and skills related to digital technology.
6. **Shortage of Trained Teachers :** Many rural teachers do not receive proper training in online teaching methods and educational technology.
7. **Language and Cultural Barriers :** Most digital educational content is available in English or urban-oriented languages, which creates difficulties for rural learners.

Impact of the Digital Divide on Education :

1. **Unequal Learning Opportunities :** Urban students receive better access to digital resources, while rural students remain deprived of quality learning experiences.
2. **Educational Inequality :** The digital divide widens the educational gap between rural and urban students in terms of achievement and skill development.
3. **Learning Loss :** Students without access to online education may experience interruptions in learning and academic progress.
4. **Reduced Digital Skills :** Rural students may fail to develop essential digital literacy and technological competencies required in modern society.
5. **Increased Dropout Rates :** Lack of digital access may discourage students from continuing education, especially during emergencies like pandemics.

6. **Social and Economic Exclusion :** Students without digital knowledge face difficulties in employment opportunities and participation in the digital economy.

Challenges in Bridging the Digital Divide :

1. **Financial Constraints :** Developing digital infrastructure in rural areas requires large investments and government funding.
2. **Poor Technological Infrastructure :** Lack of electricity, internet towers, and technical facilities creates major barriers in rural education.
3. **Resistance to Technological Change :** Some teachers and communities prefer traditional teaching methods and hesitate to adopt digital learning.
4. **Lack of Awareness :** Parents and local communities may not fully understand the importance of digital education.
5. **Maintenance and Technical Support Issues :** Rural schools often lack technical experts for maintaining digital devices and ICT equipment.
6. **Gender Inequality :** In some rural regions, girls may receive fewer opportunities to access digital technologies compared to boys.

Solutions to Bridge the Rural–Urban Digital Divide :

1. **Expansion of Internet Connectivity :** Governments and private organizations should improve internet services and broadband connectivity in rural areas.
2. **Affordable Digital Devices :** Low-cost smartphones, tablets, and laptops should be provided to economically weaker students.
3. **Development of ICT Infrastructure :** Rural schools should be equipped with smart classrooms, computer labs, electricity, and digital learning facilities.
4. **Digital Literacy Programs :** Training programs should be organized for students, teachers, and parents to improve digital awareness and technological skills.
5. **Teacher Training and Professional Development :** Teachers should receive proper training in online teaching, ICT integration, and digital pedagogy.
6. **Multilingual Digital Content :** Educational content should be prepared in regional and local languages for better understanding.
7. **Government Policies and Initiatives :** Governments should implement inclusive educational policies and digital learning schemes for rural communities.
8. **Public–Private Partnerships :** Collaboration between government agencies, NGOs, and technology companies can improve digital access in rural education.

Role of Government in Reducing the Digital Divide :

Governments play an essential role in promoting digital equality through policies, funding, and infrastructure development. Various initiatives such as Digital India, PM eVIDYA, SWAYAM, DIKSHA, and National Digital Education programs aim to improve digital learning opportunities across India.

The government can help bridge the divide by —

- Expanding internet services in rural regions
- Providing free or subsidized digital devices
- Establishing smart schools and ICT labs
- Organizing teacher training programs
- Promoting digital literacy campaigns
- Ensuring inclusive and equitable educational policies

Importance of Bridging the Digital Divide :

Bridging the rural–urban digital divide is essential because it—

- Ensures equal educational opportunities for all students
- Promotes inclusive and equitable education
- Enhances digital literacy and technological skills
- Reduces educational inequality
- Supports economic and social development
- Prepares students for future employment opportunities
- Strengthens national progress in the digital era

Findings of the Study :

The study reveals that—

- The rural–urban digital divide remains a major challenge in modern education.
- Rural students face difficulties related to internet access, digital devices, and technological awareness.
- Teacher preparedness and digital literacy are essential for effective digital education.
- Government initiatives and infrastructure development can significantly reduce digital inequality.
- Inclusive educational policies and community participation are necessary for long-term improvement.

Suggestions :

- Improve digital infrastructure in rural schools.

- Provide affordable internet and digital devices to students.
- Conduct regular digital literacy and ICT training programs.
- Encourage the use of regional-language educational content.
- Strengthen teacher training in educational technology.
- Increase public awareness regarding the importance of digital education.
- Promote collaboration between government and private sectors.

Conclusion :

The rural–urban digital divide is one of the most significant challenges facing the modern education system. While digital technology has created new opportunities for learning and educational development, unequal access to technological resources has increased educational inequality between rural and urban communities. Rural students often face barriers such as poor connectivity, lack of devices, limited infrastructure, inadequate digital literacy, and shortage of trained teachers.

Bridging this divide is essential for ensuring educational equity, social inclusion, and national development. Governments, educational institutions, teachers, communities, and technology providers must work together to create an inclusive digital education system that reaches every learner, regardless of geographical or economic background.

Therefore, strengthening digital infrastructure, promoting digital literacy, improving teacher preparedness, and implementing inclusive educational policies are necessary steps toward reducing the rural–urban digital divide and building a more equitable and technology-enabled education system for the future.

Bibliography :

- Agarwal, J. C. Essentials of Educational Technology and Management. Vikas Publishing House, 2019
- NCERT. National Education Policy 2020. Ministry of Education, Government of India, 2020
- Ministry of Education. Digital Education Initiatives in India. Government of India, 2021
- NITI Aayog. Strategy for New India @75. Government of India, 2018
- Mangal, S. K.. Essentials of Educational Technology. PHI Learning Pvt. Ltd., 2018
- UGC. Higher Education and Digital Learning in India. UGC Publications, 2021
- Ministry of Electronics and Information Technology. Digital India Programme: Transforming India into a Digitally Empowered Society. Government of India, 2020
- AICTE. ICT and Online Education in India. AICTE Publications, 2021
- Bhatnagar, R. P.. Educational Technology and ICT. Surya Publications, 2017

- UNESCO New Delhi. State of the Education Report for India: Digital Learning and Education. UNESCO, 2021
- DIKSHA. Digital Infrastructure for Knowledge Sharing. Ministry of Education, Government of India, 2022
- SWAYAM. SWAYAM: Study Webs of Active Learning for Young Aspiring Minds. Government of India, 2021
- Sharma, R. A.. Technology in Teaching and Learning. Loyal Book Depot, 2016
- National Institute of Open Schooling. Online and Distance Learning in India. NIOS Publications, 2020
- Ministry of Rural Development. Rural Connectivity and Digital Inclusion Report. Government of India, 2021

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 173-179

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं हिन्दी संस्मरण साहित्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन

रामानंदी अंजना आशारामभाइ
हिन्दी विभाग, क्रांतिगुरु श्यामजी कृष्ण वर्मा कच्छ यूनिवर्सिटी।

सारांश (Abstract) :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम एवं समन्वयात्मक ज्ञान–व्यवस्थाओं में से एक है, जिसका मूलाधार आध्यात्मिकता, नैतिकता, समन्वय वाद, अनुभवपरकता तथा लोकमंगल की भावना है। इसकी जड़ें वेद, उपनिषद, भगवद् गीता तथा भारतीय दार्शनिक परंपराओं में निहित हैं। दूसरी ओर, हिन्दी संस्मरण साहित्य आधुनिक गद्य–विधा के रूप में व्यक्तिगत अनुभवों, सांस्कृतिक स्मृतियों और सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करता है।

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा और हिन्दी संस्मरण साहित्य के अंतर्संबंधों का आलोचनात्मक विश्लेषण करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संस्मरण साहित्य में आत्मानुभूति, कर्मयोग, गुरु–शिष्य परंपरा, लोक–संस्कृति, नैतिक मूल्यों और राष्ट्रीय चेतना के तत्व सशक्त रूप में विद्यमान हैं। यह साहित्य अतीत और वर्तमान के मध्य संवाद स्थापित करता है तथा सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी संस्मरण साहित्य भारतीय ज्ञान–परंपरा का आधुनिक अनुभवपरक विस्तार है, जो शास्त्रीय दर्शन को जीवन–व्यवहार में रूपांतरित करता है।

मुख्य शब्द : भारतीय ज्ञान परंपरा, हिन्दी संस्मरण साहित्य, आत्मानुभूति और उपनिषद्–परंपरा, कर्मयोग और जीवन–संघर्ष, गुरु–शिष्य परंपरा का पुनर्पाठ, लोक–संस्कृति और सामूहिक स्मृति, नैतिकता और मानवीय मूल्य।

प्रस्तावना :

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन–व्यवहार से जुड़ी हुई परंपरा है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे सूत्र भारतीय संस्कृति की सार्वभौमिक दृष्टि को अभिव्यक्त करते हैं। हिन्दी संस्मरण साहित्य इस सांस्कृतिक दृष्टि को व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से साकार करता है। संस्मरण केवल स्मृति–लेखन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुर्नस्मरण की प्रक्रिया है।

1. भारतीय ज्ञान परंपरा : दार्शनिक आधार

1.1 आत्मा और ब्रह्म की अवधारणा :

उपनिषदों में प्रतिपादित 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्त्वमसि' जैसे महावाक्य आत्मबोध को ज्ञान का लक्ष्य मानते

हैं। इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि आत्मा और ब्रह्म में मूलतः कोई भेद नहीं है। यह अद्वैत वेदान्त का केंद्रीय सिद्धांत है, जिसे आदि शंकराचार्य ने दार्शनिक रूप से व्यवस्थित किया। भारतीय दर्शन में आत्मा–ब्रह्म की अवधारणा केवल आध्यात्मिक चिंतन नहीं, बल्कि जीवन–व्यवहार का आधार भी है। यह व्यक्ति को बाह्य भौतिकता से ऊपर उठाकर आत्मानुशासन और आंतरिक शांति की ओर ले जाती है।

आधुनिक समय में जब व्यक्ति अस्तित्वगत संकट और मूल्यहीनता से जूझ रहा है, तब आत्मा और ब्रह्म की यह अवधारणा उसे सार्वभौमिक चेतना और नैतिक उत्तरदायित्व का बोध कराती है।

1.2 कर्मयोग का सिद्धांत :

भारतीय ज्ञान परंपरा में 'कर्म' केवल क्रिया नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व और धर्मानुकूल आचरण का द्योतक है। 'कर्मयोग' इस कर्म को आध्यात्मिक साधना के रूप में देखने की दृष्टि है। इसका सर्वाधिक सुसंगठित प्रतिपादन भगवद्गीता में मिलता है, जहाँ कर्म को जीवन के केंद्र में स्थापित करते हुए उसे मोक्ष का साधन माना गया है।

भारतीय दर्शन में कर्म का सिद्धांत वेदकालीन चिंतन से विकसित हुआ। वेद में यज्ञ और कर्तव्य–पालन के माध्यम से जीवन को संतुलित रखने की अवधारणा मिलती है। बाद में उपनिषदों में कर्म के साथ ज्ञान का समन्वय हुआ। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश देते हुए कहते हैं –

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।"(1)

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, फल में नहीं।

1.3 समन्वय और सह–अस्तित्व :

भारतीय ज्ञान परंपरा बहुलतावादी है। यहाँ विभिन्न दर्शनों और विचारधाराओं का समन्वय मिलता है। भारतीय ज्ञान परंपरा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है – समन्वय (Synthesis) और सह–अस्तित्व (Co-existence)। यह परंपरा किसी एकांगी विचारधारा पर आधारित नहीं है, बल्कि विविध मतों, दर्शनों, आस्थाओं और जीवन–शैलियों को स्वीकार करने वाली उदार दृष्टि का प्रतिनिधित्व करती है।

भारतीय चिंतन का मूल सूत्र "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक है, ज्ञानी उसे अनेक रूपों में कहते हैं) इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करता है। यह वाक्य ऋग्वेद में मिलता है और भारतीय बहुलतावाद की दार्शनिक नींव को स्पष्ट करता है।

2. हिन्दी संस्मरण साहित्य : स्वरूप एवं विशेषताएँ :

'संस्मरण' शब्द की उत्पत्ति सम–स्मृ–ल्युट (अण) से हुई है जिसका अर्थ है सम्यक स्मरण। संस्मरण शब्द सम् उपसर्ग तथा स्मरण शब्द के संयोग से बना है। यह शब्द अपनी सरल, सजीव और मनोरंजक शब्दावली के कारण सबसे ज्यादा लोकप्रिय हो गया है। संस्मरण साहित्य आत्मीयता और अनुभव की प्रामाणिकता पर आधारित होता है। यह विधा व्यक्ति, समाज और समय के संबंधों का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। संस्मरण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

- संस्मरण में किसी स्मरणीय व्यक्ति, वस्तु, पशु–पक्षी, दृश्य या घटना का भावात्मक कथात्मक वर्णन होता है, जिससे उसमें कहानी का गुण दिखाई पड़ता है।(2)

- संस्मरण रचनाकार के जीवन के अनुभूत सत्यों पर आधारित है।[3]
- संस्मरण लेखक द्वारा लिखी गई यादों को लिखकर अपने जीवन की कहानियों को कैद करना है।[4]
- संस्मरण में लेखक अपने आस–पास के समाज, परिस्थितियों एवं अन्य घटनाओं के बारे में लिखता है जिससे उनको क्या–क्या सबक मिले, क्या–क्या सीखने को मिला।[5]
- संस्मरण का आधार स्मृति है।[6]
- संस्मरण में सजीव पक्षों के बाहरी रूप के साथ–साथ आन्तरिक जीवन चरित्र का भी वर्णन रहता है।[7]

प्रमुख संस्मरणकार :–

महादेवी वर्मा, श्रीराम शर्मा, हरिवंश राय बच्चन, शिवपुजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ. रामविलास शर्मा, काशीनाथ सिंह, फनिश्वरनाथ रेणु, कृष्ण सोबती, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, अमृतलाल नागर।

3) हिन्दी संस्मरण साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा : आलोचनात्मक विश्लेषण :

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल स्वर आत्मबोध, नैतिक संतुलन और लोकमंगल है। यह स्वर हिन्दी संस्मरण साहित्य में केवल सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत अनुभव–सत्य के रूप में उपस्थित है। संस्मरणों में स्मृति के माध्यम से जो जीवन–दृष्टि व्यक्त होती है, वह भारतीय ज्ञान–परंपरा की ही व्यावहारिक परिणति है।

3.1 आत्मानुभूति और उपनिषद्–परंपरा :

संस्मरण साहित्य मूलतः यादों के ताने बाने से बुना जाता हैं, लेकिन जब इसमें आत्मानुभूति का तत्व घुल जाता है तब वह केवल एक बीती हुई याद या घटना न रह कर एक दार्शनिक और आध्यात्मिक ऊँचाई को छूने वाला दस्तावेज बन जाता है। हिन्दी संस्मरण साहित्य में वह आत्मानुभूति या आध्यात्मिक ऊँचाई हमें विशेषकर महादेवी वर्मा, अज्ञेय और श्री राम शर्मा के संस्मरणो में देखने को मिलती है। इसी आत्मानुभूति का गहरा संबंध प्राचीन भारतीय उपनिषद परंपरा से है।

उपनिषद का मूल दर्शन एकात्मता, अद्वैत और सर्वभूतहित है। उपनिषद का महाकाव्य है – तत् त्वम् असि जिसका अर्थ है 'वह तुम ही हो' अर्थात जो चेतना मुझमें है वह सामने वाले में भी है। संस्मरण साहित्य में जब साहित्यकार किसी गरीब, उपेक्षित या समाज के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति के बारे में लिखता है तब उसका लेखन सहानुभूति दिखाने वाला नहीं होता किन्तु वह सामने वाले के सुख–दुःख से एकाकार हो जाता है। महादेवी जब 'भक्तिन' या 'घीसा' का संस्मरण लिखती है तब उसे वह पराया नहीं मानती बल्कि अपनी आत्मा का विस्तार मानती है। वह इन पात्रों से जुड़ जाती है। वे खुद में जो चेतना थी वह भक्तिन में भी देखती है। एक क्षण के लिए भी वह भक्तिन को नौकरानी नहीं समझती बल्कि उसके दुःख में एकाकार हो जाती है। उपनिषदों की परंपरा केवल मनुष्य तक सीमित नहीं है, वह पूरी सृष्टि को सम्मिलित करती है।

"ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्"।[8]

अर्थात्, संसार के सभी जीव में ईश्वर व्याप्त है। संस्मरण साहित्य में जब संस्मरणकार पशु पक्षियों या प्रकृति साथ बिताए गए क्षणों का वर्णन करता है तब उपनिषदों की सर्वभूतेषु अर्थात सभी जीवों के समान आत्मा की दृष्टि दिखाई देती है। महादेवी वर्मा का 'मेरा परिवार' के संस्मरण तथा श्रीराम शर्मा के शिकार संस्मरणो में यही सर्वभूतेषु की भावना देखने को मिलती है। महादेवी जी का गिलहरी गिल्लू के साथ एक ही थाली में भोजन

करना यही सर्वभूतेषु की भावना को दर्शाता है।

उपनिषद परंपरा व्यष्टि और समष्टि का समन्वय में मानती है। अर्थात व्यक्ति समाज ब्रह्माण्ड का ही हिस्सा है यही भावना हमें संस्मरण साहित्य में भी देखने को मिलती है, संस्मरण साहित्य में जब किसी व्यक्ति पर संस्मरण लिखा जाता है तब वह एक व्यक्ति की कहानी ना रह कर पूरे समाज, युग एवं और समुचि मानवता की कहानी बन जाती है। अज्ञेय के संस्मरण 'पथ के साथी' में जब वे समकालीन साहित्यकार या मित्र का संस्मरण लिखते है तब वह व्यक्ति के माध्यम से पूरे युग की आत्मा एवं सामूहिक चेतना का साक्षात्कार कराते है।

3.2 कर्मयोग और जीवन-संघर्ष :

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"[9]

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म पर है, फल पर नहीं। यह कर्मयोग का सिद्धांत हिन्दी संस्मरण साहित्य में जीवन–संघर्ष और आत्मनिर्माण के रूप में अभिव्यक्त होता है। महादेवी वर्मा ने अपने संस्मरण संग्रह 'पथ के साथी' और 'अतीत के चलचित्र' में ऐसे पात्रों का वर्णन किया हैं जो अभावों में जीकर भी दूसरों की सेवा में लगे रहे। यह उनके 'कर्मयोग' का साक्षात् उदाहरण है। 'सेवक धर्म में हनुमान जी से स्पर्धा करने वाली भक्तिन किसी अंजना की पुत्री न होकर एक अनाम धन्या गोपालिका की कन्या है– नाम है लछमिन अर्थात लक्ष्मी।'[10] इसके अलावा महादेवी वर्मा स्मृति की रेखाएँ में बिबिया की माई के जीवन संघर्ष का वर्णन करती हैं – 'अपने जीवन वृत के विषय में बिबिया की माई ने कभी कुछ बताया नहीं, किंतु उसके मुख पर अंकित विवशता की भंगिमा, हाथों पर चोट के निशान, पैर का अस्वाभाविक लँगडापन देखकर अनुमान होता था कि उसका जीवन पथ सुगम नहीं रहा।'[11] हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथात्मक कृतियों में जीवन के संघर्षों का वर्णन करते हुए एक सक्रिय, कर्मशील व्यक्तित्व का निर्माण दिखाई देता है। वे विपरीत परिस्थितियों में भी निरंतर कर्मरत रहते हैं।

बहुत से लेखकों ने अपनी गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक बहिष्कार के दौर को संस्मरणों में पिरोया है। इसके अलावा अज्ञेय, निराला और प्रेमचंद जैसे रचनाकारों के बारे में लिखे गए संस्मरण बताते हैं कि उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी लेखन को एक 'तपस्या' की तरह जिया। उनके लिए लिखना केवल शौक नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व था। बनारसीदास चतुर्वेदी के संस्मरणों में कर्मयोग का वह रूप दिखता है जहाँ व्यक्ति अपने सिद्धांतों के लिए सुख–सुविधाओं का त्याग कर देता है। मुक्तिबोध के जीवन पर लिखे गए संस्मरणों में उनके भयंकर आर्थिक अभाव और उनके फक्कड़पन के बीच के संघर्ष एवं कर्म परायणता को देखा जा सकता है – 'मुक्तिबोध की आर्थिक दुर्दशा किसी से छिपी नहीं थी। उन्हें और तरह के क्लेश भी थे। भयंकर तनाव में वे जीते थे। पर फिर भी बेहद उदार, बेहद भावुक आदमी थे। उनके स्वभाव के कुछ विचित्र विरोधाभास थे। पैसे–पैसे की तंगी में जीने वाला यह आदमी पैसे को लात भी मारता था। वे पैसा देने वाली पत्रिकाओं में लिखकर आमदनी बढ़ा सकते थे, पर लिखते नहीं थे।'[12] शिवपूजन के 'वे दिन वे लोग' पुराने समय के संघर्षशील जीवन और सादगी का चित्रण है तो रामवृक्ष बेनीपुरी के 'माटी की मूरतें' में ग्रामीण जीवन के सामान्य लोगो का अद्भुत जीवन संघर्ष हैं।

आलोचनात्मक रूप से कहा जा सकता है कि बच्चन का आत्मकथात्मक लेखन भारतीय कर्मयोग की

आधुनिक व्याख्या है। यहाँ कर्म केवल धार्मिक कर्तव्य नहीं, बल्कि आत्मनिर्माण और सामाजिक उत्तरदायित्व का माध्यम है।

3.3 गुरु–शिष्य परंपरा का पुनर्पाठ :

भारतीय ज्ञान–परंपरा में गुरु को ब्रह्म के समान माना गया है। प्रसिद्ध उक्ति है –

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।"(13)

संस्मरण साहित्य में गुरु के प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा की अभिव्यक्ति बार–बार मिलती है। कई संस्मरणकार अपने शिक्षकों और मार्गदर्शकों को जीवन–निर्माण का आधार मानते हैं। रामविलास शर्मा के संस्मरणों में वैचारिक मार्गदर्शन और बौद्धिक अनुशासन की चर्चा मिलती है। यह गुरु–शिष्य परंपरा का आधुनिक शैक्षिक रूप है।

काशीनाथ सिंह ने अपने संस्मरणात्मक पुस्तक 'याद हो कि न याद हो' में हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नामवर सिंह, विजयदेव नारायण साही, त्रिलोचन शास्त्री आदी गुरुतुल्य व्यक्तित्व एवं संग्रह में मुख्य बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (BHU) के उन आचार्यों का जिक्र है, जो विद्वत्ता के शिखर पर होने के बावजूद अपनी सादगी और फक्कड़पन के लिए जाने जाते थे। जो केवल कक्षा में नहीं पढ़ाते, बल्कि अपने उठने–बैठने, बोलने और व्यवहार से शिक्षा देते हैं। अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी की लोकप्रियता के संदर्भ में वे अपने संस्मरण में लिखते हैं कि – 'सात वर्षों बाद आ रहे हैं पण्डित जी हिन्दी विभागाध्यक्ष होकर। कला, समाज विज्ञान, कृषि, विधि, चिकित्सा, इंजीनियरिंग सभी कॉलेजों के विद्यार्थी बेचौन हैं। इतने महान और इतने सरल व्यक्तित्व की झलक पाने के लिए लोगों का उल्लास देखने लायक है। हर आँख में चमक, हर चेहरे पर पुलक, अधर–अधर पर पण्डित जी! कोई ऐसा जलसा नहीं जिसमें पंडित जी न हों और जिसमें पंडित जी हो उसमें भीड़ के उपद्रव से बचने के लिए प्रेक्षागृहों और हॉलों के बाहर स्पीकर न लगाने पड़े। अजीब दीवानगी का माहौल था, उन्हें देखने–सुनने के लिए।'(14) काशीनाथ सिंह गुरु समान अपने भाई नामवार सिंह को याद करते लिखते है कि – 'वे मेरे बड़े भाई ही नहीं, कथागुरु भी हैं। मुझमें जो भी थोड़ा–बहुत कथा विवेक है, उन्हीं से अर्जित है। अगर मैं कहानी से संस्मरण की तरफ गया और फिर संस्मरण से कथा रिपोर्ताज की ओर–तो इसके पीछे कहीं–न–कहीं वे भी हैं।'(15)

आलोचनात्मक दृष्टि से देखें तो संस्मरणों में गुरु–शिष्य संबंध केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि बौद्धिक विकास का आधार है। भारतीय ज्ञान–परंपरा की यह विशेषता आधुनिक शिक्षा–प्रणाली में भी प्रासंगिक दिखाई देती है।

3.4 लोक-संस्कृति और सामूहिक स्मृति :

भारतीय ज्ञान–परंपरा केवल शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित नहीं है, वह लोक–जीवन में भी जीवित है। संस्मरण साहित्य में लोक–जीवन, पर्व–त्योहार, ग्रामीण परिवेश और पारिवारिक संस्कारों का चित्रण मिलता है। अमृतलाल नागर के संस्मरणों में लोकजीवन का जीवंत चित्रण भारतीय सांस्कृतिक निरंतरता को अभिव्यक्त करता है। फणीश्वरनाथ रेणु के संस्मरणों में बिहार के पूर्णिया अंचल की लोक–धुनों, खेतों, खलिहानों और लोक–कथाओं का ऐसा चित्रण है कि पाठक स्वयं को उस लोक का हिस्सा समझने लगता है। 'धरती के सच और इतिहास की चेतना को फणीश्वर नाथ रेणु ने एक साथ आत्मसात किया था। उनकी रचनाएँ इसका प्रमाण है गाँव के खेत–खलिहान, पर्व–त्योहार, गीत, कथा, रीति–रिवाज, टोन, भाषा–बोली, मुहावरे, मिजाज, तेवर, सोच, मानसिकता,

क्रिया–प्रतिक्रिया, जाति–गठन, सामाजिक बनावट, शक्ति–संतुलन, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक यथार्थ, निरंतर होने वाला परिवर्तन जनित दबाव, इन सब की आपसी अनावश्यक टकराहटें, व्यक्ति समूह और समाज के आपसी बनते–बिगड़ते रिश्ते, प्रकृति के विभिन्न रूप, प्रकृति और मनुष्य का अंतर्संबंध सब एक जादुई संतुलन में बँधे रेणु के कथा विधान में इस तरह उतरते हैं जैसे साक्षात् एक स्थान (गाँव, कस्बा, शहर) अपने सारे कार्य–व्यापारों और धड़कनों के साथ वह मूर्त हो रहा हो।'[16]

संस्मरणकार अक्सर अपनी स्मृतियों को व्यक्त करने के लिए उसी लोक–बोली का उपयोग करते हैं, जो उस संस्कृति की पहचान है। यह भाषा को मिट्टी की सोंधी खुशबू से भर देता है। शिवपूजन सहाय की रचनाओं में पुराने समय के विवाह–उत्सवों, लोक–गीतों और सामुदायिक भोजों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो लोक–संस्कृति के विभिन्न रंगों को संजोए हुए हैं।

भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती और कमलेश्वर के संस्मरणों में विभाजन की वह सामूहिक त्रासदी दर्ज है – 'कमलेश्वर सामान्य जनता के कथाकार रहे है। एक ओर जहाँ उन्होंने कस्बों और महानगरों में रहने वाले मध्यवर्ग की दुनिया चित्रित की है। वहीं दूसरी और विभाजन का दर्द भोगते लोगों की कहानी कही है।'[17] यह केवल उनका व्यक्तिगत दुख नहीं, बल्कि पूरे उप महाद्वीप की 'सामूहिक स्मृति' है। बहुत से संस्मरणों में उन परंपराओं का रोना या याद करना मिलता है जो अब लुप्त हो रही हैं, जैसे संयुक्त परिवार की रस्में या चौपालों पर होने वाली चर्चाएँ।

यहाँ आलोचनात्मक रूप से कहा जा सकता है कि संस्मरण साहित्य भारतीय ज्ञान–परंपरा के लोकाधारित स्वरूप को संरक्षित करता है। स्मृति के माध्यम से लोक–ज्ञान अगली पीढ़ियों तक पहुँचता है।

3.5 नैतिकता और मानवीय मूल्य :

भारतीय ज्ञान–परंपरा में सत्य और करुणा को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। महादेवी वर्मा के संस्मरणों में पशु–पक्षियों के प्रति करुणा का भाव भारतीय 'अहिंसा' परंपरा का विस्तार है। महादेवी वर्मा ने 'अतीत के चलचित्र' में रामा और बिंदु जैसे पात्रों के माध्यम से यह दिखाया है कि अभाव में जीने वाले लोग भी अपने कर्तव्यों के प्रति कितने सजग और अडिग रहते हैं। अर्थात महादेवी के संस्मरणो के पात्र कर्तव्यपरायण दिखाई देते हैं जो एक नैतिक गुण हैं।

महादेवी वर्मा के संस्मरण मानवीय मूल्यों की पराकाष्ठा हैं। उन्होंने न केवल मनुष्यों बल्कि पशु–पक्षियों (जैसे 'नीलकंठ' और 'गिल्लू') के प्रति भी जो संवेदनशीलता दिखाई है, वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मूल्य को पुष्ट करती है। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' में ग्रामीण जीवन के उन पात्रों का वर्णन है जो स्वयं भूखे रहकर भी दूसरों का पेट भरते हैं। यह निस्वार्थ सेवा का सर्वोच्च मानवीय मूल्य है।

आलोचनात्मक रूप से देखा जाए तो संस्मरण साहित्य भारतीय नैतिकता को आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित करता है। यह नैतिकता केवल धार्मिक आदेश नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना का स्वाभाविक विस्तार है।

निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परंपरा और हिन्दी संस्मरण साहित्य का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। संस्मरण साहित्य भारतीय जीवन–दर्शन का अनुभवात्मक दस्तावेज है। यह साहित्य शास्त्रीय चिंतन को व्यावहारिक जीवन में रूपांतरित करता है तथा सांस्कृतिक निरंतरता को सुदृढ़ बनाता है।

संदर्भ सूची :

1. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1923, पृष्ठ सं – 31
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी संस्मरण साहित्य, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ सं – 22
3. वही, पृष्ठ सं – 22
4. वही, पृष्ठ सं – 22
5. वही, पृष्ठ सं – 22
6. वही, पृष्ठ सं – 23
7. वही, पृष्ठ सं – 23
8. ईशादि नौ उपनिषद् (सटीक), गीता प्रेस, गोरखपुर, 2025, पृष्ठ सं – 2
9. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1923, पृष्ठ सं – 31
10. स्मृति की रेखाए, लोकभारती प्रकाशन, 1943, पृष्ठ सं – 9
11. वही, पृष्ठ सं – 84
12. हिन्दी संस्मरणो का अनुशीलन, वन्या पब्लिकेशन, कानपुर, 2023, पृष्ठ सं – 63
13. नित्यकर्म–पूजा–प्रकाश, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1960, पृष्ठ सं – 25,
14. याद हो कि न याद हो, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ सं –19
15. घर का जोगी जोगड़ा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ सं – 9
16. हिन्दी संस्मरणो का अनुशीलन, वन्या पब्लिकेशन, कानपुर, 2023, पृष्ठ सं – 228
17. हिन्दी संस्मरणो का अनुशीलन, वन्या पब्लिकेशन, कानपुर, 2023, पृष्ठ सं – 162

ई–मेल : anjanaramanandi676@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 180-184

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

भारत में महिलाओं के अधिकार तथा आरक्षण

शिवानी, शोध छात्रा,
राजनीति विज्ञान विभाग, एल.एस. एम. परिसर, पिथौरागढ़
डॉ. मंजू आर्या, शोध निर्देशक,
राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, गदरपुर, ऊधम सिंह नगर, नैनीताल।

शोध सारांश :

भारत में महिलाओं की स्थिति कभी भी एक समान नहीं रही है। भारत में महिलाओं का इतिहास काफी गतिशील रहा है। प्राचीन काल में जहाँ मनुस्मृति के श्लोक 'यत्र नारीयस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' के आधार पर गरिमामयी स्थान प्रदान किया गया था। वहीं मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आयी। सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह पर रोक जैसी कुरीतियाँ उनके सामाजिक जीवन का हिस्सा बन गयी 19वीं. शताब्दी के पूर्वार्द्ध में समाज सेवियों ने इन कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठायी जिसका परिणाम 'सती प्रथा अधिनियम 1829, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856, सिविल मैरिज एक्ट (नेटिव मैरिज एक्ट) 1872, सम्मति आयु अधिनियम 1891 तथा बाल–विवाह निरोधक अधिनियम (शारदा एक्ट) 1929 के रूप में सामने आया। इन सभी अधिनियमों ने समाज में महिलाओं की स्थिति को सुधारने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत महिलाओं के अधिकारों का वर्णन करते हुए वर्तमान समय में महिलाओं के लिए चलाई जा रही योजनाओं का अध्ययन किया गया है। साथ ही वर्तमान समय में अधिकारों की वास्तविक प्रासंगिकता का वर्णन किया गया है।

कुंजी शब्द – अधिकार, मौलिक अधिकार, संवैधानिक, नीति निर्देशक तत्व, सहदायक, वैधानिक अधिनियम, आरक्षण।

भारत में महिलाओं के अधिकार –

स्वतंत्रता के बाद हमारे संविधान द्वारा गणतंत्र की शुरुआत से ही महिलाओं तथा पुरुषों को समान अधिकार प्रदान किये हैं। लैंगिक समानता के सिद्धांत को हमारे संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, कर्तव्यों तथा राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों में प्रतिपादित किया गया है। संविधान न केवल मौलिक अधिकारों के तहत महिलाओं को पुरुषों के समान समानता प्रदान करता है बल्कि राज्य को नीति–निर्देशक तत्वों के तहत महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए सकारात्मक कदम उठाने के निर्देश भी देता है।

महिलाओं के मौलिक अधिकार :

1. **समता का अधिकार :** भारतीय संविधान के 14 से लेकर 18 तक के अनुच्छेद, समानता का अधिकार

प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 14–विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद 15–लिंग के आधार पर भेदभाव निषेध, अनुच्छेद 15(3)–राज्य को महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार देता है तथा अनुच्छेद 16–महिलाओं को पुरुषों के समान अवसरों की समानता प्रदान करता है।

2. **स्वतंत्रता का अधिकार** – भारतीय संविधान के 19 से लेकर 22 तक के अनुच्छेदों में महिलाओं को, पुरुषों के समान स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। जिसमें से प्रमुख अनुच्छेद 19(1) वाक् अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अनुच्छेद (21) जीवन जीने का अधिकार (प्राण व दैहिक स्वतंत्रता), अनुच्छेद 21 (क) महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है।

3. **शोषण के विरुद्ध अधिकार** – अनुच्छेद (23) मानव के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध करता है तथा अनुच्छेद (24) कारखानों आदि में बालश्रम को प्रतिबंधित करता है।

4. **धार्मिक स्वंतंत्रता का अधिकार** – भारतीय संविधान के अनुच्छेद (25) से अनुच्छेद (28) तक में नागरिकों धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी है जिसमें अन्तःकरण की, किसी भी धर्म को मानने तथा धार्मिक कार्यों का प्रबंधन करने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है।

5. **संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार** – अनुच्छेद (29) तथा अनुच्छेद (30) में इसका प्रावधान है।

6. **संवैधानिक उपचारों का अधिकार** – अनुच्छेद (32) के तहत अगर किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है तो वह सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है।

मौलिक अधिकारों के साथ–साथ राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों के तहत राज्य को महिलाओं के हित में कार्य करने हेतु निर्देश दिए गये है जैसे अनुच्छेद 39(क) के अनुसार राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा कि 'पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो' तथा अनुच्छेद 39 (घ) के अनुसार राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा कि 'पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिये समान वेतन हो'। इन सब के साथदृसाथ महिलाओं को पुरुषों के समान अन्य वैधानिक अधिकार भी प्रदान किये गये हैं जिसमें से कुछ वैधानिक अधिकारों का वर्णन निम्न है :–

- **मत देने का अधिकार** – अनुच्छेद 325 तथा अनुच्छेद 326 बिना किसी लैंगिक भेदभाव के महिलाओं तथा पुरुषों को सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार प्रदान करता है।
- **संपत्ति का अधिकार** – पहले यह मौलिक अधिकार हुआ करता था, मगर '44 वें संविधान संसोधन अधिनियम 1978' के द्वारा इसे विधिक अधिकार बना दिया गया। 1978 से पूर्व सम्पत्ति के अधिकार के मौलिक अधिकार होने के बाबजूद 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम–1956' तथा हिन्दू महिला सम्पत्ति का अधिकार अधिनियम–1937', हिन्दू महिलाओं के सम्पत्ति में अधिकार को नियंत्रित करते थे परन्तु सितम्बर 2005 में 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956' को संशोधित कर संपत्ति विभाजन के मामले में महिला को भी सह्दायक के रूप में मान्यता प्रदान की गयी अर्थात पुत्री को भी पुत्र के समान अधिकार और देनदारी दी गयी है।

महिलाओं की सुरक्षा तथा संरक्षण हेतु सरकार तथा राज्य सरकार के द्वारा अनेक अधिनियम बनाये गये हैं, जिसमें से कुछ का वर्णन निम्न है।

- **प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम,** 1961 – इसके अनुसार 'काम काजी महिला प्रसूति से पहले पूरे वेतन पर

6 हफ्ते की छुट्टी और प्रसूति के बाद 6 हफ्ते की छुट्टी पाने की अधिकारी है वह सारी 12 हफ्ते की छुट्टी प्रसूति के बाद एक साथ भी ले सकती है'। संसद के द्वारा वर्ष 2017 में इस अधिनियम संसोधित कर प्रसूति प्रसुविधा (संसोधन) अधिनियम, 2017 पारित किया, जिसके अनुसार पहले दो बच्चों पर कामकाजी महिलाओं के लिए प्रसूति अवकाश को 12 सप्ताह से बढ़ाकर 26 सप्ताह कर दिया गया हैं मगर दो बच्चों के बाद यदि बच्चा होता है तो उसके लिए यह 12 सप्ताह ही होगा।

- **दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961** – इसके तहत दहेज को परिभाषित करते हुये दहेज को देने, लेने या दहेज देने व देने के लिए प्रेरित करने वाले व्यक्ति के लिए कम से कम 5 वर्ष के कारावास तथा कम से कम 15000 रूपये के जुर्माने का प्रावधान किया गया है।
- **सती (निवारण) अधिनियम, 1987** – इसके अनुसार सती कर्म के संदर्भ में किसी भी प्रकार का अनुष्ठान करना, जुलूस निकालना, इसकी किसी भी रीति का समर्थन करना या उसका प्रचार करना दंडनीय अपराध होगा।
- **राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990** – महिलाओं के सन्दर्भ में संविधान में उपलब्ध कानूनों का अध्ययन और जाँच करके उनके कार्यान्वयन की सिफारिश करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 के तहत 31 जनवरी 1992 को एक विधिक निकाय के रूप में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया।
- **घरेलु हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम (2005)** – घरेलु हिंसा से महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से इस अधिनियम को बनाया गया था। इस अधिनियम के अनुसार घरेलू हिंसा के अंतर्गत वे सभी कृत्य शामिल हैं जिनके द्वारा महिला को शारीरिक तथा मानसिक चोट पहुँचती है।
- **बाल विवाह निषेध अधिनियम (2006)** – भारत में सर्वप्रथम बाल विवाह पर रोक लगाने हेतु 1928 में शारदा एक्ट बनाया गया जिसे 1929 में पारित किया गया। वर्ष 1949, 1978 और 2006 में इसमें संसोधन किया गया और वर्त्तमान समय में यह अधिनियम बाल विवाह निषेध अधिनियम (2006) के रूप लागू है जिसके अनुसार 18 वर्ष से कम उम्र के विवाह को बाल विवाह माना जाता है, इससे कम उम्र में विवाह पर प्रतिबन्ध है। अगर कोई व्यक्ति इसके तहत दोषी पाया जाता है तो उसे इसके तहत दंड का प्रावधान है।
- **पोक्सो एक्ट (2012)** – इसे यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम के नाम से भी जाना जाता है। इसे 1992 में संयुक्त राष्ट्र के बाल अधिकारों के अधिसमय के समर्थन में भारत सरकार द्वारा 14 नवम्बर 2012 को लागू किया गया। इसमें बालक तथा बालिका दोनों के साथ होने वाले यौन शोषण को अपराध की श्रेणी में रखा गया है।
- **कार्य स्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और शिकायत निपटान) अधिनियम, 2013** – यह अधिनियम 9 दिसंबर 2013 से लागू हुआ। इसका उद्देश्य महिलाओं को सुरक्षित तथा संरक्षित माहौल उपलब्ध कराना है।
- **आपराधिक कानून संसोधन अधिनियम (2018)** – यह अधिनियम 12 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों के साथ दुष्कर्म करने पर अपराधी के लिए मृत्युदंड सहित अन्य कठोर दंडात्मक कारवाही करने का प्रावधान

करता है।

- **भारतीय राजनीति में महिला आरक्षण –**

सर्व प्रथम भारतीय राजनीति में महिलाओं के आरक्षण का मुद्दा स्वतंत्रता आन्दोलन के समय सामने आया जब बेगम शाह नवाज, सरोजनी नायडू तथा तीन महिला निकायों के द्वारा 1931 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री को नए संविधान में महिलाओं की स्थिति पर एक संयुक्त रूप से अधिकाधिक ज्ञापन प्रस्तुत किया गया। मगर सर्वप्रथम संसद में महिलाओं के लिए प्रतिनिधित्व सम्बन्धी मुद्दा 1974 में 'आकलन सम्बन्धी समिती को रिपोर्ट' में उठाया गया था। इसके पश्चात 73वें संविधान संसोधन अधिनियम 1992 के तहत अनुच्छेद 243 (घ)(2) के अनुसार पंचायत स्तर पर महिलाओं के लिए एक तिहाई (33%) सीटें आरक्षित की गयी तथा इसी तरह नगर पालिका स्तर पर भी महिलाओं के लिए 74वें संविधान संसोधन अधिनियम 1992 के तहत अनुच्छेद 243(न)(3) के अनुसार नगर पालिका स्तर पर भी महिलाओं के लिए एक तिहाई (33%) सीटें आरक्षित की गयी।

इन प्रावधानों के उपरांत लोक सभा तथा राज्य सभा में महिलाओं को आरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम 1996 में लोकसभा में H. D. देवगौंडा की सरकार 81वाँ. संविधान संसोधन विधेयक लेकर आयी। मगर भारी विरोध के चलते इस विधेयक यह विधेयक पारित नहीं हो सका। वर्ष 2008 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 'लोक सभा तथा राज्य सभा पर 33% महिला आरक्षण' से सम्बन्धी 108वाँ. संविधान संसोधन विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किया जिसे 2 साल बाद वर्ष 2010 में राज्य सभा के द्वारा पारित कर दिया, मगर यह सरकार भी इस विधेयक को लोकसभा में पास नही करा पायी और आज तक ऐसा को भी अधिनियम नहीं बना पाया जो लोक सभा तथा राज्य सभा में महिलाओं को आरक्षण प्रदान करता हो।

सरकार के लिए महिला सशक्तिकरण हेतु बनाये गये अधिनियमों तथा योजनाओं के पश्चात भी भारतीय राजनीति में महिलाओं का स्तर बहुत कम है। भारत निर्वाचन आयोग द्वारा जारी किये गये नवीनतम आँकड़ों के अनुसार Oct. 2021 में संसद में कुल मात्र 10.5% महिलाएँ प्रतिनिधित्व कर रही थी वही राज्यविधान सभा में भी महिलाओं के प्रतिनिधित्व का औसत मात्र 9% था। वही अगर हम भारत में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का अंतराष्ट्रीय स्तर पर मूल्यांकन करें तो Inter Parliamentary Union (IPU) द्वारा जारी किये गये आंकड़ों के अनुसार विश्व स्तर पर भारत वर्ष 2014 में 117वें स्थान पर था मगर वर्ष 2020 में 26 अंक गिरकर 143वें स्थान पर आ गया। जब की वही IPU की सूची पाकिस्तान (106वें.), बांग्लादेश (98वें.) और नेपाल (43वें.) स्थान पर आकर महिला प्रतिनिधत्व के सन्दर्भ में भारत से आगे हैं।

निष्कर्ष :

महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने तथा महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिये भारतीय संविधान में अनेक प्रावधान किये गये हैं। संविधान महिलाओं को भी पुरुषों के समान आर्थिक भौतिक संसाधन उपलब्ध कराने तथा स्त्री व पुरुष दोनों को समान कार्य हेतु समान वेतन देने के लिए आवश्यक उपबन्ध करने हेतु राज्य को निर्देश देता है। इन निर्देशों का पालन करते हुए केंद्र सरकार तथा राज्य सरकार दोनों के द्वारा अनेक योजनाओं का निर्माण किया गया है जिसके हमें सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रभाव देखने को मिले हैं एक तरफ जहाँ 'बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ', 'सुकन्या समृद्धि' जैसी योजनाओं से बाल लिंगानुपात वर्ष 2020 में 16 अंकों की बढ़ोत्तरी के साथ 918/1000 से बढ़कर 934/1000 हो गया है। महिलाओं के खिलाफ होने

वाले अपराध की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हुयी है। 'National Crime Record Bureau (NCRB)' द्वारा जारी की गयी 'Crime in India Report 2021' के अनुसार वर्ष 2021 में महिलाओं के खिलाफ हो रहे अपराध के मामलों की संख्या 4,28,278 थी जब की वही 2020 में मामलों की संख्या 3,71,563 थी अर्थात वर्ष 2021 में महिला के खिलाफ हो रहे अपराधों की संख्या में 2020 की अपेक्षा 15.3% की बढ़ोत्तरी हुयी। इनमें सबसे रोचक बात यह थी की 31.8% मामलों में महिलाएँ घरेलु हिंसा की शिकार हुयी थी। केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा संसद में प्रस्तुत किये आकड़ों के अनुसार वर्ष 2019 से वर्ष 2021 के मध्य 18 वर्ष से अधिक उम्र की 10,61,648 महिलाएँ तथा 18 वर्ष से कम उम्र की 2,51,430 लड़कियाँ लापता हुईं हैं।

केंद्र सरकार व राज्य सरकार के द्वारा बनाये गये उनके लिए बनाये गये विधिक अधिनियमों के उपरांत भी महिलाओं की स्थिति में सुधार का प्रगति स्तर बहुत कम है। इस प्रगति स्तर में तीव्रता लाने के उद्देश्य से महिला सशक्तिकरण को लेकर बनाये गये प्रावधानों को और अधिक कठोरता से लागू करने की आवश्यकता हैं ताकि संविधान में वर्णित लैंगिक समानता के सिद्धांत को वास्तविक रूप प्रदान किया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

- बसु, दुर्गा दास : भारत का संविधान : 2019 : Lexis Nexis Butterwoeth Wadhwa Nagpur.
- भारत का संविधान अनुसूचियों सहित, Low Literature Publication New Delhi (2019).
- वार्षिक रिपोर्ट 2016–17, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय।
- http://wcd.nic.in. अधिगमन की तिथि– 5/07/2023
- http://www.ipu.org. अधिगमन की तिथि–5/07/2023
- दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), तिथि– 31/07/2023, पृष्ठ संख्या– 01

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 185-192

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

Role of Modernization in Human Behaviour

Dr. Reena Kumari, Deputy Director, IGNOU Regional Centre, Lucknow, U.P.

Dr. Vandana Varma, Deputy Director, ACD, IGNOU, Maidan Garhi, New Delhi.

ABSTRACT

In the social sciences, Modernization refers to a model of an evolutionary transition from a 'pre-modern' or 'traditional' to a 'modern' society. Historians link modernization to the processes of urbanization and industrialization, as well as to the spread of education. Instead of being dominated by tradition, societies undergoing the process of modernization typically arrive at governance dictated by abstract principles. Traditional religious beliefs and cultural traits usually become less important as modernization takes hold. Through urbanization people come in contact with several components of Modernization. These include urban built environment, legal and political institutions, urbanization and industrialization, social and cultural contact. These situational aspects are also responsible for shaping and affecting the way people behave. Modernizations, Globalization, industrialization, all of these have seemingly pushed our suicide rate up (8.47 per lakh in 1989 to 12.28 per lakh in 2008). The more developed state such as Karnataka, Maharashtra and West Bengal, has higher rate of suicide than the other state in India. More than 2 crore people in India are suffered from severe type of mental illness/disorders and other 5 crore people are suffered from common mental diseases. There is a tremendous increase in crime such as murder, rape, molestation, crime against children, cruelty by husband & relatives. Problems such as child abuse and neglect, conduct disorders, alcohol and drug abuse, depression, attention deficit disorders has become more common. Though there may be other reason for this growth but role of modernization can not be neglected.

INTRODUCTION

In the social sciences, Modernization refers to a model of an evolutionary transition from a 'pre-modern' or 'traditional' to a 'modern' society. The teleology of modernization is described in social evolutionism theories, existing as a template that has been generally followed by societies that have achieved modernity. Historians link modernization to the processes of urbanization and industrialization, as well as to the spread of education. As Kendall (2007) notes, "Urbanization accompanied modernization and the rapid process of industrialization. In sociological critical theory, modernization is linked to an overarching process of rationalization. When modernization increases within a society, the individual becomes that much more important, eventually replacing the family or community as the fundamental unit of society. Instead of being dominated by tradition, societies undergoing the process of modernization typically arrive at governance dictated by abstract principles. Traditional religious beliefs and cultural traits usually become less important as modernization takes hold. Modernization emerged in the late 19th century and was especially popular among scholars in the mid-20th century. The theory stressed the importance of societies being open to change and saw reactionary forces as restricting development. Maintaining tradition for tradition's sake was thought to be harmful to progress and development. Proponents of modernization lie in two camps, optimists and pessimist. The former view holds that what a modernizer sees as a setback to the theory are invariably temporary setbacks, with the ability to attain "modernism" still existing. Pessimists argue that such non-modern areas are incapable of becoming modern. Inglehart, Ronald, and Baker, Wayne E. (*2000*) found that economic development/modernization systematically transforms values, but traditional cultural heritage (e.g., religious/historical lineage) continues to shape national value systems, leading to unique cultural modernization paths (e.g.,

Confucian vs. Western). **Putnam, Robert D.** (*2000*), argues that modernization factors like two-career families, suburban sprawl, and especially **technology** (like television, and now digital media) have caused a significant decline in civic engagement and communal interaction (a negative impact on collective behaviour). **Appadurai, Arjun.** (*1996*) focuses on the **fluidity of identity** in a globalized world, where individuals navigate multiple cultural influences, leading to hybrid and often conflicting behavioral patterns.

MODERNIZATION AND MENTAL HEALTH

Modernization can be induced or planned. It supposedly aims at improving life conditions of people in a particular situation so that they achieve a set of defined goals. Through development, people may acquire new values, aspiration and desires. They may retain or drop old ones. Through urbanization people come in contact with several components of Modernization. These include urban built environment, legal and political institutions, urbanization and industrialization, social and cultural contact. These situational aspects are also responsible for shaping and affecting the way people behave.

Modernization has both advantages and disadvantages –

Behavioural Impacts

Modernization triggers a shift from collective survival to individual self-expression and achievement:

- **Individualism over Collectivism:** The individual is increasingly viewed as the primary unit of society, replacing the family or community. This fosters personal autonomy but can lead to weaker community ties.
- **Rationality and Secularism:** Behavioural choices are increasingly guided by scientific reasoning and abstract legal principles rather than religious tradition or superstition.

- **Achievement Orientation:** Modern societies place a high value on personal success, competition, and efficiency, which often drives higher aspirations and social mobility.

Transformation of Social Institutions

As behaviour changes, the institutions that govern human life also evolve:

- **Family Dynamics:** There is a widespread shift from joint to nuclear family structures. While this offers more privacy and independence, it can result in the loss of traditional support networks and increased isolation for the elderly.
- **Gender Roles:** Increased access to modern education and career opportunities empowers women, challenging traditional patriarchal hierarchies and redistributing household responsibilities.
- **Parent-Child Relationships:** Relationships are becoming more democratic and communicative, though they may also face "generational gaps" as children adopt modern values faster than their parents.

Psychological and Lifestyle Consequences

While modernization improves material welfare, it introduces new stressors:

- **Mental Health:** Urbanization and the fast-paced "risk society" are linked to a rise in psychological trauma, anxiety, and depression. The bombardment of digital stimuli in cities can lead to a more "blasé" or detached social attitude.
- **Technological Dependency:** Constant exposure to digital media has changed how humans socialize, often replacing face-to-face interaction with virtual connections, which can lead to addiction and reduced social skills in children.
- **Standard of Living:** Technological advancements in healthcare and sanitation have significantly increased life expectancy and physical comfort.

Environmental Behaviour

Modernization has led to a "conquest of nature" mindset, where industrial growth often precedes environmental concerns. However, as societies mature, there is a growing movement toward **sustainable practices** and eco-conscious behaviours to combat pollution and climate change.

The impact of globalization, peer pressure, professional tensions, diminishing family values are resulting in tremendous mental stress or disorders. Modernizations, Globalization, industrialization, all of these have seemingly pushed our suicide rate up. While there are pockets which have higher suicide rates than the rest of the country, if one looks at the problem of suicide, state-wise, one can see that it is mostly the developed states which have a higher rate of suicide. Which clearly indicate that modernization has some relationship with stress.

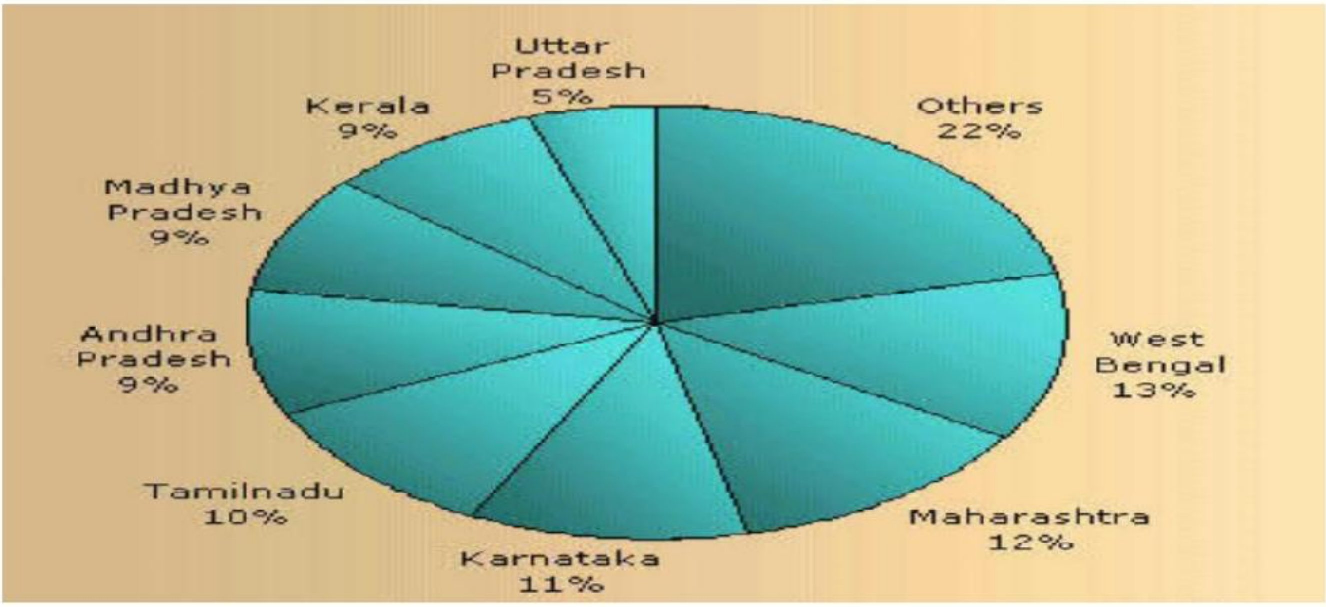

According to figure with the National Crime Records Bureau, in Bangalore (the hub of IT) 1,528 cases of suicide were recorded and it was followed by Chennai with 1.196 cases, Mumbai with 1,106 and Delhi with 967 cases in 2008. Besides these, over thirty lakh people in the country are suffering from mental illness and it is set to overtake cardiovascular disease as a single largest ailment in near future.

About 30 to 35 lakh people need hospitalization at any time for mental illness. According to National Institute of Mental Health and Neuro Science (NIMHANS), there are over two crore people in India who are in a state of serious mental disorder and about five crore people who are affected by common mental diseases.

If we have a look at the record of National Crime Record Bureau (NCRB) - 21397 cases of rape, 24201 cases of crime against children, 38711 cases of molestation, 89546 cases of cruelty by husband and relatives were reported in year 2009. This data shows that there is something wrong with human behaviour and in his interpersonal relationship. Major Depressive Disorder is now a leading cause of disability globally and ranks fourth in the leading causes of global burden of disease. 140 million people suffer from substance use disorders, 50 million have epilepsy, another 24 million have schizophrenia, and a million people commit suicide every year, between 10 - 20 million attempts. Among the first ten leading causes of disability due to disease world wide six are purely psychiatric disorders. Among children and adolescents, problems such as child abuse and neglect, conduct disorders, alcohol and drug abuse, depression, attention deficit disorders, and suicide are all becoming more common. Furthermore, mental disorders (notably depression) are appearing at a younger age and they also seem to be increasing in severity. All these data clearly indicate that these are directly or indirectly linked with the process of modernization and its aspect. This is the reason that these days, the main area of research for the psychologist, sociologist and mental health organizations is to study the effect of modernization on human behaviour.

CONCLUSION

Thus it can be concluded that modernization has both positive and negative effect

on society. But when we talk about mental health or human behaviour, the negative consequences is much higher than that of positive consequences. Whether it is suicide, crime against children or women, aggression, stress, tension, depression, or other mental disorder, a high growth rate is observed year by year. Though there may be other reason for this growth but role of modernization can not be neglected.

REFERENCES

1. Appadurai, Arjun. (1996). Modernity at Large: Cultural Dimensions of Globalization (Book)
2. Bernstein, H. (1971) – "Modernization theory and the sociological study of development". *Journal of Development Studies*.
3. Berlie, Jean A., (2004) - ed. *Islam in China, Hui and Uyghurs: between modernization and sinicization* (Bangkok, White Lotus Press, 2004) ISBN 9744800623.
4. Black, Cyril. (1966) - *The Dynamics of Modernization: A Study in Comparative History* (1966)
5. Black, Cyril. (1975) - *The Modernization of Japan and Russia*
6. Brown, Richard D. (1976) - *Modernization: The Transformation of American Life, 1600-1865*
7. Brown, Richard D. (1972) - "Modernization and the Modern Personality in Early America, 1600-1865: A Sketch of a Synthesis" *Journal of Interdisciplinary History* (1972 Win) 2:201-28.
8. Brugger, Bill; Kate Hannan (1983) - *Modernization and revolution*. Routledge. ISBN 0709906951.
9. Canter, D. (1983) - Putting situations in their place: foundation for a bridge between Social and Environmental Psychology, *Social Behaviour in Context,* Furnham, A. (Ed) (Allyn and Bacon).
10. Chin, Carol C. (2011) - *Modernity and National Identity in the United States and East Asia, 1895-1919* (Kent State University Press; 2011) 160 pages; An intellectual history of American, Chinese, and Japanese views of modernity.

11. Dixon, Simon M. (1999). *The modernisation of Russia, 1676-1825*. Cambridge University Press. ISBN 052137961X.

12.Inglehart, Ronald, and Baker, Wayne E. (2000). "Modernization, Cultural Change, and the Persistence of Traditional Values" (American Sociological Review)

13. National Crime Record Bureau (NCRB) – record 2008.

14. National Crime Record Bureau (NCRB) – figure at a glance -2009.

15. Omar, C. K. (1976) - *The Strategy for Rural Development: Tanzania Experience.* (East African Literature Bureau, Dar-Es-Salaam).12

16. Putnam, Robert D. (2000). Bowling Alone: The Collapse and Revival of American Community (Book)

17. The Economic Times, Bangalore (2008): India's tech hub is a stressed out city, IANS, 30 August 2008.

18. The Hindu, New Delhi (2008): 30 lakh Indians suffer from mental illness: report, Sunday, October, 12.

19. World Health Organization Report (2001), Mental Health: New Understanding, New Hopes, WHO, Geneva.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 193-199

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

नई शिक्षा नीति के प्रभाव से विद्यालयी शिक्षा में परिवर्तन : एक अध्ययन

Dr. Mahesh Chand Gurjar
Assistant professor, Education department
Smt. Anar Devi T.T College Bakharana (Kotputli)

सारांश :

भारत में शिक्षा प्रणाली को अधिक प्रभावी, व्यावहारिक तथा विद्यार्थियों के समग्र विकास के अनुरूप बनाने के उद्देश्य से वर्ष 2020 में नई शिक्षा नीति (NEP 2020) लागू की गई। यह नीति भारतीय शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन लाने वाली महत्वपूर्ण पहल है। नई शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य शिक्षा को अधिक लचीला, कौशल आधारित, रोजगारोन्मुख तथा विद्यार्थियों की रुचियों के अनुकूल बनाना है। विद्यालयी शिक्षा के स्तर पर इस नीति ने पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति, मूल्यांकन प्रणाली, भाषा नीति तथा तकनीकी शिक्षा में अनेक परिवर्तन किए हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में नई शिक्षा नीति के विद्यालयी शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि नई शिक्षा नीति के कारण विद्यार्थियों के सीखने के तरीकों, शिक्षकों की भूमिका तथा विद्यालयों की कार्यप्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। शोध में नीति के सकारात्मक पक्षों के साथ-साथ इसके क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

कुंजी शब्द :

नई शिक्षा नीति, विद्यालयी शिक्षा, शिक्षण पद्धति, मूल्यांकन प्रणाली, कौशल विकास, समग्र शिक्षा।

प्रस्तावना :

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के विकास की आधारशिला होती है। एक सशक्त शिक्षा प्रणाली ही सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। भारत में समय-समय पर शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु विभिन्न नीतियाँ बनाई गईं, जिनमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, 1986 तथा 1992 प्रमुख हैं। बदलते वैश्विक परिवेश, तकनीकी विकास तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने वर्ष 2020 में नई शिक्षा नीति लागू की।

नई शिक्षा नीति का उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना है। यह नीति रटंत प्रणाली को समाप्त कर रचनात्मकता, तार्किक सोच तथा कौशल विकास को बढ़ावा

देती है। विद्यालयी शिक्षा में 10+2 प्रणाली को बदलकर 5+3+3+4 संरचना लागू की गई है, जिससे विद्यार्थियों की आयु एवं मानसिक विकास के अनुसार शिक्षा प्रदान की जा सके।

नई शिक्षा नीति के माध्यम से शिक्षा को अधिक समावेशी, बहुभाषिक तथा तकनीकी रूप से उन्नत बनाने का प्रयास किया गया है। इसके प्रभाव से विद्यालयी शिक्षा में अनेक परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं, जिनका अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

नई शिक्षा नीति 2020 का परिचय :

नई शिक्षा नीति 2020 भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत एक व्यापक शिक्षा सुधार नीति है। इसका उद्देश्य 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा प्रणाली को विकसित करना है। यह नीति विद्यार्थियों को केवल परीक्षा केंद्रित शिक्षा तक सीमित न रखकर उनके व्यक्तित्व विकास, नैतिक मूल्यों तथा व्यावहारिक कौशलों पर बल देती है।

इस नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

1. 5+3+3+4 शिक्षा संरचना
2. मातृभाषा में शिक्षा पर बल
3. कौशल आधारित शिक्षा
4. तकनीकी एवं डिजिटल शिक्षा का विस्तार
5. सतत एवं समग्र मूल्यांकन प्रणाली
6. रचनात्मक एवं अनुभवात्मक शिक्षण
7. बहुविषयक शिक्षा को प्रोत्साहन

नई शिक्षा नीति शिक्षा को अधिक लचीला तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने का प्रयास करती है।

विद्यालयी शिक्षा की नई संरचना : 5+3+3+4 प्रणाली :

नई शिक्षा नीति में विद्यालयी शिक्षा की पारंपरिक 10+2 प्रणाली को बदलकर 5+3+3+4 प्रणाली लागू की गई है। यह संरचना बच्चों के मानसिक एवं शारीरिक विकास को ध्यान में रखकर तैयार की गई है।

(i) प्रारंभिक स्तर (5 वर्ष) :

इसमें 3 वर्ष की प्री-प्राइमरी शिक्षा तथा कक्षा 1 और 2 शामिल हैं। इस स्तर पर खेल आधारित शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है।

(ii) तैयारी स्तर (3 वर्ष) :

कक्षा 3 से 5 तक के विद्यार्थियों को गतिविधि आधारित एवं खोजपूर्ण शिक्षा प्रदान की जाती है।

(iii) मध्य स्तर (3 वर्ष) :

कक्षा 6 से 8 तक के विद्यार्थियों को विज्ञान, गणित, कला एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रारंभिक ज्ञान दिया जाता है।

(iv) माध्यमिक स्तर (4 वर्ष) :

कक्षा 9 से 12 तक के विद्यार्थियों को विषय चयन में लचीलापन दिया गया है।

यह नई संरचना विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रही है।

4. शिक्षण पद्धति में परिवर्तन :

नई शिक्षा नीति ने शिक्षण पद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। पारंपरिक रटंत प्रणाली को हटाकर अब अनुभवात्मक एवं कौशल आधारित शिक्षण पर बल दिया जा रहा है।

(i) गतिविधि आधारित शिक्षण :

विद्यालयों में विद्यार्थियों को प्रोजेक्ट, प्रयोग तथा समूह गतिविधियों के माध्यम से सीखने के अवसर प्रदान किए जा रहे हैं।

(ii) रचनात्मकता का विकास :

विद्यार्थियों को केवल पुस्तक ज्ञान तक सीमित न रखकर उनकी कल्पनाशक्ति एवं नवाचार क्षमता को विकसित किया जा रहा है।

(iii) तकनीकी शिक्षा :

ऑनलाइन शिक्षा, स्मार्ट क्लास तथा डिजिटल संसाधनों का उपयोग बढ़ा है। इससे विद्यार्थियों को आधुनिक शिक्षा प्राप्त हो रही है।

(iv) कौशल विकास :

विद्यालय स्तर पर कोडिंग, व्यावसायिक शिक्षा तथा अन्य कौशल आधारित पाठ्यक्रम शुरू किए गए हैं।

इन परिवर्तनों से विद्यार्थियों में आत्मविश्वास तथा व्यावहारिक ज्ञान का विकास हो रहा है।

भाषा नीति एवं मातृभाषा का महत्व :

नई शिक्षा नीति में मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा प्रदान करने पर विशेष बल दिया गया है। नीति के अनुसार कम से कम कक्षा 5 तक तथा संभव हो तो कक्षा 8 तक मातृभाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए।

मातृभाषा में शिक्षा के अनेक लाभ हैं —

1. बच्चे विषयों को आसानी से समझते हैं।
2. सीखने की क्षमता में वृद्धि होती है।

3. सांस्कृतिक एवं भाषाई पहचान मजबूत होती है।

4. विद्यार्थियों में आत्मविश्वास बढ़ता है।

हालाँकि, कुछ क्षेत्रों में अंग्रेजी माध्यम के प्रति अधिक आकर्षण होने के कारण इस नीति के क्रियान्वयन में चुनौतियाँ भी सामने आ रही हैं।

मूल्यांकन प्रणाली में परिवर्तन :

नई शिक्षा नीति ने परीक्षा एवं मूल्यांकन प्रणाली में भी व्यापक परिवर्तन किए हैं। अब केवल वार्षिक परीक्षा के आधार पर विद्यार्थियों का मूल्यांकन नहीं किया जाएगा।

नई मूल्यांकन प्रणाली की विशेषताएँ :

(i) सतत एवं समग्र मूल्यांकन :

विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों के साथ-साथ उनकी रचनात्मकता, व्यवहार एवं कौशलों का भी मूल्यांकन किया जाएगा।

(ii) बोर्ड परीक्षाओं में सुधार :

बोर्ड परीक्षाओं को सरल एवं कम तनावपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

(iii) योग्यता आधारित प्रश्न :

अब रटने के बजाय समझ एवं विश्लेषण क्षमता पर आधारित प्रश्न पूछे जा रहे हैं।

(iv) प्रगति पत्र में सुधार :

नई रिपोर्ट कार्ड प्रणाली में विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का विवरण शामिल किया जाएगा।

यह प्रणाली विद्यार्थियों के मानसिक तनाव को कम करने में सहायक सिद्ध हो रही है।

नई शिक्षा नीति के सकारात्मक प्रभाव :

नई शिक्षा नीति के विद्यालयी शिक्षा पर अनेक सकारात्मक प्रभाव देखने को मिल रहे हैं।

(i) विद्यार्थियों का सर्वां :

विकास

अब शिक्षा केवल परीक्षा तक सीमित नहीं रही। विद्यार्थियों के मानसिक, शारीरिक एवं नैतिक विकास पर भी ध्यान दिया जा रहा है।

(ii) रोजगारोन्मुख शिक्षा :

कौशल आधारित शिक्षा के कारण विद्यार्थी भविष्य के रोजगार हेतु अधिक सक्षम बन रहे हैं।

(iii) तकनीकी दक्षता :

डिजिटल शिक्षा के विस्तार से विद्यार्थियों में तकनीकी ज्ञान बढ़ रहा है।

(iv) शिक्षा में लचीलापन :

विद्यार्थियों को अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनने की स्वतंत्रता मिली है।

(v) शिक्षकों की भूमिका में सुधार :

अब शिक्षक केवल ज्ञान देने वाले नहीं, बल्कि मार्गदर्शक एवं प्रेरक की भूमिका निभा रहे हैं।

नई शिक्षा नीति के समक्ष चुनौतियाँ :

नई शिक्षा नीति के प्रभावी क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ भी सामने आ रही हैं।

(i) संसाधनों की कमी :

ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल संसाधनों एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी है।

(ii) तकनीकी असमानता :

सभी विद्यार्थियों के पास इंटरनेट एवं डिजिटल उपकरण उपलब्ध नहीं हैं।

(iii) शिक्षकों का प्रशिक्षण :

नई शिक्षण पद्धतियों को अपनाने हेतु शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

(iv) भाषा संबंधी समस्याएँ :

मातृभाषा में गुणवत्तापूर्ण अध्ययन सामग्री की कमी कई राज्यों में चुनौती बनी हुई है।

(v) आर्थिक चुनौतियाँ :

नई व्यवस्था को लागू करने हेतु पर्याप्त आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता है।

विद्यालयी शिक्षा में तकनीकी परिवर्तन :

नई शिक्षा नीति के बाद विद्यालयों में तकनीकी उपयोग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

1. स्मार्ट क्लासरूम का विकास
2. ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म का उपयोग
3. डिजिटल लाइब्रेरी की सुविधा
4. ई-कंटेंट एवं वर्चुअल लर्निंग

कोविड-19 महामारी के दौरान डिजिटल शिक्षा का महत्व और अधिक बढ़ गया। नई शिक्षा नीति ने तकनीकी शिक्षा को संस्थागत रूप प्रदान किया।

शिक्षकों की भूमिका :

नई शिक्षा नीति में शिक्षकों को शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्तंभ माना गया है।

शिक्षकों की नई भूमिकाएँ :

1. विद्यार्थियों के मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना।
2. गतिविधि आधारित शिक्षण अपनाना।
3. तकनीकी संसाधनों का उपयोग करना।
4. विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों का विकास करना।

शिक्षकों के प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक विकास पर विशेष बल दिया गया है।

नई शिक्षा नीति और समावेशी शिक्षा :

नई शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य सभी वर्गों के बच्चों को समान शिक्षा अवसर प्रदान करना है। यह नीति ग्रामीण, पिछड़े एवं विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा पर विशेष बल देती है।

नीति के अंतर्गत बालिकाओं एवं वंचित वर्गों के लिए 'Gender Inclusion Fund' की व्यवस्था की गई है। इसके माध्यम से सुरक्षित वातावरण, छात्रवृत्ति एवं अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँगी।

समावेशी शिक्षा से सामाजिक समानता एवं राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिलता है। हालाँकि, ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी अभी भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है।

नई शिक्षा नीति और नैतिक शिक्षा :

नई शिक्षा नीति विद्यार्थियों के नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर बल देती है। इसमें सत्य, अनुशासन, सहयोग एवं पर्यावरण संरक्षण जैसे मूल्यों को शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग बनाया गया है। खेल, योग एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों में सकारात्मक सोच और सामाजिक जिम्मेदारी विकसित की जाती है।

अभिभावकों एवं समाज की भूमिका :

नई शिक्षा नीति में अभिभावकों एवं समाज की भागीदारी को महत्वपूर्ण माना गया है। अभिभावकों के सहयोग से विद्यार्थियों का आत्मविश्वास बढ़ता है, जबकि समाज विद्यालयों के विकास एवं बेहतर शैक्षिक वातावरण बनाने में सहायता करता है।

उपसंहार :

नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था में एक ऐतिहासिक परिवर्तन है। इस नीति ने विद्यालयी शिक्षा को अधिक लचीला, समावेशी एवं कौशल आधारित बनाया है। शिक्षण पद्धति, मूल्यांकन प्रणाली, भाषा नीति तथा तकनीकी शिक्षा में किए गए सुधार विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।हालाँकि, इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए संसाधनों, प्रशिक्षित शिक्षकों तथा तकनीकी सुविधाओं की आवश्यकता है। यदि सरकार, शिक्षक, अभिभावक एवं समाज मिलकर कार्य करें, तो नई शिक्षा नीति भारतीय शिक्षा प्रणाली को विश्व स्तर पर नई पहचान दिला सकती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति विद्यालयी शिक्षा में सकारात्मक परिवर्तन लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*, नई दिल्ली, 2020
2. शर्मा, आर. *भारतीय शिक्षा प्रणाली और नई शिक्षा नीति*, 2021
3. सिंह, एम. *विद्यालयी शिक्षा में परिवर्तन*, 2022

4. NCERT रिपोर्ट, 2021
5. शिक्षा मंत्रालय. *नई शिक्षा नीति एवं शिक्षा सुधार*, 2020
6. अग्रवाल, एस. *शिक्षा में तकनीकी विकास*, 2023
7. यूनेस्को. *शिक्षा विकास रिपोर्ट*, 2022।
8. यूनेस्को. *समावेशी शिक्षा रिपोर्ट*, 2021।
9. शर्मा, वी. *समावेशी शिक्षा एवं नई शिक्षा नीति*, 2022।
10. सिंह, कविता. *नई शिक्षा नीति और नैतिक शिक्षा*, 2021।
11. शिक्षा मंत्रालय. *जेंडर इन्क्लूजन फंड दिशानिर्देश*, 2021।
12. वर्मा, आर. *विद्यालयी शिक्षा में अभिभावकों की भूमिका*, 20
13. कुमार, एस. *नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत भारतीय शिक्षा का भविष्य*, 2023।
14. गुप्ता, आर. *विद्यालयी शिक्षा में तकनीकी की भूमिका*, 2022।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 200-202

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

EDUCATION AND WOMEN EMPOWERMENT (A RELIGIOUS PERSPECTIVE)

Dr. Kumari Soni Rekha
ASSISTANT PROFESSOR, DEPT. OF SOCIOLOGY
J. D. WOMEN'S COLLEGE, PATNA.

Abstract :

Education is a natural process of acquiring knowledge. When we love, only then can we know. This is the theory of acquiring systematic knowledge. Humans strive to know. Since Women are naturally more loving than men; therefore better equipped to know.

Human Society as I see is a network of Social relationship; i.e. love interaction goes on and on i.e. it is process of adjustment of everybody's wants. Women better than men are well equipped to love and worship Society i.e. God. In other words Women are in better position to adjust everybody's wants, being God-gifted with more power to love. So the realization today both among men and women is that more and more women be more and more involved in decision-taking process in the society.

Hence women empowerment is the need of the hour and all advocate for women empowerment, which in real sense is true men empowerment as well.

Keywords : Education, Society, God, Women Empowerment.

Education is a natural process, which continues from the womb to the grave. It is a natural process of acquiring knowledge which helps him in the process of adaptation to and adjustment to his environment, be it physical or social.

'Education' the term is derived from the latin word 'educere'. 'Educere' means 'to bring up' or 'to develop'. As said earlier education is the process of gaining knowledge. Knowledge for what? The knowledge for survival, the existence. Man is said to be the highest thoughtful animal on the planet. Man is a thinking animal. Man thinks. He thinks not only for his own survival/ existence; but simultaneously for the survival & existence of entire plant world all 86 lakh species of animals and birds and the Entirety (i.e. the Sun , the Moon , the Solar System, the Stars i.e. the entire Universe

which he calls as Heaven).

Man is a loving animal. Since he loves his Universe, he is able to gain knowledge about his Universe, the entirety which He terms as Heaven with lot of love and affection. And this is what stands true for all living beings. All living Beings including the Plant World (as souls and in Forms) are worshipping entire Heaven (abstract and expressed) and the entire visible and invisible Heaven is worshipping all living Beings including Plant World (as souls and in Forms). As indicates Baba Ramdev the Entirety is worshipping God just as God is worshipping the Entirety. In the process of worshipping we all gain certain knowledge. Humans gain knowledge. And he very systematically acquires knowledge, this process is termed as the process of education.

To know anything the first pre-requisite is to love it. Those who love human society, they are empowered with the knowledge of society. We all strive to know the society and we very well know if we love the society we can know the society. A. Comte, the father of sociology said the science, the knowledge of society gained scientifically i.e. the true knowledge of society is the new spiritual power of the modern age. The power not to control the society but to further love and worship the society. As even Durkheim says society is God. We do know the society, rather we love our society, we worship society, then we gain certain knowledge about society which empowers us to give proper direction to society i.e. to love and worship society further in all possible ways i.e. by adjusting everybody's wants in the society. I see society as the process of adjustment of everybody's wants.

It's not that men are not equipped to love & adore and worship society. But by nature, women are better equipped to love. They are more loving and caring in comparison to men – we all agree to this. Men expect love from women, and women give love to men as mother, sister, wife and daughter. By nature women are more loving. The power of love is god gifted to women.

Today the term women empowerment is very much in vogue. It refers to the process whereby women come into the position of decision taking. The more and more women involved in the decision taking process means more of women empowerment. The definition of women empowerment is perfect, true.

But empowerment for what, to gain what. What is that which women want for which she needs to take her own decision, overpowering the men's authority to take decision on any matter. What is that which women really want, as being empowered which may come in way of men's wants or come in their way.

Men want love as father, as brother, as husband and as son from women. And women tend to be naturally empowered to give love to men. Men control, women are controlled. That women are being controlled by men, this is her love.

However women love the entire human society, and when she takes decision, it helps all loving all, it helps in adjustment of everybody's wants. Therefore there is need for women empowerment. It's not that men cannot do this task, but women are naturally better equipped to do this task.

And even men realize this fact today. Therefore with time and with the support of men in the society the process of women empowerment is on.

Even men are educated, gain knowledge systematically. Women too gain the same knowledge. But women apply the very same acquired knowledge, all men and women in the society feel empowered; women have that power to love & take care of everybody's wants. Hence, with time, the realization is growing in human society that there should be women empowerment. It's important to bring more of peace, love, harmony and happiness in the society.

So women empowerment is the need of the hour. And more and more women should be encouraged to be involved more and more in the decision taking process in the society. It's not only women empowerment but the way to men empowerment as well in real sense; if I have been able to put things and explain the matter properly.

References :

1. Abraham, Francis & Morgan, John Henry (2017). Sociological Thought. New Delhi: Trinity Press.
2. Chaube, Dr. S. P. & Chaube, Dr. Akhilesh. Philosophical and Sociological Foundations of Education. Agra-2: Vinod Pustak Mandir.
3. Ramdev, Swami (2002). Yog: Its Philosophy & Practice. Haridwar: Divya Prakashan.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2026 Page No. : 203-210

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

Contours of Resistance and Sacrifice : Punjab's Role in India's Freedom Struggle

Rishu Kumar

Independent Researcher

Abstract :

Punjab played an important and unique role in India's struggle for independence. It contributed not to a single ideology, leader or movement but rather through a number of anti-colonial activities, such as: early forms of religious reform, revolutionary nationalism, agrarian mobilization, Gandhian mass politics and acts of great sacrifice, such as martyrdom. The Kuka Movement, Ghadar Party, Jallianwala Bagh Massacre, Akali Movement, Bhagat Singh's revolutionary activities and Udham Singh's sacrifice were some of the key events through which Punjab repeatedly asserted both the moral and political unacceptability of British colonial rule. The paper reviews the phases of Punjab's resistance to British rule in order to illustrate how this region contributed to the development of Indian nationalism by way of the use of political consciousness, mass action, courage and sacrifice. Furthermore, the study demonstrates that Punjab's role in the struggle for independence should be viewed not only through extremes of revolutionary violence but also via peasants' protests; active participation by students and women; religious reform; and the widening of nationalist consciousness amongst everyday Indians.

Keywords : Punjab, Indian nationalism, freedom struggle, Ghadar Movement, Jallianwala Bagh, Bhagat Singh, Akali Movement, anti-colonial resistance.

Introduction :

The fight for India's independence has been a lengthy historical process involving various regional experiences, social movements, political ideologies, and sacrifices made by the general population. Because of Punjab's position as a strategic base of British rule and as one of the greatest centers of colonial resistance, the role of Punjab within the independence movement was particularly significant. When Britain annexed Punjab in 1849, it viewed Punjab as a politically useful, military reliable, and agricultural valuable province. However, Punjab has gradually produced some of the

strongest opposing voices to Imperial British rule in modern India.[1] Punjab played a significant part in India's struggle for freedom and cannot be attributed to any individual. Various aspects of Punjab's involvement in the independence movement include religious reform movements, agrarian struggles, revolutionary organisations, constitutional/political campaigns, mass protests, and international anticolonial groups. The province's numerous leaders and revolutionaries, including, but not limited to, Lala Lajpat Rai, Ajit Singh, Kartar Singh Sarabha, Bhagat Singh, Sukhdev, and Udham Singh, as well as countless unnamed farmers, laborers, students, and women all contributed to preserving the enduring spirit of resistance in Punjab. These acts of resistance by people throughout Punjab have established a unique and distinct place for the province within the nationalist psyche of India.

This paper studies the evolution of Punjab's contribution via themes and chronology. The study begins with a brief overview of early forms of anti-colonial activism, proceeds to discuss the emergence of revolutionary nationalism and agrarian unrest, examines the events surrounding the Jallianwala Bagh massacre, and finally, considers the role of Bhagat Singh and the Akali movement, women, youth, and Gandhian politics during the final stages of the struggle. The primary argument of the paper is that Punjab did much more than merely participate; rather, it played an instrumental role in creating the concepts of sacrifice, resistance, and national honor in the Indian struggle for freedom.

Early Resistance and Political Awakening in Punjab :

In the years after the British annexation of Punjab, anti-colonial thought began to emerge. Changes in the administrative, land settlement, revenue and legal systems implemented by the British drastically disrupted the traditional social structure of Punjab society. Support for British rule was found in certain sections of Punjab society; however, dissatisfaction with colonial rule arose from the peasant class, religious groups and politically minded individuals.[2] Baba Ram Singh's Namdhari/ Kuka movement represents one of the first significant attempts to oppose an organized body in opposition to colonial authority. The Kukas were primarily focused on social and religious reform but eventually took on a political character. Besides denouncing certain social evils through their opposition to foreign goods, the Kukas also opposed the colonial authorities themselves. In addition to being a disciplined organization with an emphasis on moral reform, the Kukas provided a unique contribution to Punjab's political history. The British brutally punished those who participated in Kuka rebellion in the 1870s. These brutalities were illustrative of the repressive nature of British rule and would be remembered as a mark of sacrifice.[3]

There were many other reform movements that helped to awaken the political consciousness of the people. One of these movements was the "Singh Sabha" which emphasized education, religious awareness and public debate among the Sikh community. This group was focused on social and religious

issues, but in doing so it created an educated public that could engage in political discussion. Over time, schools, colleges, newspapers and reform organizations all contributed to the formation of a politically aware generation. In this way, political consciousness became intertwined with social reform within the Province of Punjab.

The Ghadar Movement and International Revolutionary Nationalism :

The Ghadar Movement was one of the major contributions of Punjab to the revolutionary nationalism of that time. In 1913, in San Francisco, the Ghadar Movement was initiated by Indian immigrants from Punjab and other regions; these immigrants had been discriminated against by race in North America, which made them very aware of the degrading effects of colonialism. As a result, they came to the conclusion that Indians living abroad could not have any self-respect while India remained under the British government.[4] The Ghadar Party publicly supported rebellion against British rule via violent rebellion; this support was exemplified by Ghadar's publication of articles, poems, and appeals urging Indians to rebel against colonial rule by means of armed revolt. Some leaders of this movement were Sohan Singh Bhakna, Lala Hardayal, and Kartar Singh Sarabha, who provided ideological guidance and organisational support. Ghadar activists tried to come back to India and organise an armed revolt among both members of the military and civilians during World War I, but their efforts were uncovered and suppressed through British intelligence operations. Nevertheless, this movement had a significant and lasting influence on the broader Indian nationalist struggle.[5]

Kartar Singh Sarabha was an example for youth and their willingness to sacrifice themselves for their beliefs. He died very young and influenced later revolutionaries such as Bhagat Singh. Also, the Ghadar movement proved that Punjab's nationalism is not limited to just India but is also worldwide. The Ghadar movement linked migrants from Punjab, revolutionary networks around the globe and anti-imperial ideas together.[6]

Agrarian Unrest and the Politics of Peasant Resistance :

An agricultural province, Punjab experienced long-lasting effects from British Colonial policy on its rural community. Irrigation taxes, land as well as revenue demand alienated Punjab's peasantry and caused them to develop a sense of frustration. Although the British extolled Punjab as "the granary" of an empire and a recruiting area, their policies placed considerable burdens on cultivators. As a result of these burdens, agrarian unrest was one of the main reasons for the establishment of a national identity in Punjab.[7] The resistance against the Colonization Bill and the rise in canal tax in the early 1900s demonstrated how upset farmers were with their situation. Two men, Ajit Singh and Lala Lajpat Rai, were leaders of the movement to unite rural Punjab, and the catchphrase "Pagri Sambhal Jatta" became a strong representation of farmer pride and resistance. This slogan expressed not only a

protest to this colonial law but also that farmers would not succumb to the humiliation that came with being controlled as subjects by colonizers.[8] The peasants associated their economic grievances with their nationalistic aspirations to create a movement against the oppression they faced during their daily lives. The involvement of large numbers of peasants gave Punjab's nationalist movement a greater breadth of appeal and turned political protest into a larger, mass scale event.

Jallianwala Bagh: Trauma, Memory, and National Awakening :

The Jallianwala Bagh massacre of 13 April 1919 marked a pivotal moment both for Punjab's historical narrative and the broader trajectory of the Indian National Movement. Thousands of people had converged upon Amritsar in protest against the Rowlatt Act and to support local political leaders who were arrested. There was no warning given prior to Brigadier General Reginald Dyer giving orders for troops to open fire on an unarmed crowd. The narrow exits at Bagh resulted in creating a location for mass murder and panic.[9] Indian people's trust in British rule's morality was demolished as a result of the massacre. The massacre also made many in Indian society very angry and to come together out of grief because of what happened and to find out that the violence behind British colonial rule is what brings them all together as something they can share as a country. Rabindranath Tagore renounced his knighthood in protest while Mahatma Gandhi was moving toward using tactics to directly oppose British rule. In Punjab, this massacre left a long-lasting mark on the minds of the people there and is now viewed as a permanent reminder of colonial brutality.[10]

The legacy left by Jallianwala Bagh affected an entire generation of Punjabi youth - most notably that of Bhagat Singh, who visited the site in his boyhood days and returned there to collect blood-soaked earth. For many revolutionaries, the massacre was indicative of British rule; it was predicated on oppression rather than justice; and it inspired them with increased determination for attaining full independence and to give a moral imperative to the activities of those who were resisting colonial rule.[11] Udham Singh is a significant part of how Punjab remembers the Jallianwala Bagh massacre. After being deeply influenced by the 1919 mass killing, he had to deal with the pain resulting from the event for the next 20 years of his life. In 1940, he assassinated Michael O'Dwyer in London as an act of vengeance for the brutalization of thousands of Punjabis. He has been forever seen in Punjab's collective memory as a symbol of revenge for the victims of this evil, bravery in the face of death and fidelity to those who were brutally murdered under British colonialism. The events that occurred at Jallianwala Bagh did not stop in 1919, they have continued to exist through memory, literature, political speeches and revolutionary action.

Bhagat Singh and the Revolutionary Imagination :

Bhagat Singh is known as one of the most important people from Punjab who helped us achieve

Indian independence. Born in 1907 to an active political family, he was heavily influenced by the Ghadar community, the Jallianwala Bagh massacre, socialist writings, and the sacrifices of many revolutionaries before him. While Bhagat Singh had a Nationalist spirit like others of his time, he was able to see that the fight against British rule was much more than just a nationalist movement; it also included fighting against exploitation, inequality, and social injustice.[12] As a member of the Hindustan Socialist Republican Association, Bhagat Singh believed that revolutionary action could awaken the masses from political passivity. The killing of J.P. Saunders in 1928 was carried out to avenge the death of Lala Lajpat Rai, who had succumbed after a police lathi charge during protests against the Simon Commission. In 1929, Bhagat Singh and Batukeshwar Dutt threw bombs in the Central Legislative Assembly. Their purpose was not indiscriminate violence but political communication; they wanted to "make the deaf hear."[13] Bhagat Singh's hunger strike in jail, his court statements, and his writings transformed him into an intellectual revolutionary. His execution along with Rajguru and Sukhdev on 23 March 1931 created a wave of grief and anger across India. His martyrdom gave the freedom struggle a language of fearless sacrifice and continues to occupy an important place in India's historical memory.[13]

The Akali Movement and Religious-Political Mobilization :

The Akali movement was another major phase of Punjab's anti-colonial politics. It began in the early 1920s as a movement to free Sikh gurdwaras from corrupt mahants, many of whom were protected by the colonial administration. The movement combined religious reform, institutional control, and political self-respect. The formation of the Shiromani Gurdwara Parbandhak Committee gave the movement an organized structure.[14] 1921's Nankana Sahib tragedy saw the deaths of peaceful Sikh reformers, which further escalated agitation and revealed the moral weakness of Colonial-supported, religious authority. Akali volunteers embodied tremendous amounts of discipline, courage, and a willingness to suffer imprisonment for their beliefs. Their methods mostly mirrored nonviolent resistance, but the spirit of their opposition was very anti-colonial.

The Akali movement showed that religious reform could be a way to politically awaken people. It engaged common village residents in public action, which strengthened the correlation between the rights of communities and national freedom from colonial powers. Many of the Akali activists would go on to participate in more extensive national struggles later on, thereby linking regional religious reform and nationalism within India.[15]

Women, Students, and Youth in Punjab's Freedom Struggle :

The contribution of women and youth is often less visible in conventional histories, but it was vital to Punjab's freedom movement. Women participated in processions, supported underground

activists, raised funds, provided shelter, and contributed to reform and nationalist campaigns. Their participation widened the social reach of anti-colonial politics and challenged older restrictions on women's public role.[16] Young people and students contributed to the development of urban areas like Amritsar and Lahore, as well as Lyallpur. Colleges, libraries, Nationalist newspapers, reading circles were all centres of political discussion and education. The youth in Lahore had many opportunities to explore revolutionary, anti-imperialist, and socialist theories through the campus. The involvement of youth gave the struggle for independence its emotional force and intellectual clarity. The example set forth by Bhagat Singh and his associates provided inspiration for the youth of India and encouraged them to think beyond individual careers and focus on the collective goal of independent Nationhood.

Punjab and Gandhian Mass Movements :

Although Punjab is often remembered for revolutionary nationalism, it also participated in Gandhian mass movements. During the Non-Cooperation Movement, many people boycotted foreign goods, government institutions, and colonial courts. National schools and indigenous institutions became important tools of political awakening. The movement created a sense of moral opposition to British rule and encouraged ordinary citizens to take part in public action.[17] The Nationalist Movement grew tremendously from the Civil Disobedience Movement. The Civil Disobedience Movement saw a large number of people in Punjab join in on the movement, such as the peasants, students, traders and workers all joining in the protests, boycotts and political meetings. In response to this activity, British authorities began using arrests, censorship and restrictions but repression could not eliminate the increasing level of Nationalist Sentiment.

Gandhi and the Revolutionaries co-existed in Punjab and contributed to it's diverse character. There were those who supported non-violent mass action and then those who supported the use of violent and militant methods. Regardless of the differences in the way that each side approached the problem of ending Colonial rule, they both were working towards the common goal of ending Colonial rule.

Punjab in the Final Phase of the Freedom Movement :

During the 1930s and 1940s, Punjab remained politically active through peasant organizations, labour movements, student groups, revolutionary networks, and nationalist parties. The Kirti Kisan movement and left-oriented organizations raised issues of class exploitation and rural distress. These movements connected nationalism with questions of social and economic justice.[20] Subhas Chandra Bose led the Indian National Army. A number of Punjabis, particularly civilian and military military personnel, supported or joined efforts to fight against the British during WWII. The large number of Punjabis who participated in or supported WWII demonstrated how important Punjab continued being

to the military aspect of the anti-colonial movement at that time.

On the other hand, the last phase of independence was also marked by communal tension and the Partition of India/Pakistan. The damage done to the Punjab region in 1947 from mass migration, violence, and the trauma of Partition made it one of the regions most negatively impacted by Partition. The hatred and violence that occurred from the division of the land during Partition do not negate the long history of Punjab's contributions to the freedom struggle.

Conclusion :

The contribution of Punjab towards the independence of India will always be known as an important part of Indian national history. Numerous fearless leaders emerged from Punjab who fought against British rule via many different means, including revolutionaries, social reformers, peasants, political leaders, women, students, and common people. Throughout our nation's history, the people of Punjab have historically been involved in many different forms of resistance against the British – the Kukas agrarian unrest/Ghadar Movement/the Jallianwala Bagh massacre/The Akali agitation/ Bhagat Singh's revolutionary activities/Udham Singh's sacrifice, and many others. The impact Punjab had on the national independence movement was not only about how many people it created and how many it produced but also about the variegation of forms of resistance within the province of Punjab. The people of Punjab were responsible for providing India courage in the form of revolution, peasant efforts, religious reformations, political organization and a unified memory of sacrifice. The independence movement in Punjab was influenced by emotional as well as ideological factors/ responses to local issues as well as large scale national needs. The nature of these factors/responses combined to make Punjab the most dynamic region in the development of Indian nationalism during the 20th Century.

While Partition will go down as one of the most traumatic events in the state of Punjab, the sacrifices that were made by people from Punjab will forever remain fixed in the history of our nation. A thorough analysis of India's independence movement cannot be written without addressing the key role that Punjab played in converting non-violent resistance to active resistance to anti-colonialism, moral courage, and national commitment. Punjab's history reminds us that freedom was achieved not by one method or one leader alone, but through the collective sacrifices of countless people who refused to accept colonial domination.

Endnotes :

1. Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, K.N. Panikkar and Sucheta Mahajan, India's Struggle for Independence (New Delhi: Penguin Books, 1989), 67.

2. Sekhar Bandyopadhyay, From Plassey to Partition and After (New Delhi: Orient BlackSwan, 2015), 248.
3. Khushwant Singh, A History of the Sikhs, Vol. II (Princeton: Princeton University Press, 1966), 112-115.
4. Harish K. Puri, Ghadar Movement: Ideology, Organisation and Strategy (Amritsar: Guru Nanak Dev University, 1983), 45.
5. Bipan Chandra et al., India's Struggle for Independence, 151.
6. Kirpal Singh, History of the Ghadar Movement (New Delhi: Atlantic Publishers, 2004), 84-89.
7. Ian Talbot, Punjab and the Raj, 1849-1947 (New Delhi: Manohar, 1988), 92-97.
8. Satya M. Rai, Heroic Tradition in Punjab Politics (New Delhi: Orient Longman, 1978), 93.
9. Nigel Collett, The Butcher of Amritsar: General Reginald Dyer (London: Hambledon Continuum, 2005), 221-223.
10. V.N. Datta, Jallianwala Bagh (New Delhi: National Book Trust, 1969), 76-81.
11. Sekhar Bandyopadhyay, From Plassey to Partition and After, 322.
12. K.N. Panikkar, Bhagat Singh and the Revolutionary Movement (New Delhi: National Book Trust, 2007), 18.
13. Bipan Chandra et al., India's Struggle for Independence, 293.
14. Kuldip Nayar, The Martyr: Bhagat Singh - Experiments in Revolution (New Delhi: Har-Anand Publications, 2000), 145-150.
15. Gurharpal Singh, Ethnic Conflict in India: A Case-Study of Punjab (London: Macmillan, 2000), 36-38.
16. S.C. Mittal, Freedom Movement in Punjab (New Delhi: Concept Publishing, 2000), 156.
17. Geraldine Forbes, Women in Modern India (Cambridge: Cambridge University Press, 1996), 129-132.
18. Tara Chand, History of the Freedom Movement in India, Vol. III (New Delhi: Publications Division, 1972), 214-219.
19. V.N. Datta, Jallianwala Bagh, 98; see also Nigel Collett, The Butcher of Amritsar, 436-440.
20. Sugata Bose and Ayesha Jalal, Modern South Asia: History, Culture, Political Economy (London: Routledge, 2018), 128-130.

Email id- rishusolanki14@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

दीक्षितानंद द्विवेदी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139

for the paper titled

संतकाव्य में मानव–अंतःकरण के परिशोधन की अभिप्रेरणा (संतकवि दादूदयाल के काव्य के विशेष संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 10-14

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Simran Naresh

B.A. LL.B. (Hons.), 10th Semester, Batch 2021-2026

Amity Law School, Amity University Noida

for the paper titled

DIGITAL ESTATES AND POST-MORTEM PRIVACY : A CRITICAL EVALUATION OF LEGISLATIVE GAPS IN THE REGULATION OF DIGITAL ASSET SUCCESSION IN INDIA

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 15-25

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

नीलम यादव, शोधार्थी

डॉ. सुरेश कड़वासरा, शोध निर्देशक, प्रोफेसर, हिंदी विभाग

डॉ. रश्मि सोनी, सह शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग

श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय हनुमानगढ़, राजस्थान।

for the paper titled

हिन्दी एकांकी साहित्य में स्त्री के पारिवारिक स्वरूप का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 26-29

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Anju Mishra, M.Sc. (Zoology),
Pt. Deen Dayal Upadhyay Government College, Saidabad, Prayagraj

Dr. R. S. V. Gautam, Assistant Professor, (Zoology)
Pt. Deen Dayal Upadhyay Government College, Saidabad, Prayagraj.

for the paper titled

A Study of the Flora and Fauna of Bajaha Mishran, Saidabad, Prayagraj

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 30-37

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. ललिता बी.एन.

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

प्रेसिडेंसी कॉलेज, केंपापुरा, हेब्बाल, बेंगलूरू–24

बेंगलुरू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पालेस रोड, बेंगलूरू, कर्नाटक–560009

for the paper titled

भाषा और संस्कृति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 38-40

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

चंद्र मोहन जोशी, शोधार्थी

प्रो. जगदेव कुमार शर्मा, शोध निर्देशक

पीठ प्रमुख एवं विभागाध्यक्ष, मानविकी विभाग (हिंदी)

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

for the paper titled

गांधी दर्शन और रंगभूमि का सूरदास

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 41-46

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Salini. C

Associate Professor, Dept of Hindi
Govt- College For Women, Thiruvananthapuram. Kerala.
University of kerala, Pin 695014

for the paper titled

हिन्दी और मलयालम नाटक

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 47-50

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. भावना

सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग,

आई.ए.एस.ई. मानित विष्वविद्यालय, सरदारशहर, चूरु, राजस्थान।

for the paper titled

महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों में नियमित योगाभ्यास करने वाले एवं योगाभ्यास न करने वाले विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास का तुलनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 51-58

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Ravinder Kumar, Ph.D. Research Scholar

Deendayal Upadhayay Chair, H.P. University, Summer Hill Shimla-05

Dr. H.L. Sharma, Associate Professor,

Department of Political Science

for the paper titled

Integral Humanism as an Alternative Political Philosophy in Twentieth-Century India

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 59-72

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Ram Nagina Rajak, Lecturer
Primary Teacher Education College Rampur,
Jalalpur (Samastipur)

for the paper titled

Foundational Literacy and Numeracy Acording to (NEP, 2020)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 73-81

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Sangeeta Dev, Associate Professor, Rachana Sharir Department
Dr. Sunayana Mahajan, Assistant Professor, Rachana Sharir Department
Mr. Rajendra Prasad, Assistant Professor,
Samhita Sidhanta Evam Sanskrit Vibhag
Desh Bhagat university, Mandi Gobindgarh.

for the paper titled

A Critical Compilation and Analytical Study of *Sharir Sthana* in *Brihattrayee* and its Contemporary Significance for Ayurveda Scholars

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 82-89

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Mani Sharma, Assistant Professor, Samhita Sidhanta Evam Sanskrit Vibhag

Dr. Sangeeta Dev, Associate Professor, Rachana Sharir Department

Mr. Rajendra Prasad, Assistant Professor,
Samhita Sidhanta Evam Sanskrit Vibhag
Desh Bhagat university, Mandi Gobindgarh.

for the paper titled

ANATOMICAL POINT OF VIEW OF PRANAVAHA SROTAS AND ITS MODERN CORRELATION

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 99-102

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Sunayana Mahajan, Assistant Professor, Rachana Sharir Department
Mr. Rajendra Prasad, Assistant Professor,
Samhita Sidhanta Evam Sanskrit Vibhag
Dr. Sangeeta Dev, Associate Professor, Rachana Sharir Department
Desh Bhagat University, Mandi Gobindgarh.

for the paper titled

A CRITICAL REVIEW ON SADYAH PRANHARA MARMA : CLASSICAL CONCEPTS, ANATOMICAL PERSPECTIVE AND CLINICAL SIGNIFICANCE

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 103-111

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

आदित्य राज

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार।

for the paper titled

21वीं सदी के अकादमिक प्रबंधन में भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 112-119

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. रमा राहुल दूधमांडे

सहयोगी आचार्य एवं हिंदी विभाग प्रमुख

डॉ. (सौ.) इं. भा. पाठक महिला कला महाविद्यालय, समर्थ नगर,

छत्रपती संभाजीनगर (महाराष्ट्र)

for the paper titled

भक्तिकालीन संगीत परम्परा और भारतीय सांस्कृतिक चेतना

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 120-123

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. मीना शर्मा

सहायक आचार्य, आई. ए. एस. ई. डीम्ड
टू बी यूनिवर्सिटी, सरदारशहर, चूरू।

for the paper titled

नई शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में संत साहित्य की उपयोगिता : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 124-131

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

ममता कुमारी, पी.एच.डी. शोद्यार्थी

डॉ. वंदना दुआ, सह आचार्य

टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

for the paper titled

विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभियोग्यता वृद्वि में शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं विद्यालयी वातावरण के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 132-137

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Naziya Kouser
Ph.D Research Scholar,
VBU, Hazaribag, Jharkhand, 825301

for the paper titled

Semi-Feudal Intermediaries and Rural Exploitation in British India

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 138-144

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

बिमला शर्मा

सहायक आचार्य, हिन्दी,

राजकीय महाविद्यालय जोगिन्दर नगर, मण्डी (हि.प्र.) 175015

for the paper titled

पर्यावरण चेतना और रमेश पोखरियाल निशंक का साहित्य

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 145-149

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रो. रचना सिंह, प्रोफेसर,
दिग्विजय सिंह, शोध छात्र,
मध्य कालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कालेज प्रयागराज।

for the paper titled

प्राचीन भारतीय गणराज्यों में लोकतंत्र की अवधारणा के तत्त्व

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 150-155

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सुनीता कलौनी

असिस्टेंट प्रोफेसर– संस्कृत

राजकीय महाविद्यालय, बलुवाकोट।

for the paper titled

पर्यावरण संरक्षण में वृक्ष एवं वनस्पतियों का योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 156-160

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

RAJENDRA PRASAD

Assistant Professor, संहिता एवं संस्कृति विभाग

देशभगत विश्वविद्यालय, मण्डी गोविन्दगढ, जिला–फतेहगढ साहिब (पंजाब)

for the paper titled

विभिन्न भारतीय दर्शनों में कर्म, अकर्म एवं विकर्म का शास्त्रीय एवं दार्शनिक विवेचन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 161-165

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Praveen Sharma

Assistant Professor, Department of Education
IASE (Deemed to be University)
Gandhi Vidya Mandir, Sardarshahar (Rajasthan)

for the paper titled

Bridging the Rural–Urban Digital Divide in Education : Issues and Solutions

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 166-172

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रामानंदी अंजना आशारामभाइ

हिन्दी विभाग,

क्रांतिगुरु श्यामजी कृष्ण वर्मा कच्छ यूनिवर्सिटी।

for the paper titled

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं हिन्दी संस्मरण साहित्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 173-179

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शिवानी, शोध छात्रा,
राजनीति विज्ञान विभाग, एल.एस. एम. परिसर, पिथौरागढ़
डॉ. मंजू आर्या, शोध निर्देशक,
राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, गदरपुर, ऊधम सिंह नगर, नैनीताल।

for the paper titled

भारत में महिलाओं के अधिकार तथा आरक्षण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 180-184

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Reena Kumari, Deputy Director,
IGNOU Regional Centre, Lucknow, U.P.
Dr. Vandana Varma, Deputy Director,
ACD, IGNOU, Maidan Garhi, New Delhi.

for the paper titled

Role of Modernization in Human Behaviour

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 185-192

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Mahesh Chand Gurjar
Assistant professor, Education Department
Smt. Anar Devi T.T College Bakharana (Kotputli)

for the paper titled

नई शिक्षा नीति के प्रभाव से विद्यालयी शिक्षा में परिवर्तन : एक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 193-199

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Kumari Soni Rekha

ASSISTANT PROFESSOR, DEPT. OF SOCIOLOGY
J. D. WOMEN'S COLLEGE, PATNA.

for the paper titled

EDUCATION AND WOMEN EMPOWERMENT (A RELIGIOUS PERSPECTIVE)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 200-202

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Rishu Kumar
Independent Researcher

for the paper titled

Contours of Resistance and Sacrifice : Punjab's Role in India's Freedom Struggle

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

May 2026, Vol. 23, Issue -5, Part-4, Page No. 203-210

https://doi.org/10.5281/zenodo.20466296

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152